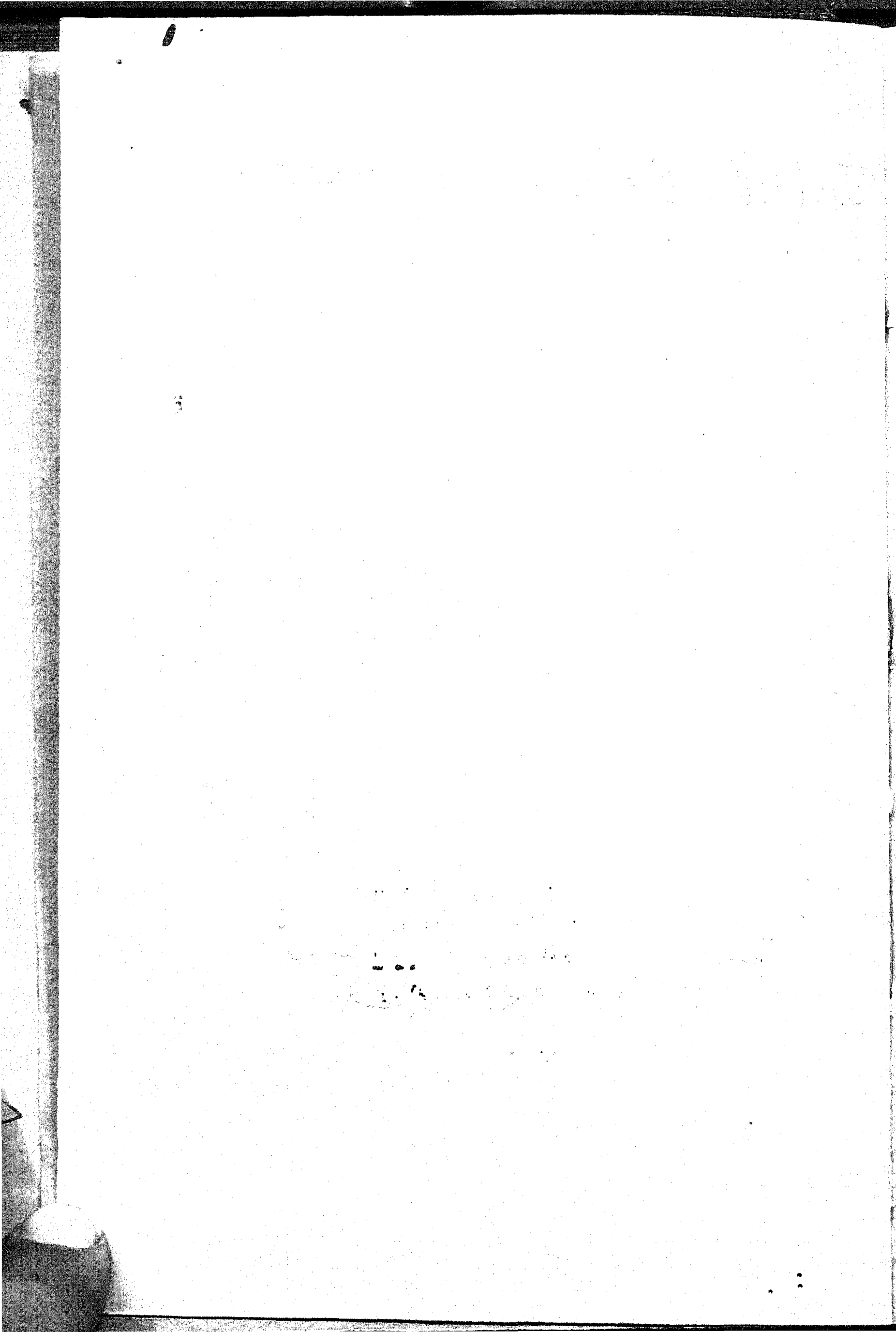
अमरीका-दिग्दर्शन

What driving force worked in me that made me to go to the United States of America with fifteen rupees in my pocket. For the first time in my life I have told the truth to my people in this book.

—Author

सत्यदेव



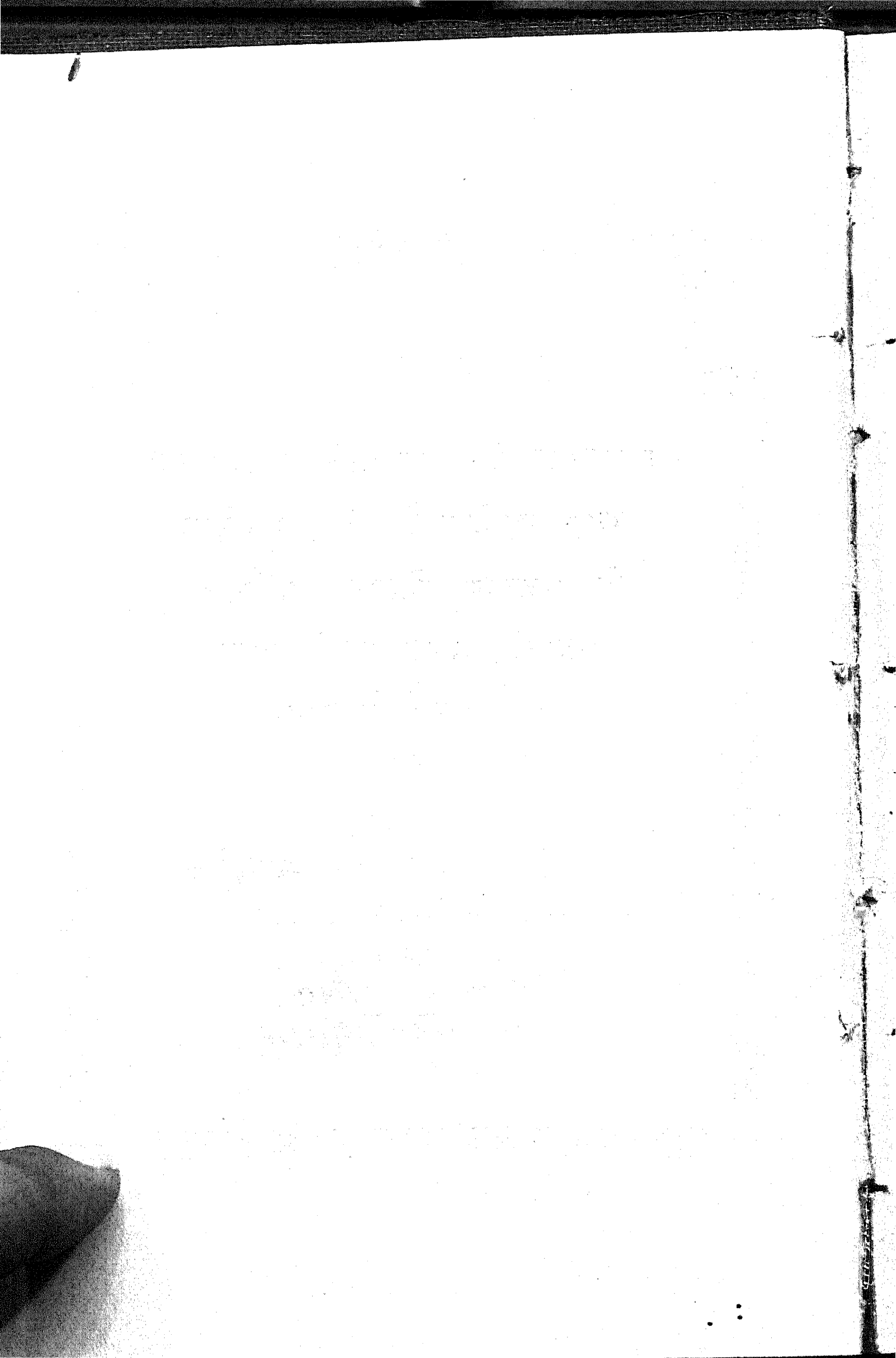
मधुर

समर्पण

स्मृति

मातृ-भाषा हिन्दी के प्रति राष्ट्रीय प्रेम
जाग्रत करने वाले, हिन्दी साहित्य
के धुरन्धर विद्वान पण्डित
महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के
कर कमलों में सादर
समर्पित !

सत्यदेव



Revised & enlarged Edition

अमरीका-दिग्दर्शन

लेखक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

"सङ्गठन का बिगुल," "मेरी जर्मन यात्रा," "मेरी कैलाश यात्रा", "अमरीका भ्रमण", "संजीवनी बूटी" इत्यादि इत्यादि ।

—— :o: ——

The United states of America
is the largest Nation in the world in population,
area and wealth, whose people
speak one language and enjoy the previlege of
Self Government.

— *F. J. Haskin.*

सम्वत् १९८३

संशोधित संस्करण

मिलने का पता—मैनेजर सत्यग्रन्थ माला ऑफिस आर्यटोला, बेगमपुर, पटना सिटी ।

मूल्य १) रु०

प्रकाशक
स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
C/o American Express company,
Hornby Road, Bombay.

मुद्रक—
पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०
सुदर्शन प्रेस, प्रयाग।

विषय सूची

नये संस्करण की भूमिका

—◯:o:*:o:◯—



“अमरीका-दिग्दर्शन” को पहिले पहल मैंने सन् १९१२ में प्रकाशित करवाया था। इसके बाद इस उपयोगी पुस्तक के कई संस्करण निकले। कई पुस्तक प्रकाशकों ने इसके संस्करण छपवा कर जनता में इसका प्रचार किया। इसके अनुवाद गुजराती, अंग्रेज़ी, बंगला और मलयालम आदि प्रान्तीय भाषाओं में भी निकल चुके हैं; मेरे पास इसके अनुवाद छापने के आज्ञा पत्र मांगने की चिट्ठियाँ बराबर आती रहती हैं; मरहट्टी में भी इसका अनुवाद हो चुका है। मैं प्रसन्न हूं कि मेरी इस पुस्तक ने मेरे देशवासियों के हृदयों में ऐसा प्यारा स्थान पाया है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी साहित्य में यह ग्रन्थ सदा जीवित रहेगा।

अमरीका जाने की मेरी कथा सचमुच बड़ी मनोरञ्जक है। जब सन् १९११ में मैंने अपना अमरीका-पथ-प्रदर्शक छपवाया था तो उस समय मुझे स्वप्न में भी इस बात का ध्यान नहीं था कि मेरी अमरीका सम्बन्धी पुस्तकें इतनी लोकप्रियता प्राप्त करेंगी। सैकड़ों नवयुवक ‘अमरीका-पथ प्रदर्शक’ हाथ में लेकर अमरीका पहुंच गये और बहुत से सैलानी भारतीयों को उस पुस्तक ने लाभ पहुंचाया। अब चूँ कि अमरीका जाने के प्रति बहुत से बन्धन अमरीकन गवरनमेन्ट ने लगा

दिये हैं इसलिये उस पुस्तक की इतनी उपयोगिता नहीं रह गई, अब तो "विदेश-पथ-प्रदर्शक" नाम की पुस्तक छापने की आवश्यक्ता पड़ेगी ताकि भारत से बाहर जाने वाले लोगों को विदेश यात्रा की सभी बातें मालूम हो जायँ। यह विचार कर मैंने अमरीका-दिग्दर्शन में अपने अमरीका पहुंचने की प्रस्तावना को इसी में दर्ज कर दिया है ताकि अमरीका-दिग्दर्शन की उपयोगिता और भी बढ़ जाए। मैं पन्द्रह रुपये लेकर अमरीका कैसे पहुँचा? इसकी कथा सुनने के लिये विद्यार्थी सदा उत्सुक रहते हैं और आगे को भी रहेंगे, इस कारण मैंने अमरीका पथ-प्रदर्शक के उस हिस्से को अधिक बढ़ा कर उस में बतलाने योग्य कई बातों का समावेश कर इस कथा को इसी प्रस्तावना में दे दिया है। मुझे विश्वास है कि अमरीका-दिग्दर्शन के प्रेमी उसे बड़े चाव से पढ़ेंगे।

मैं अमरीका कैसे पहुंचा ?

अमरीका पहुंचने की मेरी कथा सचमुच बड़ी विचित्र है। सन् १८९७ ई० में जब स्वामी विवेकानन्द जी देश घूमते घूमते पंजाब पहुंचे और राजा ध्यानसिंह की हवेली में अपना व्याख्यान लाहौर निवासियों को सुनाया उस समय मैं वहां पर उपस्थित था। नई दुनिया से लौटे हुए इस सन्यासी को देखने का मेरे मन में बड़ा कौतूहल था, पर भीड़ अधिक होने के कारण मैं भली प्रकार स्वामी जी के दर्शन न कर सका। मेरी आंखें भी ऐसी अच्छी न थीं कि वे दूर खड़े हुए व्याख्यान-दाता को भली प्रकार अपनी दृष्टि में ला सकतीं। इसके बाद स्वामी जी के कई व्याख्यान लाहौर में हुए किन्तु

नये संस्करण की भूमिका

—○:०:※:०:○—



"अमरीका-दिग्दर्शन" को पहिले पहल मैंने सन् १९१८ में प्रकाशित करवाया था। इसके बाद इस उपयोगी पुस्तक के कई संस्करण निकले। कई पुस्तक प्रकाशकों ने इसके संस्करण छपवा कर जनता में इसका प्रचार किया। इसके अनुवाद गुजराती, अंग्रेज़ी, बंगला और मलयालम आदि प्रान्तीय भाषाओं में भी निकल चुके हैं; मेरे पास इसके अनुवाद छापने के आज्ञा पत्र मांगने की चिट्ठियाँ बराबर आती रहती हैं; मरहट्टी में भी इसका अनुवाद हो चुका है। मैं प्रसन्न हूं कि मेरी इस पुस्तक ने मेरे देशवासियों के हृदयों में ऐसा प्यारा स्थान पाया है। मुझे विश्वास है कि हिन्दी साहित्य में यह ग्रन्थ सदा जीवित रहेगा।

अमरीका जाने की मेरी कथा सचमुच बड़ी मनोरञ्जक है। जब सन् १९११ में मैंने अपना अमरीका-पथ-प्रदर्शक छपवाया था तो उस समय मुझे स्वप्न में भी इस बात का ध्यान नहीं था कि मेरी अमरीका सम्बन्धी पुस्तकें इतनी लोकप्रियता प्राप्त करेंगी। सैकड़ों नवयुवक 'अमरीका-पथ प्रदर्शक' हाथ में लेकर अमरीका पहुंच गये और बहुत से सैलानी भारतीयों को उस पुस्तक ने लाभ पहुंचाया। अब चूँ कि अमरीका जाने के प्रति बहुत से बन्धन अमरीकन गवरनमेन्ट ने लगा

दिये हैं इसलिये उस पुस्तक की इतनी उपयोगिता नहीं रह गई, अब तो "विदेश-पथ-प्रदर्शक" नाम की पुस्तक छापने की आवश्यक्ता पड़ेगी ताकि भारत से बाहर जाने वाले लोगों को विदेश यात्रा की सभी बातें मालूम हो जायँ। यह विचार कर मैंने अमरीका-दिग्दर्शन में अपने अमरीका पहुंचने की प्रस्तावना को इसी में दर्ज कर दिया है ताकि अमरीका-दिग्दर्शन की उपयोगिता और भी बढ़ जाए। मैं पन्द्रह रुपये लेकर अमरीका कैसे पहुँचा? इसकी कथा सुनने के लिये विद्यार्थी सदा उत्सुक रहते हैं और आगे को भी रहेंगे, इस कारण मैंने अमरीका पथ-प्रदर्शक के उस हिस्से को अधिक बढ़ा कर उस में बतलाने योग्य कई बातों का समावेश कर इस कथा को इसी प्रस्तावना में दे दिया है। मुझे विश्वास है कि अमरीका-दिग्दर्शन के प्रेमी उसे बड़े चाव से पढ़ेंगे।

मैं अमरीका कैसे पहुंचा ?

अमरीका पहुंचने की मेरी कथा सचमुच बड़ी विचित्र है। सन् १८९७ ई० में जब स्वामी विवेकानन्द जी देश घूमते घूमते पंजाब पहुंचे और राजा ध्यानसिंह की हवेली में अपना व्याख्यान लाहौर निवासियों को सुनाया उस समय मैं वहां पर उपस्थित था। नई दुनियां से लौटे हुए इस सन्यासी को देखने का मेरे मन में बड़ा कौतूहल था, पर भीड़ अधिक होने के कारण मैं भली प्रकार स्वामी जी के दर्शन न कर सका। मेरी आंखें भी ऐसी अच्छी न थीं कि वे दूर खड़े हुए व्याख्यान-दाता को भली प्रकार अपनी दृष्टि में ला सकतीं। इसके बाद स्वामी जी के कई व्याख्यान लाहौर में हुए किन्तु

मैं उनको सुनने न जा सका। स्वामी विवेकानन्द जी के लाहौर आने से पहिले मेरे अन्दर विदेश घूमने की प्रबल इच्छा थी और साथ ही देश की आज़ादी के ख़यालात मेरे अन्दर बड़े मज़बूत थे। स्वामी जी का व्याख्यान सुनने के बाद अपनी पुरानी इच्छा को मैंने अधिक मज़बूत कर लिया। सन् १८९८ ई० से लेकर सन् १९०१ ई० तक के मेरी ज़िन्दगी के दिन मानसिक सङ्कल्प विकल्पों की उधेड़ बुन के हैं। मैं पहिली बार घर से भागकर पैदल अमृतसर चला गया; फिर दुबारा भाग कर संस्कृत पढ़ने के लिए कानपुर पहुँचा; कुछ समय तक कालिज में भी शिक्षा पाई और उसे भी छोड़ दिया; आख़िर में संयुक्त प्रान्त के कई शहरों में ब्रह्मचारियों की तरह पर्य्यटन करता हुआ काशीपुरी में आगया, और वहां संस्कृत पढ़ने लगा।

काशी में मेरा तीन चार वर्ष का जीवन पुराने ढर्रे का विद्यार्थी जीवन है। उस समय मैं बड़ा कट्टर आर्य समाजी था। काशी की गलियों में दिन भर घूम कर पण्डितों से पाठ पढ़ना और फ़ुरसत के समय अपनी मित्र-मण्डली में आर्य समाज की चर्चा करना और रविवार के दिन आर्य समाज मन्दिर बुलानाला में समय समय पर व्याख्यान देना, बस इसी प्रकार के दिन यहां मेरे कटते थे। यहां मेरा परिचय बाबू दुर्गाप्रसाद जी खत्री बी० ए० से हुआ। आप शहर से बाहर लक्सा बगीचे में रहते हैं। आपने मुझे अपने बगीचे में एक कोठरी रहने को दी और स्वयम् मुझे पदार्थ-विज्ञान (Physical Science) की शिक्षा देने लगे। अपने परम मित्र पण्डित राम नारायण जी मिश्र की सलाह से मैं यहां हिन्दू कालेज में भरती होगया और लगा कालेज की शिक्षा पाने। पदार्थ-विज्ञान की तालीम ने मेरे मस्तिष्क में थोड़ी सी हलचल पैदा कर दी

और मेरे मज़हबी कट्टरपन को कुछ ठेस लगाई। मुझे स्वतंत्र विचार करने की आदत पड़ने लगी। बाबू दुर्गा प्रसाद जी अपने ढंग के निराले मनुष्य हैं। आपकी बुद्धि बड़ी विलक्षण है और आप के सोचने का ढंग तो वैज्ञानिक होना ही था। आप बड़े प्रेम से मेरे साथ भिन्न भिन्न विषयों पर वादाविवाद करते और सदा मेरे हृदय पर पदार्थ विज्ञान की महत्ता की छाप डालने का प्रयत्न करते।

यहीं काशी में इस प्रकार विद्याध्ययन करते हुए मेरे हृदय में अमरीका जाने की इच्छा बड़ी तीव्र हो उठी। मेरी अवस्था इस समय करीब छब्बीस वर्ष की थी। आयु का यह समय कैसा भयंकर होता है, इसे वे ही समझ सकते हैं जिन्हें ईश्वर ने नीरोग शरीर दिया है और साथ ही बड़ी उग्र कामाग्नि। जब जवानी के इन दिनों में कामदेव द्वारा उत्पन्न की हुई विकट घड़ियाँ उपस्थित होती थीं तो मैं अपनी कोठरी में बैठकर अल्हड़ बच्चे की तरह घुटने टेक कर ज़ार ज़ार रोया करता और ईश्वर से सहायता माँगता था। जब मैंने देखा कि कामदेव के साथ मेरा युद्ध बड़ा भीषण होता जाता है तो मैंने अमरीका जाने का निश्चय किया। लोहे को लोहा ही काट सकता है और विष की औषधि विष ही है। मैंने सोचा कि साधन रहित बिना पैसे के जब मैं अमरीका जाने के लिए समुद्र में कूद पड़ूँगा तो उसे पार करने में या तो मेरी हत्या ही हो जायगी या मैं उस संग्राम में पड़ कर अपनी जवानी के शत्रु के जाल से छूट जाऊंगा। मैंने यह सोचा कि अमरीका जाने का कठिन युद्ध मेरी जवानी के मद को मिटा देगा और मैं अमरीका जाकर किसी अच्छे सुन्दर नगर में बस जाऊंगा और वहीं स्वतंत्र देश की जल वायु में गृहस्थाश्रम के धर्म का पालन

करूंगा। गुलाम देश में रहकर गुलाम बच्चे पैदा करने का मैं सख़ विरोधी हूं इसीलिए मेरे अन्दर विदेश यात्रा करने की उत्कट इच्छा थी। सन् १६०४ ई० के अन्त में मैंने अमरीका जाने का प्रोग्राम बना लिया और उसके लिए सब प्रकार के कष्ट सहने को तय्यार हो बैठा। कई अमरीका प्रवासी भारतीयों के उत्तेजना पूर्ण लेखों से मुझे बड़ी सहायता मिली ख़ास कर स्वामी रामतीर्थ जी के लेखों ने मुझे अधिक सहारा दिया। प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षू अनागरिक धर्मपाल इन दिनों काशी जी पधारे। आपने बड़ी कृपा कर मुझे एक परिचय दायक पत्र शिकागो के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय के प्रेसीडेण्ट, मिस्टर हारपर के नाम दिया। इस प्रकार सब किस्म की वाक़फ़ीयत अपनी जेब में रख कर मैं अमरीका जाने की धुन में मस्त होगया।

नवम्बर के महीने में लाहौर में आर्य-समाज के लोक-प्रिय उत्सव होते हैं। अपने कई एक काशी निवासी मित्रों के साथ मैंने लाहौर जाने का निश्चय किया ताकि उत्सव में भी सम्मिलित हो सकूँ और साथ ही अपने परिवार वालों से विदेश-यात्रा करने से पहिले अन्तिम भेंट कर लूँ। जब मैं लाहौर गया और अपने परिवार वालों से विदेश यात्रा सम्बन्धी चर्चा की तो वे सब मेरी मसखरी उड़ाने लगे। वे मुझे शेखचिल्ली समझते थे। वे कहते थे कि धन के बिना विदेश यात्रा की बात निरा पागलपन है और मेरे पास थे कुल जमा पन्द्रह रुपये!

जब पिता जी के सामने सारा मामला पेश हुआ तो और भी दिल्लगी हुई। पिता जी ने मुझे बहुत समझाया और कहा कि ऐसी मूर्खता केवल आत्महत्या है, पर मेरे अन्दर तो आग

लगी हुई थी और उस आग को केवल अमरीका जाने की धुन ही बुझा सकती थी, इसलिये भला मैं किसी की बात कैसे सुन सकता था। मैंने प्रण कर लिया कि चाहे कुछ ही क्यों न हो, मैं अमरीका ज़रूर पहुँचूगा। यहां मैं अपने प्रेमी मित्रों से भी मिला और उनसे अपनी धुन का ज़िक्र किया। उत्साह वर्धक शब्दों से उन्होंने मेरी झोली भर दी और मैंने उसी को सहर्ष स्वीकार किया। आर्य-समाज का जलसा समाप्त हो गया और मैं काशी लौट आया।

दिसम्बर का सारा महीना मेरा अमरीका के स्वप्न देखते बीता। रात के समय सोने से पहिले मैं अपने मन में यात्रा के फ़र्ज़ी चित्र बनाता और बिगाड़ता था। सन् १६०५ ई० की पहिली जनवरी का दिन मैंने काशी छोड़ने का पक्का कर लिया। मेरी धन की पूँजी केवल पन्द्रह रुपये थी, लेकिन मेरे पास इरादे की दृढ़ता का भरपूर ख़ज़ाना था। आख़िर पहिली जनवरी का दिन आ गया। बाबू दुर्गा प्रसाद जी से प्रेम पूर्वक विदा मांग कर प्रभात की गाड़ी से मैंने काशी से प्रस्थान किया। काशी छोड़ते समय मेरे हृदय की अजीब हालत थी—साधनहीन मैं संसार-संग्राम के लिये जा रहा था। मेरे अन्दर जो उछल कूद हो रही थी उसका वर्णन क्या लेखनी से किया जा सकता है? जब गाड़ी डफ़रिन ब्रिज से होकर चली और मैंने काशी जी का प्रभाती दृश्य देखा तो मेरी आँखों में आँसू भर आये और मेरे मुँह से बेइख़्तयार यह निकला—

खुश रहो अहले वतन हम तो सफ़र करते हैं।
दरो दीवार पै हसरत से नज़र करते हैं॥

इस प्रकार मैं आहें भरता हुआ काशी से जुदा हुआ। काशी से इलाहाबाद, इलाहाबाद से जबलपुर और जबलपुर से बंबई पहुंचा। भारतवर्ष के पश्चिमीय किनारे पर पाश्चात्य ढङ्ग का यह नगर हमारा सब से सुन्दर बन्दरगाह है। योरुप जाने का यह दरवाज़ा है। यहां का जल-वायु मध्यम दर्जे का है। समुद्र के किनारे होने से शीत और उष्ण दोनों ऋतुओं का प्रभाव बराबर हो जाता है। यात्री जब इस प्रसिद्ध नगर के बाज़ारों और गलियों में घूमता है तो यहां की खूबसूरती उसके हृदय को अपनी ओर खींचती है। यहाँ की बड़ी बड़ी अट्टालिकाएँ और भव्य भवन अपने ढङ्ग के बिलकुल अनूठे जान पड़ते हैं। गौर वर्ण गुजराती तथा कच्छी स्त्रियां और पुरुष सड़कों पर घूमते हुए बड़े भले मालूम पड़ते हैं। उनके साथ बात करने से एक विचित्र मधुरता उनकी भाषा में मिलती है। व्यवहार-कुशल पारसियों का तो यह नगर मानों घर ही है। उनके सिरों पर लम्बी काली टोपियां एक अजनबी को बड़ी अनोखी मालूम होती हैं। परदे के जाल से मुक्त गुजराती और पारसी रमणियाँ बागों में घूमती हुईं चित्त को अत्यन्त प्रसन्न करती हैं।

ख़ैर मैं बम्बई आर्य्य समाज में जाकर ठहरा। डा० कल्याण दास जी देसाई इस समय आर्य्य समाज के मंत्री थे। भाई ज्येष्ठा लाल जी एक खास उत्साही सज्जन व्यक्ति मुझे यहां आर्य्य समाज में मिले। आप ने बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया। यद्यपि आप की दूकान बहुत छोटी सी थी पर आपका हृदय था बड़ा विशाल। यहां रह कर मैंने देखा कि बम्बई आर्य्य समाज में जो अतिथि बाहर से घूमते घामते आ जाते उनका भाई ज्येष्ठा लाल जी बड़ा सत्कार करते। इन्हीं की

भद्र सहानुभूति से यहाँ मेरे दिन बड़ी अच्छी तरह से कटने लगे और मैं लगा अमेरिका यात्रा के साधन जुटाने।

काशी के मेरे पुराने परिचित श्री सोमदेव जी भी यहाँ आ निकले। उनकी इच्छा भी अमरीका जाने की थी। अब हम एक से दो हो गये। हमारा काम दिन भर बम्बई के बन्दरगाह पर घूमना था। बन्दरगाह पर जहाँ जहाज़ आकर ठहरते हैं वहाँ हम दोनों रोज जाते और अपनी किस्मत का तराजू तोलते थे, लेकिन वह सदा हलका ही निकलता था। हम लोगों को लाख सिर पटकने पर भी जहाज की मल्लाही न मिली क्योंकि वहाँ पुराने अनुभवी खलासियों की जरूरत थी, भला वहाँ हमारे जैसे रंगरूटों को कौन पूछता था। इस प्रकार हमारे कई दिन बरबाद हो गये और हम दोनों निराशा की सीमा तक पहुँचने लगे। सोमदेव बेचारे ने तो राक्षसी निराशा के सामने सिर झुका दिया पर मैंने हिम्मत न हारी और अपनी धुन में बराबर मस्त रहा। मैंने यह सोचा कि कुछ दिन तक गुजरात और काठियावाड़ की आर्य्यसमाजों में घूमा जाय, इस बीच में अमेरिका जाने लायक किराया का प्रबन्ध भी हो सकेगा। बस यही किया।

अप्रैल मास तक मैं गुजरात और काठियावाड़ में घूमता रहा। आर्य्य समाजों तथा अन्य सभा सुसाइटियों की ओर से प्रान्त के भिन्न २ नगरों में मेरे व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया। विद्या-रसिक गुजराती बन्धु मेरे विचारों को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने मेरे साथ बड़ी सहानुभूति प्रगट की। काठियावाड़ के जूनागढ़ तक मैंने दौरा लगाया और इधर की धर्मपरायण जनता से परिचय प्राप्त किया। वैष्णव

धर्म्म ने इधर के लोगों में हृदय की कोमलता उत्पन्न कर दी है, जिसके कारण इधर के लोगों में शालीनता की मात्रा अधिक है। इस यात्रा से मुझे बड़ा लाभ हुआ। आर्य्य-समाज के श्रद्धालु भक्तों ने मेरे लिये हाङ्कांग जाने लायक रुपया एकत्रित कर दिया। भाई ज्येष्ठालाल जी ने मेरी ख़ास तौर से सहायता दी, उनका मैं सारी उम्र तक कृतज्ञ रहूंगा। मैंने विचार यह किया कि बम्बई से कलकत्ता जाऊँ और वहाँ से हाङ्काङ्ग होता हुआ अमरीका जाने का यत्न करूँ। ईश्वर पर विश्वास रख मैंने अपना प्रोग्राम बनाया और बम्बई से कलकत्ता की ओर प्रस्थान किया।

इस समय मेरे पास पौने तीन सौ के करीब रुपये थे। इतने रुपयों से मैं अमरीका नहीं पहुंच सकता था, क्योंकि अमरीका पहुँचने के लिये कम से कम पाँच सौ रुपये की ज़रूरत थी। जब मैं कलकत्ता पहुँचा तो मैंने अपने मन में यह स्थिर कर लिया कि भारत से बाहर निकल कर किसी टापू में कुछ समय तक मेहनत मज़दूरी द्वारा धन उपार्जन करूँगा। कलकत्ते में मेरी भेंट भाई सोहनलाल रवी से हो गई। आप भी अमरीका जाने के लिये घर से निकले थे और इनके पास रुपया भी काफी था। आप की इच्छा कृषि-विद्या सीखने की थी। अब हम दो जने हो गये। इसलिये मेरा उत्साह और भी बढ़ गया। हम दोनों जने अपनी कठिन यात्रा की तैयारी करने लगे। मेरे पास तीन कम्बल थे, एक बड़ा लम्बा ओवर कोट मैंने सिलवाया, एक काली बनात का सूट भी तैयार करवा लिया। मेरे पास एक बड़ा सन्दूक पुस्तकों का था वह भी मैंने साथ ले जाना चाहा। लेकिन बाद में कुछ सोच विचार कर उसे अपने एक मित्र के पास रख दिया। बहुत अच्छा होता यदि मैं

अपनी किताबें बिलकुल ही न ले जाता, क्योंकि मुझे बाद में पुस्तकों तथा दूसरे असबाब के कारण बड़ी ही तकलीफ़ हुई। विदेश यात्रा करने वाले लोगों के पास जितना कम सामान हो उतना ही अच्छा है। योरुप अथवा अमरीका में अलग अलग फ़ैशन होने के कारण कपड़े वहीं पहुंच कर तैयार करवाना लाभदायक होता है। भारत के बने हुए कपड़े वहाँ विशेष उपयोगी नहीं होते, इसलिये विदेश जाने वाले बन्धु थोड़े से काम लायक कपड़े यहां से साथ ले जावें, अधिक बोझ बाँधना केवल दुःखदाई हो जाता है। अत्यन्त आवश्यक वस्तु साथ में ले लेनी उचित है। एक काला गरम और दूसरा ख़ाकी ज़ीन का सूट बनवा लेना चाहिये इससे यात्रा में कष्ट नहीं होता। अपने नित्य की चीज़ें खरीद कर मैं निश्चिन्त हो गया और भारत से प्रस्थान करने की तैयारी कर ली।

हमारा स्टीमर ८ मई को जाने वाला था। पहले हमने डैक का टिकट खरीदा था पर जब पूछ ताछ करने पर डैक के मुसाफिरों की तकलीफ़ों का पता लगा तो मैंने और मेरे साथी ने पीनाङ्ग तक दूसरे दर्जे का टिकट खरीद लिया। जब हम कलकत्ता बन्दरगाह पर जहाज़ के निकट पहुँचे तो वहाँ एक अजीब दृश्य देखने में आया। चार पाँच सौ पंजाबी सिक्ख हुगली नदी के किनारे बन्दरगाह पर बैठे हुये ग्रामीण गाने गा रहे थे और अपनी धुन में ऐसे मस्त थे कि मानों वे विवाहोत्सव पर जा रहे हैं। जहाज पर चढ़ने से पहले डाक्टरी परीक्षा होती है। हम चूँ की दूसरे दरजे के मुसाफिर थे इस लिये डाक्टर ने खाली नबज़ देख कर हमारी परीक्षा करली और हमने अपना असबाब किश्तियों पर लदवा कर जहाज पर भेज दिया। मेरे मित्र रवी, तो असबाब भेजने में व्यस्त थे

परन्तु मैं घाट पर खड़ा हुआ मन के घोड़े दौड़ा रहा था—हा! अब भारत से जाना होगा; न जाने बाहर जाकर क्या दशा होगी। एक बालक की भांति मेरा चित्त अधीर होगया और मैं कायर सा हो अश्रुपात करने लगा। जब मैंने उन ग्रामीण सिक्खों की ओर फिर दृष्टि डाली तो मुझे अपनी कायरता पर बड़ी लज्जा आई और मैंने अपने आप को बहुत धिक्कारा। आँखों से आँसू पोछ कर मैं चैतन्य हो गया। मेरे मित्र असबाब लदवाने के काम से फुरसत पाकर मेरे पास आगये और हम दोनों किश्ती में बैठ कर जहाज़ की ओर चले। यह जहाज़ अंग्रेजी कम्पनी आपकार का था उसके कप्तान ने हमारे साथ बड़ी दुष्टता का व्यवहार किया। हमें एक अंधेरी कोठरी में जगह दी, दूसरे दरजे की ऐसी कोठरी जाड़े में तो बड़ी सुखदाई होती है पर गरमियों में तो यह नर्क सम बन जाती है। खैर, हम लोगों ने इसी में डेरा किया। कप्तान ने हमसे तो यह कह दिया कि जहाज़ में इस केबिन के सिवाय दूसरी कोठरी खाली नहीं, लेकिन तीसरे दर्जे के यात्री अँग्रेज़ मुसाफ़िरों को उसने एक बड़ी अच्छी दूसरे दर्जे की कोठरी दे दी थी। अँग्रेजी जहाज़वाले प्रायः इस प्रकार का व्यवहार हिन्दुस्तानी मुसाफ़िरों के साथ करते हैं।

अब यात्रा का हाल सुनिए। पहिली रात तो हमारी बड़े ही कष्ट से गुजरी। सारी रात बैठकर काटी। इन दिनों गर्मी सख्त पड़ रही थी और अभी हम लोगों को एक दो दिन हुगली में लगने थे। जब हुगली दरिया से निकल कर बङ्गाल की खाड़ी में पहुँचे तो समुद्र देवता ने अपना भीषण रूप दिखाना आरम्भ किया। यह मौसम समुद्र के यौवन का होता है। जहाज डोलना आरम्भ हुआ। बड़ी बड़ी लहरें उठ कर यात्रियों से

हाथ मिलाने दौड़ती थीं—केवल हाथ मिलाना ही क्या, बल्कि उनको प्रेमका पूरा स्नान कराती थीं। हम लोग तो ऊपर दूसरे दर्जे के डेक पर थे, परन्तु उन विचारे सिक्खों पर तो आफ़त ही आगई, उनके सारे कपड़े भीग गये और उनकी सब खाने पीने की चीजें पानी से तर होगईं; उन बेचारों को न दिन को आराम और न रात को नींद आती थी; वे अधमुए से पड़े थे। मेरे साथी ने भी चार दिन तक खाना नहीं खाया और मुर्दे के समान पड़ा रहा। मैं अपने साथ कुछ नमकीन चीज़ें तथा कुछ निम्बू लाया था इससे मुझे बहुत ही लाभ पहुंचा। जब समुद्र क्षुभित हो और जी मिचलाने लगे तो नमकीन वस्तु खाने से अथवा निम्बू चाट लेने से मिचलाई दूर हो जाती है। मैं बराबर काम करता था और अपने मित्र की सेवा सुश्रुषा में भी लगा रहता था। चार पाँच दिन के बाद समुद्र देवता ने शान्त रूप धारण किया और हम लोग पीनाङ्ग की खाड़ी के निकट पहुँच गये। अब जहाज़ के सफ़र का आनन्द आने लगा, समुद्र की सतह पर यह छोटा सा स्टीमर ऐसे आनन्द से जा रहा था मानो बत्तख़ पानी पर तैर रही हो। संध्या के समय जब सूर्य देव अस्ताचल पर पहुंचते तो दृष्य बड़ा ही मनोहर हो जाता था। सुनहरी किरणों पानी पर पड़ कर भांति २ के रंग धारण करती थीं। पिनाङ्ग की इस खाड़ी में यात्रा करते समय हमें ऐसा आनन्द आया कि पिछला दुख सारा भूल गया। शांत समुद्र एक झील की तरह मालूम पड़ता था। निर्मल आकाश होने पर जैसे सरोवर में हवा के झोंकों से हलकी हलकी तरंगे उठती हैं इसी प्रकार पीनाङ्ग की खाड़ी में समुद्र का दृष्य था। हम लोग सारा दिन डेक पर बैठे समुद्र की

मनोहारिणी छवि का आनन्द लेते थे और ताश भी खेला करते थे।

एक दिन मैं अपने भारतीय बन्धुओं को देखने के लिये गया। वे भी समुद्र के रमणीय दृश्य से अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। अपना पिछला दुःख उन्होंने बिलकुल भुला दिया था। उन्होंने अपने सारे कपड़े सुखा लिए थे और वे भी दिन भर या तो ताश खेला करते या पंजाबी भाषा में 'बोलीयाँ' गाते थे। उनको एक ही कष्ट था। वे भेड़ बकरियों की तरह डेकपर खचाखच भरे हुए थे और साथ ही मल्लाह लोगों का बर्ताव भी उनके साथ भले मनुष्यों जैसा न था, एक और बड़ी भारी तकलीफ डेक के यात्रियों को यह थी कि जहाज़ पर लदे हुए पशुओं की लीद की दुर्गन्ध इन लोगों की नाक में दम करती थी। यह पशु, मांसहारी सभ्य मनुष्य और स्त्रियों के लिये भारतवर्ष से दूसरे बन्दरगाहों में जा रहे थे। डेक के यात्री प्रायः इस प्रकार के कष्ट स्टीमरों पर भोगते हैं। जैसे भारतवर्ष में रेल के तीसरे दरजे के मुसाफिर यात्रा करते समय दुःख भोगते हैं, ऐसा ही जहाजों पर यात्री कष्ट उठाते हैं। जिन यात्रियों के पास झुलई शैय्या (Hammock) थी। वह बड़े आनन्द में रहे बहुत से यात्रियों की चीज़ें समुद्र में बह गई थीं। जिनके खाद्य पदार्थ भीग गए थे वे उन के सुखाने में लगे हुए थे। जहाज पर मांगने से कोई चीज़ नहीं मिलती। अपनी चीज़ से ही सुख मिलता है। जिन के पास आराम कुर्सी अथवा झुलई शैया रहती है वे अपनी मर्ज़ी के मुताबिक आराम की जगह देख कर यात्रा का आनन्द लेते हैं।

आखिर, यात्रा की सब प्रकार असुविधाओं को सहते हुए, तथा साथ ही पीनांग की खाड़ी का नैसर्गिक दृश्य देखते

हुए हम पीनांग नगर की बन्दरगाह के पास पहुँच गये। आज प्रातःकाल स्टीमर बन्दरगाह के सामने पहुँच गया। आकाश निर्मल था; प्रभाती दृश्य बड़ा मनोहर था स्टीमर बन्दरगाह से कुछ फासले पर खाड़ी में खड़ा हो गया। स्टीमर से उतरने वाले यात्रियों को लेने के लिए छोटी छोटी डोंगियां आने लगी। हम लोग तो आगे से ही तैयार बैठे थे। नौकरों को कुछ दे दिला कर, अपने काम से फारिग होकर, हमने भी एक डोंगी पर अपना असबाब लदवाया और किनारे की तरफ चले।

पीनांग स्ट्रेट सैटलमेन्ट का बड़ा ही खूबसूरत शहर है। अपने ढंग का यह नया ही शहर देखने में आया। हमने तो पहले कभी ऐसा शहर नहीं देखा था, सुन्दर साफ गलियों पर जिनरिक्षा दौड़ते हुए बड़े ही विचित्र दीख पड़ते थे। हम लोगों ने पहले कभी जिनरिक्षा की सवारी नहीं देखी थी। इस लिये स्वभाविक ही इन पर चढ़ने को दिल करता था। एक जिनरिक्षा मैंने पकड़ा और एक मेरे मित्र ने। अपना अपना असबाब उनमें रख हम लोग चले। यह भी खूब सवारी है। एक लम्बी चोन्टी वाले चीनी का रिक्षा को खेंचते हुए भागना बड़ा ही अजीब मालूम होता था। अपने देश में तो इसाई औरतों या मेमों की गाड़ियों को खैंचने वाले अपने भारतीय बन्धु बहुधा देखने में आये थे। लेकिन उनको देख कर कभी भी अपने प्रति उनके प्रति दया का भाव उत्पन्न नहीं हुआ था। हम लोगों ने तो अपने देशीय बन्धुओं की दुर्दशा को एक साधारण बात समझ रक्खा है, और अपने आपको बड़ा समझ दूसरों की भलाई का ख्याल मन में लाते ही नहीं। क्यों न हो, तभी तो ऐसी दुर्दशा है।

चलिये पाठक, हम आप को पिनाङ्ग की गलियों की ओर ले चलें और जिनरिक्षा की सैर करावें। बन्दरगाह से चल कर हम लोग पिनाङ्ग के सिख गुरुद्वारे की तरफ रवाना हुए। नगर की साफ़ सुन्दर गलियों की शोभा देखते हुए चले। रास्ते में जगह जगह सिख सिपाही देखने में आये। उनके लम्बे लम्बे कद, बड़ी बड़ी दाढ़ियाँ और सिरों पर बड़ी बड़ी पगड़ियाँ भारत भूमि के गौरव को बढ़ाने वाली थीं। परन्तु इसके साथ ही यह प्रश्न मन में उठने लगते थे कि भारत माता के यह सपूत यहाँ खड़े क्या कर रहे हैं। इस प्रकार के प्रश्न चित्त को दु:खी करते थे परन्तु हो क्या सकता है जिन प्रश्नों का सम्बन्ध सारी समाज के साथ हो वे तो समाज के सुधरने पर ही हल हो सकते हैं। एक व्यक्ति के हृदय में उत्पन्न हुए भाव जब तक सारी समाज में न फैल जाएँ तब तक उन भावों से क्या फल निकल सकता है? समुदाय की समस्याएँ समुदाय के सुधार पर ही अवलम्बित हैं। यह सिक्ख सिपाही जो पीनाङ्ग की गलियों में अंगरेज़ी सरकार के हुक्म से पहरा दे रहे थे अपने देश की दशा से बिलकुल अनभिज्ञ हैं, जब तक सारे भारतवर्ष में राष्ट्र धर्म के भावों का प्रचण्ड प्रचार न हो तब तक हमारे ऐसे ऐसे वीर पुत्र दूसरों की गुलामी के सिवाय और कर ही क्या सकते हैं। मलाया के प्रायद्वीप में अंगरेज़ी शासन पूरे ज़ोरों पर हैं। अङ्गरेज़ी सरकार पञ्जाबी सिक्खों को लाकर उन्हीं के बल पर यहाँ की जनता पर शासन करती है। पीनाङ्ग नगर इस प्रायद्वीप का प्रधान नगर है। यहाँ की गलियाँ और बाजार बड़े साफ़ सुथरे, सड़कें बड़ी अच्छी और मकान बड़े भव्य बने हैं। घूमते घामते हम सिक्खों के गुरुद्वारे में पहुंच ही गये।

सचमुच सिक्खों का यह मन्दिर पंजाब के हिन्दुओं की श्रद्धा भक्ति का सच्चा उदाहरण है। अपने प्रान्त से सैकड़ों मील दूर नौकरी करने वाले पंजाबी सिक्ख अपने धर्म को नहीं भूले हैं। यहाँ भी उन्होंने बड़ा सुन्दर गुरुद्वारा हरि कीर्त्तन के लिये बनाया है। जो लोग इधर आते हैं, जिनको नौकरी की तलाश होती है, या जिनकी नौकरी छूट जाती है वे सब इसी जगह विश्राम लेते हैं। अच्छा पक्का स्थान, मज़बूत फर्श, बड़े बड़े दालान, मुसाफिरों के आराम करने के लिये बड़े ही काम के बने हैं। यहां के ग्रन्थी महाशय बड़े सज्जन पुरुष थे। हम लोगों को उन्होंने बड़ी अच्छी तरह टिकाया और खाने पीने का बन्दोबस्त कर दिया। तीन चार रोज़ हम यहां रहे। मेरे मित्र के पास तो जाने के लिये काफ़ी रुपया था, इसलिये उन्होंने सिंगापुर जाने वाले जहाज़ का टिकट ख़रीद लिया और मुझको छोड़ चलते बने। मैंने कहा—"अच्छा, आप ने छोड दिया तो क्या हुआ, ईश्वर तो नहीं छोड़ेगा" और अपनी धुन में लग गया। एक पंजाबी मित्र ने मेरी सहायता करने का वचन दिया था, इसलिये मैं उनके साथ ईपू की तरफ चला गया। उधर भी अपने बहुत से आदमी हैं। अधिकांश तो सिक्ख लोग ही हैं, जो या तो फ़ौज़ में भरती हैं या वाचमैनी के काम में फँसे हैं। उनके अतिरिक्त कुछ और भारतीय जन मेहनत मज़दूरी द्वारा रुपया कमाते हैं। ये द्वीप अङ्गरेज़ों के अधीन हैं। और यहाँ के असली निवासी मलाई कहलाते हैं। वे अधिकतर मुसलमान हैं और अपने दीन के बहुत ही पक्के हैं, परन्तु ऐसे परिश्रमी नहीं हैं जैसे कि पञ्जाब के निवासी। यही कारण है कि उनके कारोबार दूसरी क़ौमों के हाथों में जा रहे हैं। इन द्वीपों में चीनी भी बहुत हैं और दक्षिण भारत के

कलिंग लोग भी यहाँ बसे हैं। कलिंग शब्द अंगरेजी "Killing" का अपभ्रंश है। दक्षिण भारत के जिन लोगों को मार डालने के अपराध में देश-निकाले की सज़ा मिलती थी वे यहीं पर भेज दिए जाते थे। दन्त कथा है कि जब किसी मलाई ने किसी गोरे से इन भारतीय अपराधियों के विषय में पूछा तो उसने जवाब दिया "They killing men"। इसी से इनका नाम कलिंग पड़ गया, पर मेरे विचार में ये लोग कलिंग प्रान्त के वासी होने के कारण कलिंग पुकारे जाते हैं। ये लोग पीनांग में अधिकतर हैं और यहाँ पर उनका एक मंदिर भी है, जिसमें ये लोग अपना पूजा-पाठ करते हैं।

अपने मित्र के साथ मैं ईपू की ओर गया तो, परन्तु वहाँ विशेष आर्थिक लाभ नहीं हुआ। हाँ, इधर उधर घूम कर भारतीय बन्धुओं की दशा देखने का अच्छा अवसर मिला। उनमें बहुत से तो फौज में भरती हैं। जिनमें सिक्खों की संख्या अधिक है। कुछ लोग गाय ख़रीद कर दूध का व्यापार करते हैं और कई एक ने दुकानें रखी हैं। सारांश यह कि भारतीय बन्धुओं का परिश्रम यहाँ पर उनके लिए अति फलदायक है। आबहवा यहाँ की अति उत्तम है। रेल में बैठे बैठे जङ्गलों और पहाड़ों के दृश्य मैंने देखे। उनको देख कर चित्त अति प्रसन्न हुआ। ईपू से लौट कर जब मैं अपने मित्र के गाँव की ओर आया तो वहाँ एक सिक्ख विद्यार्थी से मेरी भेंट हुई। वे भी अमरीका जाना चाहते थे। उनका नाम श्रीमान् पालासिंह था। अपने भाई से काफ़ी रुपया लेकर वे भी मेरे साथ पीनांग चले आये, और अब हम फिर दो जने हो गये। पीनांग से सिंगापुर तक जिस टिकट की क़ीमत स्टीमर कम्पनी वाले बारह डालर माँगते थे वह हमको चीनी सौदागरों

के हाथ ४॥ डालर पर ही मिल गया। जो लोग इस ओर सफ़र करना चाहते हैं उन्हें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इधर स्टीमरों के टिकट एक भाव पर नहीं बिकते इसलिए खूब सोच समझ कर अच्छी तरह दरयाफ़्त करके टिकट ख़रीदना चाहिए।

ख़ैर, हम लोग नियत दिन सिंगारपूर की ओर रवाना हुए। इस स्टीमर पर चीनियों की भरमार थी। इनकी लम्बी लम्बी चोन्दियाँ, गंदे कपड़े, यात्री के दिलों में उनके प्रति घृणा उत्पन्न करते थे। खाने की बाबत तो क्या कहना। मालूम होता है कि ईश्वर रचित कोई भी प्राणी ये लोग नहीं छोड़ते। कीड़े, मकोड़े, मेंडक, झींगे, कुत्ते, बिल्ली सभी कुछ वे लोग चट कर जाते हैं और इन जानवरों को ऐसा सड़ा सड़ा कर ये लोग खाते हैं कि देखने वाला हैरान हो जाता है। हम लोगों ने चार दिन बड़ी विपत्ति से काटे, क्योंकि अब तो मैं भी "डेक" मुसाफ़िर था और हमारे साथ जितने भारतीय यात्री थे उन बेचारों ने भी अति कष्ट सहन किया। सचमुच यह नर्क की यात्रा है। मैं अपने पाठकों से सविनय निवेदन करूँगा कि वे, जहाँ तक हो सके, अंगरेज़ी जहाजों से बचें। जर्मन और जापानी स्टीमर इतने ख़राब नहीं होते। इनमें डेक के मुसाफ़िरों की भी अच्छी ख़बरदारी की जाती है।

आख़िर सिंगापुर आया। हम लोग गुरुद्वारे में पहुँचे। मगर वहाँ पता लगा कि एक भारतीय सज्जन अपने कुटुम्ब सहित पास ही के मकान में रहते हैं। हमने उन्हीं के यहाँ जाना उचित समझा। उनके यहाँ जाने से हमको बड़ा आराम मिला। उन्होंने बड़े प्रेम से अपने घर में जगह दी। एक सप्ताह

अर हम उनके यहाँ रहे और इसके बाद हमने हाँगकाँग की तय्यारी की।

यहाँ पर यह बतलाना अनुचित न होगा कि इस पंजाबी सज्जन ने कई एक भारतीय बन्धुओं द्वारा मेरे साथ सहानुभूति करने का पूरा प्रयत्न किया और मैंने यहाँ दो तीन व्याख्यान भी दिए, जो, लोगों को, बहुत पसन्द आए। यहाँ से हमने अपनी लम्बी यात्रा के वास्ते कई एक छोटी छोटी चीज़ें भी ख़रीद कीं; जैसे बाल साफ़ करने की कंघी, ब्रश, टुथब्रश, उस्तरा, साबुन तथा और नित्य के काम की चीज़ें। जिस दिन हमें जाना था उससे एक रोज़ पहिले हम लोग सिंगापुर घाट पर गए, जहाँ बहुत से जहाज देखने में आये। सिंगापुर एक बड़ा भारी बंदरगाह है। छोटा सा यह द्वीप—चीन जापान एक ओर, भारत दूसरी ओर—इन देशों के बीच में नाका डाले हुए है। इसीलिए संसार की सब जातियों के स्टीमर यहाँ आकर ठहरते हैं और सिंगापुर इसी कारण से एक अच्छा सर्वमिश्रित (Cosma Politan) शहर हो गया है। हम लोगों ने इस बार जर्मन कम्पनी से टिकट ख़रीदा था, इसलिए सिंगापुर से हाँगकाँग जाने में हमें कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि चीनी भूत इस जहाज़ पर भी थे और एक बार मेरी उनसे खटपट भी होने लगी थी। बात यह हुई कि जहाँ मैंने बिस्तरा किया था वहाँ पर आकर पांच चार चीनी मज़दूर अपनी गुड़गुड़ियाँ ले अफ़ीम पीने लगे। उनकी दुर्गन्धि से मेरा सिर घूमने लगा। मैंने उनको समझाया कि वे वहाँ से उठ कर दूसरी तरफ़ चले जायँ। बजाय इसके कि वे मेरा कहा मानते, वे अपनी भाषा में "घाँ! घाँ!" करने लगे और जैसे एक कौवे की काँए काँए सुन कर बहुत से इर्द गिर्द के कौवे इकट्ठे हो जाते हैं, इसी

प्रकार इर्द गिर्द के सारे चीनी मज़दूर वहाँ आकर इकट्ठे हो गए। मेरे दिल में तो पहिले यह आया कि पाँच चार की चोन्टियाँ पकड़ कर इनको खूब पीटूं; परन्तु मेरे मित्र पालासिंह ने इसका विरोध किया। फिर मैंने यही मुनासिब समझा कि कप्तान के पास जाकर इसका निपटारा करना चाहिए। उनमें से एक चीनी अंग्रेजी जानता था। जब उसे मेरे इरादे का पता लगा तो वे सब चीनी उठ कर वहाँ से चले गए और मैंने अपने बिस्तरे को ठीक करके सोने की तय्यारी की।

सिंगापुर से हाँगकाँग जाने में छः रोज़ लगते हैं और यह चीनी समुद्र बड़ा ही छली है। भारी भारी तूफ़ान इस समुद्र में आते हैं। ईश्वर की बड़ी कृपा हुई कि हम लोग बिना किसी "डामाडोल" के हाँगकाँग पहुंच गए और रास्ते में किसी प्रकार का क्षोभ नहीं हुआ।

आइये पाठक, हम आपको हाँगकाँग की खाड़ी का दृश्य दिखावें। यह दृश्य सचमुच देखने योग्य है। एक पहाड़ी के ऊपर हाँगकाँग शहर बसा हुआ है और अर्धचन्द्राकार खाड़ी इसके सौन्दर्य्य को चौगुना कर देती है। छोटी छोटी डोंगियाँ, बड़े बड़े जहाज़, और चीनी डोंगे, इधर उधर घूमते फिरते बड़े ही भले दीख पड़ते हैं। शहर से दूसरी ओर खाड़ी पार जाने के लिए छोटे छोटे स्टीमर सदा चलते रहते हैं, जिन पर मज़दूर और नौकरी-पेशा लोग आते जाते हैं।

जिस समय हमारा जहाज़ इस खाड़ी में जाकर पहुंचा और मैंने इधर उधर निगाह दौड़ाई, हाँगकाँग के सुन्दर भवन देखे और अर्धचन्द्राकार मकानों का दृश्य देखने में आया तो मुझे पुनः काशी की याद आगई। पुण्या जान्हवी को दिल ही

दिल में नमस्कार कर हम लोग उतरने के लिए तैयार हो गये। जिस समय डोंगी वाले जहाज़ पर आए तो हमने भी एक ही साथ किराया ठीक किया और हाँगकाँग पहुंचे। स्मरण रहे कि यहाँ का सिक्का और ही तरह का होता है। सिंगापुर और मलाई डालर यहाँ नहीं चलते। डोंगी वाले बड़ा तंग करते हैं। डोंगी से उतर अपना असबाब एक गाड़ी में लदवा हम लोग सिक्ख गुरुद्वारे की ओर चले। ये गुरुद्वारे निर्धन भारतीय यात्रियों के लिए सचमुच बड़े ही लाभदायक हैं, नहीं तो नावाकिफ़ आदमी यहाँ किसी के चंचुल में फँस कर यूँही लूटा जा सकता है। गुरुद्वारे में पहुंच हम लोगों ने अपने डेरे डंडे लगा दिये और धर्मशाला के ग्रन्थी ने हमारे साथ बहुत अच्छा वर्ताव किया। यहाँ आकर मुझे पता लगा कि जो मित्र मेरे साथ कलकत्ते से आया था वह अभी यहीं है, वह अमेरिका नहीं गया था; क्योंकि कई एक दैवी बाधाओं के कारण वह भी यहीं रुक गया था। पाँच चार रोज़ हम लोग गुरुद्वारे में ठहरे और इसी बीच में कई एक और भारतीय अमरीका जाने की धुन में यहाँ पहुँच गये। अब तो अमरीका जाने वालों की एक ख़ासी टोली हो गई। श्रीमान् पालासिंह और मेरे मित्र रवि तथा दूसरे भारतीय लोग अमरीका जाने को उद्यत हो गये, और उन्होंने अपना अपना टिकट ख़रीद सब तय्यारियाँ कर लीं। मैं ग़रीब फिर भी रह ही गया; क्योंकि मेरे पास जाने लायक़ रुपया नहीं था। जिस रोज़ ये सब मित्र जहाज़ में चढ़ हाँगकाँग से चले, उस दिन मैं अधीर सा हो अपने कमरे में पड़ा रहा। कभी कुछ, सोचता था कभी कुछ। कोई बात समझ में नहीं आती थी। पहले यह दिल में आया कि स्याम चलना चाहिए; वहाँ कुछ रुपया कमा

फिर अमरीका जायंगे। स्याम जाने के लिए टिकट ख़रीदने मैं टिकट घर में भी गया; परन्तु किसी कारणवश उस दिन उधर के टिकट ही नहीं बटते थे। इस प्रकार की उधेड़बुन में मेरे कई एक दिन यहाँ पर लग गये। आख़िर फ़ैसला किया कि मनीला चलना चाहिये; क्योंकि मनीला जाने तक का किराया मेरे पास मौजूद था। यदि न भी होता तो भी हाँगकाँग के दो एक मित्र इतनी सहायता करने को तैयार थे।

मनीला फ़िलीपाइन द्वीप की राजधानी है। यह द्वीप समूह अमरीका वालों के अधीन है। कुछ थोड़े ही वर्षों से ये द्वीप अमरीका वालों के हाथ आये थे। पहले यहाँ स्पेन वालों का राज्य था; परन्तु स्पेन वालों ने फिलीपीनो लोगों पर बड़ा अत्याचार किया, इस कारण से फिलीपीनो लोग इनसे बड़े असन्तुष्ट थे। परन्तु बिचारे क्या कर सकते थे, जब तक कि दैव ही उनकी सहायता न करता। आख़िर दैव ने सहायता की। अमरीका वालों का जहाज़ "मेन" स्पेन वालों की ग़फ़लत से समुद्र में डूब गया। इसी पर स्पेन और अमरीका में घोर युद्ध मचा। परिणाम यह हुआ कि फ़िलीपाइन द्वीप अमरीकन राज्य के अधीन हो गये, तब से इनका भी भाग्य जगा।

अब हम अपने पाठकों को मनीला ले चलते हैं। मनीला उतरने में मुझे कोई दिक़त नहीं हुई। यद्यपि मेरी आँखें कमज़ोर हैं, परन्तु उनमें कोई बीमारी न होने से मुझे वहाँ उतरने में कोई रुकावट नहीं हुई, और मेरे पास दिखलाने के लिये काफ़ी रुपया था। मनीला पहुंच कर मैंने एक नया ढङ्ग इख़्त्यार किया। मनीला के अख़बारों में धार्मिक विषयों पर लेख लिखने शुरू किये और धर्म के प्रचार का काम आरम्भ किया। पहले

पाँच चार महीने तो मुझे कुछ भी कामयाबी न हुई और मैंने इधर उधर नौकरी कर अपने दिन काटे। जो कुछ रुपया मेरे पास था वह सब ख़र्च हो गया और मुझे निर्धनता ने आ घेरा। लेकिन किये हुए कर्मों का फल अवश्य मिलता है। एक अमरीकन सज्जन ने अख़बार में मेरे लेख पढ़ मुझको एक चिट्ठी लिखी और अपने पास आने की प्रार्थना की। मैं उन दिनों मनीला से उलंगापो काम की तलाश में गया हुआ था और वहाँ एक ठेकेदार के साथ साधारण मज़दूरी कर अपने दिन काट रहा था। जब अमरीकन सज्जन की चिट्ठी मेरे पास पहुंची तो मैंने मनीला जाने की ठानी और वहाँ पहुंच उस अमरीकन सज्जन मिस्टर स्काट से भेंट की। मेरी मेहनत फल लाई और मिस्टर स्काट ने मुझे अपने पास संस्कृत पढ़ाने के लिये रख लिया और यह वायदा किया कि वे मुझे मनीला से शिकागो तक का टिकट ख़रीद देंगे। तीन महीने तक मैं इनके पास रहा और इनको कुछ व्याकरण तथा दो तीन उपनिषदें पढ़ाईं। ये दिन मेरे बड़े ही आनन्द से कटे; क्योंकि नित्यप्रति स्वाध्याय और शास्त्रों पर विचार करने से मन को अति शान्ति रही।

जब तीन महीने बीत गये तो मिस्टर स्काट ने मेरे लिये शिकागो तक का टिकट ख़रीद दिया और मैं मनीला से हाँक-काँग रवाना हुआ। अब चूँकि मैं मनीला से अमरीका जा रहा था, इसलिये मुझे वही अधिकार प्राप्त थे जो एक फिलीपीनों को होते हैं। अब मुझे डाकृरी आदि में कुछ तकलीफ नहीं हुई। जिस जहाज़ पर मैं वैंकवर जा रहा था उस पर बहुत से पञ्जाबी भाई भी थे।

यह जहाज़ केनेडियन पैसिफिक कम्पनी का था। इस पर बहुत से यात्री नई दुनिया के जाने वाले थे। जिस दिन

हम अपना असबाब ले जहाज़ पर चढ़ने के लिये हाँगकाँग वार्फ़ से चले, उस रोज़ बहुत से जहाज़ हांगकांग खाड़ी में आये हुए थे; क्योंकि हाँगकाँग भी एक बड़ा भारी बन्दरगाह है और अङ्गरेज़ों ने यहां पर बड़ी भारी छावनी बनाई हुई है। संसार की क़रीब क़रीब कुल जातियां यहाँ देखने में आती हैं और यह शहर भी वास्तविक देखने योग्य है। बिजली की गाड़ियां यहां पर चलती हैं और एक सब से ऊँची पहाड़ी पर जाने के लिये भी गाड़ी का इन्तजाम किया गया है। यह गाड़ी पहाड़ी पर सीधी जाती है। बैठने वाले मुसाफ़िर को इन गाड़ियों में आनन्द भी आता है और कुछ कुछ डर भी लगता है। यह हक़ीकत में इन्जिनीयरिंग कौशल का बड़ा अच्छा नमूना है।

जिस समय हमारी किश्ती स्टीमर के निकट पहुँची और हम लोगों ने सीढ़ी द्वारा चढ़ना शुरू किया, तो मल्लाहों ने बदमाशी से हम लोगों के ऊपर जहाज़ की मोरी द्वारा पानी छोड़ दिया। उसी ख़राब पानी में भीगते भागते, लुड़कते, पुड़कते, हम लोग ऊपर जा पहुँचे, और अपने अपने सोने की जगह सम्भाली। हांगकांग से वैंकोवर जाने में २८ दिन के क़रीब लगते हैं, इसलिए जहाज़ वालों ने डेक मुसाफिरों के सोने के वास्ते नीचे के भाग में लकड़ी के छोटे छोटे—एक आदमी के सोने लायक़—तख्ते लगा दिये थे और ऐसा ही इन्तजाम क़रीब क़रीब दूसरे जहाज़ों में भी रहता है।

आख़िर हमारा जहाज़ हांगकांग से चला। शंघाई तक तो मुसाफ़िरों की संख्या नहीं बढ़ी, परन्तु कोबे और योकोहामा में बहुत से जापानी मुसाफिर जहाज़ में आ गये। ये भी डेक-

पैसिन्जर थे। मगर इनकी वरदियां बड़ी साफ सुथरी थीं। सिरों पर अमरीकन टोपियां पहिने ये लोग खूब जेन्टिलमेन बने हुए थे। एक तो हमारे यहां के लोग, जो मैले कुचैले कपड़े पहिने नई दुनिया की ओर चले थे और दूसरी ओर ये जापानी मज़-दूर अमरीकन फैशन में सजे सजाये साफ़ सुथरे बन, अमरीका में धन कमाने चले थे। इस मुक़ाबिले को देख कर मेरा चित्त बड़ा दुखी हुआ, क्योंकि जापानी मज़दूरों के सारे चिन्ह एक उन्नत जाति के सदृश थे और ये लोग अपने शत्रुओं के भी प्रशंसा-पात्र बनने योग्य थे। इसके विपरीत हमारे मज़दूरों को देख कर घृणा उत्पन्न होती थी। क्यों न हो, इन्हीं कारणों से हमारी सब जगह बेइज़्ज़ती हुई है; क्योंकि तंगदिली ने हमारे सब कामों में विघ्न डाल रक्खे हैं। यहीं इसी स्टीमर पर एशिया की तीन जातियां—भारत, चीन और जापान—के मज़दूर उपस्थित थे। एक विचारशील पुरुष के लिए यहीं पर काफ़ी सामग्री इन देशों की अवस्था समझने के लिए मौजूद थी। भारतीय मजदूरों को देख पता लगता था कि हमारी जाति संसार की सभ्य जातियों से कितना पीछे है। चालीस भारतीय मजदूर अपना समय लड़ाई झगड़ों, शराब के पीने तथा दूसरी अण्डबण्ड बातों में काटते थे। आपस में एक दूसरे के साथ मेल नहीं था। जब दो तीन भारतीय मजदूरों का कुछ चीनी मजदूरों से झगड़ा हो गया और चीनियों ने उन भारतीय मजदूरों को खूब पीटा तो दूसरे भारतीय मज-दूरों ने उनकी कुछ मदद नहीं की, उलटा बैठे तमाशा देखते रहे। चीनी मजदूर अफ़ीम पीने में अधिक व्यस्त थे, परन्तु एक गुण इनमें बड़ा भारी यह था कि जब एक पर मुसीबत पड़ती तो झट सारे के सारे उसका साथ देने को

तैयार हो जाते थे। जापानी मजदूरों का तो कहना ही क्या है। इन लोगों के पास अंगरेज़ी सीखने की पुस्तकें मौजूद थीं और ये लोग अमरीका देश की भाषा सीखने में अपना समय काटते थे। इसके अतिरिक्त नित्य प्रति दो एक घंटा जिजित्सु आदि जापानी खेलें कर अपना दिल बहलाते थे। संख्या में जापानी मजदूर सबसे अधिक थे परन्तु वे बड़ी शान्ति से प्रेम पूर्वक रहते थे। किसी प्रकार का झगडा नहीं करते थे। जब कभी हमारे भारतीय मजदूर शराब पीकर ऊधम मचाते तो ये सब लोग उनको देखकर बड़े हैरान होते थे। कई एक हमारे दुष्ट भाइयों ने कुछ जापानी महिलाओं को लज्जाजनक बातें भी कहीं, जिनको सुनकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ और मैंने उन लोगों को खूब ही फटकारा।

इस प्रकार हमारे दिन एक एक कर के बीत गये। पैसिफ़िक महासागर इन दिनों बड़ा शान्त होता है इसलिये किसी प्रकार की आँधी या तूफान नहीं आया। सारा महीना हमारा अच्छी तरह से बीत गया। जहाज भी बहुत ही बड़ा था। अतएव यदि किसी दिन हवा का वेग हुआ भी तो उसका अधिक असर हम लोगों पर नहीं पड़ता था। २८ मई को जहाज वैंकोवर जाकर लगा और डाकूरों में बहुत से आदमी घेरे गये; क्योंकि वहां पर अनपढ़ आदमियों को लूटने के कई एक ढङ्ग बनाये हुए थे। मुझे तो किसी ने कुछ नहीं कहा और मैं बिना किसी रुकावट के जहाज से उतर कर शहर चला गया।

वैङ्कोवर, कैनेडा का बड़ा प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह व्यापार की बड़ी भारी मण्डी है। यहां से United States of Amrica को ट्रेनें जाती हैं। यहाँ पर बहुत से सिख मजदूर

लकड़ी के कारखानों में काम करते हैं। क्योंकि मेरे पास शिकागो का सीधा टिकट था, इस लिये मैंने यहां ठहरना उचित नहीं समझा। कैनेडियन पैसिफिक कम्पनी की रेलें उत्तर कैनेडा में से होती हुई शिकागो की तरफ़ जाती हैं। ऐसी ही रेलगाड़ी में मैं बैठ गया और कैनेडा के बर्फ़ानी पहाड़ों के दृश्यों को देखता हुआ सेंट पाल की तरफ़ चला। इन दिनों भी यहां खासी सर्दी थी। हाङ्गकाङ्ग से मैं अपने साथ डेढ़ सेर के करीब घी में तली हुई चने की दाल लाया था, बस उसी ने मुझे पूरा सहारा दिया। वैङ्कोवर से शिकागो के लम्बे सफ़र में मैं उसी दाल को खा कर अपनी क्षुधा-निवृत्ति करता रहा और दूसरी कोई चीज रास्ते में नहीं खाई। सेंटपाल के रेलवे स्टेशन पर जब गाड़ी भोर के समय पहुँची तो मैंने जाना कि मेरा प्रवेश अमरीका में हो गया है। यहां से गाड़ी बदलती थी। जब एक भीमकाय अमरीकन रेलवे कर्मचारी ने शिकागो की ओर जाने वाली गाड़ी की घोषणा की तो मैं फ़ौरन बैञ्च से उठकर सामने वाले प्लेटफार्म पर चला गया। कुछ मिन्टों बाद गाड़ी आगई और उसमें मैंने शिकागो की ओर प्रस्थान किया।

× × × ×

अमरीका जाने के सम्बन्ध में यह संक्षिप्त कथा के बाद अब अमरीका दिग्दर्शन का पूरा आनन्द पाठकों को मिल सकेगा। इस पुस्तक में इस भाग का शामिल करना आवश्यक था; क्योंकि इसके बिना यह अधूरी मालूम होती थी। अमरीका दिग्दर्शन में छपे हुए लेख पहले सरस्वती और मर्यादा में निकले थे। बाद में उनका संग्रह कर उन्हे पुस्तकाकार किया गया। मेरा बहुत दिनों से विचार था कि मैं

अमरीका-दिग्दर्शन को अपनी अमरीका-प्रवास की मुख्य पुस्तक बना दूँ ताकि ग्राहकों को अलग २ पुस्तकें न लेनी पड़ें। और दो ही पुस्तकें--अमरीका दिग्दर्शन और अमरीका भ्रमण--मेरे अमरीका प्रवास को सारी कथा कह सकें। अब केवल अमरीका के निर्धन विद्यार्थी नामक छोटी सी पुस्तक अलग रह गई है। आशा है कि उसका भी समावेश अगले संस्करण में दिग्दर्शन के साथ हो कर दिया जायगा।

अच्छा पाठक! अब आप "अमरीका दिग्दर्शन" के मेरे सनुभवों का आनन्द लीजिये और मैंने जो चार नये निबन्ध इसमें बढ़ाए हैं उनसे भी लाभ उठाइये।

आर्य्यभवन, शिमला }
जूलाई १९२६ }

विनीत--
सत्यदेव परिव्राजक।

शुभसंवाद ! हर्षसमाचार !

अमरीका-भ्रमण

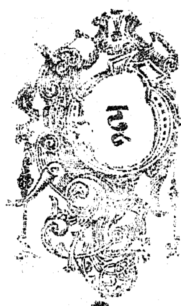
सत्यग्रन्थमाला के प्रेमी यह जान कर अत्यन्त प्रसन्न होंगे कि श्री स्वामी सत्यदेव ने अपनी अमरीका-भ्रमण की कथा को पूरा लिख दिया है। सन् १९१३ में अमरीका-भ्रमण का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ था, तब से हिन्दी संसार उस मनोरञ्जक कथा का पूरा आनन्द लेने के लिए बड़ा उत्सुक हो रहा था। वाशिंगटन रियासत के सियेटल नगर से चल कर, वाशिंगटन, आरेगन, कैलीफोर्निया, अरीज़ोना और न्यूमेक्सिको इन पांच रियासतों में २३०१ मील का पैदल भ्रमण स्वामी जी ने किया है। स्वर्णमयी कैलीफोर्निया के लोभायमान दृश्य, रेगिस्तानी अरीज़ोना की कठिन यात्रा और खूनी शीत की मौसम में न्यूमेक्सिको के बियाबानों में अकेले विचरना, यदि इन सब आप बीती घटनाओं का वर्णन आप पढ़ना चाहते हैं तो इस पुस्तक को मँगा कर देखिए। भारत के प्रत्येक विद्यार्थी के हाथ में यह पुस्तक पहुँचनी चाहिए। डेढ़ रुपया जेब में डाल कर विदेश में सैकड़ों मील कैसे घूमा जा सकता है इसकी कथा साधन रहित देश-बन्धुओं के लिए सचमुच पथ प्रदर्शक है। हिन्दी में इसे सच्चा राबिनसन-क्रूसो समझिए। मुख-पृष्ठ पर स्वामी जी का भ्रमण के समय का चित्र है। मूल्य १) रुपया।

निवेदक—मेहता चूड़ामणि वर्मा,
सत्यग्रन्थ माला आफिस,
पटना सिटी।

अमरीका-दिग्दर्शन

———:※:———

शिकागो में मेरी प्रथम रात्रि



सरी जून १९०६ का दिन मेरे जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन डालने वाला था। भारतवर्ष की प्राचीन नगरी काशी में साधारण वृत्ति पर विद्याभ्यास करते हुए, सांसारिक व्यवहारों से अनभिज्ञ मेरे जैसे पुरुष का अमरीका के प्रसिद्ध शिकागो नगर में बिना किसी प्रकार के जान पहिचान के प्रवेश करना वास्तव में एक आश्चर्य्य जनक बात थी। मेरे पास कोई परिचयदायक पत्र भी किसी मित्र के नाम का न था, यहाँ तक कि मैं इस के पूर्व कभी अपने जीवन में किसी होटल में नहीं गया था। काँटे और छुरी से किस प्रकार लोग खाना खाते हैं? कैसे किसी के साथ यहाँ बात चीत करते हैं?—इत्यादि बातों से मैं बिलकुल ही अनजान था।

प्रातःकाल १० बजे मैं वेंकोवर से शिकागो पहुँचा। वेंकोवर से शिकागो २८०० मील के करीब है। जब गाड़ी स्टेशन

पर पहुंची और "शिकागो" यह ध्वनि मेरे कान में आई, तब मैंने जाना कि स्टेशन आ गया। सब लोग जो गाड़ियों में थे, बाहर निकले और चल दिये। मैंने कहा—"मैं कहाँ जाऊँ ?"। सब से पीछे मैं अपना ट्रङ्क सँभाल गाड़ी से नीचे उतरा। जब टिकट देकर बाहर आखड़ा हुआ तब एक गाड़ी वाले ने मुझसे पूछा कि कहाँ जाना होगा ? कहाँ बतलाता ? किसी जगह का नाम भी नहीं जानता था, जहाँ जाकर ठहर सकता। सोचते सोचते Y. M. C. A. (यंग-म्यन्स-क्रिश्चियन-एसोसिएशन) का नाम स्मरण आया। अहा ! ईसाइयों की कदर बाहर आकर मालूम होती है ! ये सभायें क्या ही अच्छी हैं। यहाँ पर नवयुवक देशकी-जातिकी-सेवा करना सीखते हैं ; कोई परदेशी आवे तो उसकी सहायता करते हैं, और एक हमारे देश की धार्मिक सभायें हैं जिनका समय आपस के शास्त्रार्थ और एक दूसरे की मानहानि में व्यतीत होता है। तभी तो यह दुर्दशा है।

गाड़ी में बैठे बैठे मैं लोगों को इधर उधर देखता था। सब साफ सुथरे थे। नये बूट, नये सूट, बाल सँवारे हुए, क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी इधर उधर जा रहे थे। चार दिन के लगातार सफरसे मेरे कपड़े काले होगये थे। खासकर पतलून तो बहुत ही मैली हो गई थी। मेरे सारे वस्त्र बड़े सन्दूक में, जो मालगाड़ी में रक्खा गया था, थे ; और नया सूट न होने से मैं कपड़े बदल नहीं सकता था। मैं बार बार अपने कपड़ों की ओर देखता और अपना मुकाबला सड़क पर जाते हुए लोगोंके साथ करता था। इतने में गाड़ी Y. M. C. A. के पास आ-गई। गाड़ीवान ने दरवाजा खोला। एक लड़का फौरन असबाब उठाने के लिये आगे बढ़ा ; परन्तु जब उसने मेरे मैले कपड़े और चार दिन की डाढ़ी देखी तब वह ठहर गया। मैं ने

उसके चेहरे पर मुसकराहट पाई। मैं ने अपना ट्रङ्क उठाया और उस बड़ी अट्टालिका में गया। दूसरी मञ्जिल पर एसोसिएशन का दफ़्तर था। जब मैं अन्दर गया, एक नवयुवक मुझे मंत्री महाशय के पास ले गया; जो बड़ी नम्रता से मेरे साथ पेश आये। उन्हों ने मुझे किसी होटल में जाने की सम्मति दी। मैं चाहता था कि किसी जापानी विद्यार्थी का पता लग जाय तो अति उत्तम हो। एसोसिएशन के मंत्री ने कई जगह टेलीफोन किया, परन्तु कुछ पता न मिला। मुझे महाबोधी सोसाइटी का पता मालूम था. सो मैंने वहां जाकर किसी जापानी विद्यार्थी का स्थान जानने का निश्चय किया। अपना ट्रङ्क Y. M. C. A. में रख, मैं इस सोसाइटी की तलाश में निकला।

सड़क पर अजीब दृश्य था। स्त्रियाँ, पुरुष इधर उधर भागे से जा रहे थे। साफ सुथरे, प्रसन्नवदन अपने अपने कार्यों में ऐसे लगे हुए थे जैसे मधुमक्षिकायें। किसी को आलसियों की भाँति जाते हुए न देखा। सभी फुरतीले थे। क्या बुड्ढे, क्या युवा, क्या बालक, क्या बालिकायें, सभी काल-चक्र की भाँति घूमते थे। एक ओर छोटे छोटे बालक "डेलीन्यूज़" "रेकार्ड हेरल्ड" नामक दैनिकपत्र बेचते फिरते थे। बिजली की गाड़ियां खचाखच भरी हुई इधर से उधर, उधर से इधर, चल रही थीं। घोड़े गाड़ियां, छकड़े, माल असबाब से लदे हुए दिखाई देते थे। दूसरी ओर बड़े बड़े लोहे के खम्भों पर, सड़क से ४० गज़ ऊँचे अकाश में एक और सड़क थी, जिस पर दूसरी बिजली की गाड़ियां (Elevator Cars) गड़गड़ शब्द करती हुई इधर उधर भाग रही थीं।

मार्ग में मुझे सबसे पहले मेसानिक टेम्पल (Masonic Temple) की ऊँची इमारत मिली। यह २२ मंज़िला मकान

है ! आकाश से बातें करता है। ख़याल हुआ विज्ञान क्या नहीं कर सकता ?

सोसाइटी के मकान का पता मैंने पुलिस के एक सिपाही से दरयाफ़्त किया और शीघ्रता से उस ओर रवाना हुआ। परन्तु शिकागो संसार के बड़े शहरों में तीसरे दरजे का है। इसकी गलियां २० मील लम्बी हैं; एक तो २७ मील है, इस लिए मुझे उस मकान पर पहुँचने में २ घण्टे के क़रीब लग गये। रास्ते का दृश्य, मेरे लिए बहुत ही मन मोहक था। जब मैं मारशल फोल्ड (Marshal Field) की आलीशान दूकान के पास पहुँचा तब उसे देख कर मैं विस्मयान्वित हो गया। कितनी भारी दूकान ! करोड़ों रुपये का सामान !! अनेक प्रकार की वस्तु बिक्री के लिये मौजूद थी। चित चाहता था कि इसके अन्दर जाकर अच्छी तरह देखूं, परन्तु समय नहीं था, और मुझे चिन्ता रात को रहने की थी।

डीयरबारन गली में महाबोधी सोसाइटी का आफ़िस था। उस अट्टालिका के पास पहुँचा तो मालूम हुआ कि आफ़िस १० वीं मंज़िल पर है। मकानों के ऊपर जाने के लिये क्या ही अच्छा प्रबन्ध किया हुआ है। एक जंगलेदार कोठरी रहती है। उसमें कोई दस आदमी खड़े हो सकते हैं। वह बड़े बड़े रस्सों से बँधी होती है। कोठरी क्या उसे एक प्रकार का खटोला कहना चाहिये। उसका सम्बन्ध प्रत्येक मंज़िल के साथ होता है। इसके भीतर खड़े होकर जिस मंज़िल पर जाना हो नौकर से कह दो वह उसी मंज़िल पर पहुंचा कर दरवाज़ा खोल देता है। बस आप अपने कमरे में चले जाइये। प्रत्येक इमारत में इस प्रकार के तीन चार स्थान ऊपर नीचे

जाने आने के लिये होते हैं। थोड़ा समय और अधिक लाभ, यह नियम प्रत्येक स्थान में देखा जाता है।

मकान के ऊपर पहुंच कर दरयाफ़ करने पर मालूम हुआ कि महाबोधी सोसाइटी ने अपना दफ़्तर बदल लिया है। एक मेम साहबा ने बड़े प्रेम से मुझे नये आफ़िस का पता लिख कर दिया। मैंने उसे तलाश करने का विचार किया, परन्तु ११ बजे से ३ बजे तक लगातार घूमने से मैं थक गया था। यही नहीं, बल्कि वेंकोवरसे शिकागो तक चार दिन मैंने केवल मुट्ठी भर चनों से ही निर्वाह किया था। यद्यपि प्रत्येक रेलगाड़ी के साथ भोजन की गाड़ी (Dining Car) रहती है, जहां मुसाफिर समयानुकूल भोजन पाते हैं; परन्तु मेरे लिये यह प्रबन्ध न होने के तुल्य था। जन्म से मांस मदिरा से घृणा होने के कारण मुझे चार दिन निराहार रहना पड़ा, और शिकागो में पहुंच कर भी कहीं कुछ प्रबन्ध न कर सका; तिसपर भी चार घण्टे लगातार शहर में घूमना। इससे शरीर-रूपी गाड़ी धीमी चलने लगी; तो भी महाबोधी सोसाइटी को तलाश करना जरूरी था। तदर्थ मैं रवाना हुआ।

रास्ते में जाते हुए कई एक स्थानों पर मैंने छोटे छोटे होटलों के नोटिस और नाम के बोर्ड दे दे। दिल में आया कि क्यों न इन में से किसी में एक रात ठहर जाऊं और दूसरे दिन शिकागो-विश्वविद्यालय में जाकर किसी जापानी विद्यार्थी का पता मालूम करूं। एक पथिकाश्रम के ऊपर गया। जाकर प्रबन्धकर्त्ता से सब हाल पूछा। उसने मेरा नाम लिख लिया और मुझे एक कमरे में जाने का इशारा किया। न जाने उस समय मेरे मन में क्या आ गया, मैंने समझा कि शायद कुछ दाल में काला है। मैं सीढ़ियों से नीचे उतर कर गली में आ

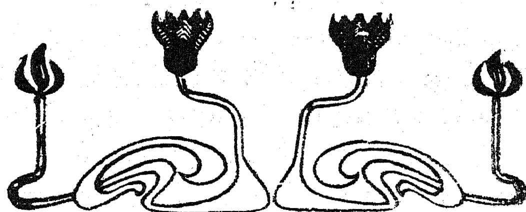
गया। पीछे से मालूम हुआ कि वह धूर्तों का अड्डा था, जहाँ मुसाफ़िरों को रात को टिकाते हैं और सोते हुए की जेब से सब कुछ निकाल सफ़ाई कर देते हैं। सबेरे प्रबन्धकर्त्ता अपना किराया लेता है। शामत का मारा बेचारा मुसाफ़िर चुपचाप सब सहता है और लाचार वहाँ से चल देता है।

ख़ैर मैं एक घण्टे के बाद महाबोधी सोसाइटी में पहुँचा। वहाँ जो महाशय कार्यालय में काम करते थे उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी राम-कहानी सुनी; मेरे साथ चलकर किसी अच्छे होटल में मेरे लिये प्रबन्ध करने को वे उद्यत हो गये। उनके साथ बिजली की गाड़ी पर बैठ मैं थामसन होटल में गया। रास्ते में डाकख़ाने की जङ्गी इमारत देखने में आई।

थामसन होटल के प्रबन्धकर्त्ता ने मेरे मैले कपड़े देख और मुझे परदेशी जान कमरा देने से इनकार किया। इस लिये वहाँ से मैं और मेरा साथी निराश होकर दूसरे होटल में गये। वहाँ रहने के लिये किसी प्रकार प्रबन्ध हो गया; केवल दो रात ठहरनेके लिये ६ रुपये देने पड़े। वह महाशय जो महाबोधी सोसाइटी से मेरे साथ आये थे, मेरा प्रबन्ध करके चले गये। मैं एक नौकरके साथ खटोले (एलिवेटर) में बैठकर चौथी छत पर पहुंचा। नौकरने मुझे एक अच्छे सजे हुए कमरे में ले जाकर कहा—"लीजिये महाशय, यह कमरा आपके लिये है"। यह कह कर वह चला गया।

नौकर के जाने पर मैंने दरवाज़े को अन्दर से लगा दिया। मैंने परमात्मा का धन्यवाद किया कि रात को रहने के लिये स्थान तो मिला। परन्तु चिन्ता यह लग रही थी कि कपड़ों का प्रबन्ध कैसे होगा? कपड़े सब काले हो रहे थे। साबुन पास था। विचार किया कि शायद कल असबाब न मिल सके, इससे

कपड़े अवश्य धोने चाहिये। कमरे के अन्दर गरम और ठंढे पानी के दो नल थे। वहां मैंने सब कपड़े धोये। इस काम में रात के १० बज गये। फिर हजामत बनाई। तब इस बात की चिन्ता दूर हुई कि बाज़ार में मैले कपड़ों से कैसे जाना होगा? अन्त को थका हारा भूखा ही लेट रहा। सुन्दर सुथरे बिछौने पर लेटते ही निद्रादेवी ने मुझे अपना लिया।



शिकागो का रविवार



शिकागो संसार के प्रसिद्ध नगरों में से एक है। जगद्विख्यात धनी जान-डी-राकफेलर स्थापित विश्वविद्यालय यहीं पर है। अमरीका के बड़े बड़े कारखाने, पुतली घर यहीं पर हैं। इन कारखानों में हर एक कौम के लोग काम करते हैं। इतने बड़े प्रसिद्ध नगर के लोग अपने अवकाश का समय कैसे काटते हैं? वे अपना दिल कैसे बहलाते हैं? उस नगरी में देखने लायक़ क्या कुछ है? पाठकों के विनोदार्थ इन प्रश्नों का उत्तर हम इस लेख में देते हैं। आइये आपको शिकागो की सैर करावें, इसके अजीब अजीब दृश्य दिखावें, और आपको बतलावें कि इस प्रसिद्ध नगरी में कौन कौन स्थान दर्शनीय हैं। साथ ही हम इस नगर के निवासियों के रहन सहन का ब्यौरा भी देते जायँगे, जिसमें आपको अमरीका के इस प्रान्तवालोंकी जीवनचर्य्या के विषय में भी कुछ ज्ञान हो जाय। इस काम के लिये हमने रविवार का दिन चुना है। उसी की महिमा हम इस लेख में वर्णन करेंगे। इससे हमारा अभीष्ट भी सिद्ध हो जायगा और आपको यह भी मालूम हो जायगा कि शिकागोके निवासी रविवार की छुट्टी किसी तरह मनाते हैं।

रविवार छुट्टीका दिन है। भारतवर्ष में छोटे छोटे बच्चे, जो स्कूलोंमें पढ़ते हैं, वे भी यह बात जानते हैं। एशिया और अफ्रीका में जहां जहाँ ईसाई लोगों का राज्य है सब कहीं स्कूलों और

दफ्तरों में रविवार को छुट्टी रहती है। परन्तु रविवार की छुट्टी किस तरह मनानी चाहिए, यह बात ईसाई-धर्म्मावलम्बियों के बीच रहे बिना अच्छी तरह नहीं अनुभव की जा सकती। रविवार की छुट्टी मनाने के लिए शिकागो में कैसे कैसे स्थान बनाये गये हैं और किस प्रकार यहाँ वाले जीवन का आनन्द लूटते हैं, इसका संक्षिप्त हाल सुनिये।

ईसाई-धर्म्म में रविवार को काम करना मना है। इसलिये सब दूकानें, पुस्तकालय, कारखाने आदि इस दिन बन्द रहते हैं। क्या निर्धन क्या धनवान, क्या नौकर क्या स्वामी, क्या बालक क्या वृद्ध, क्या स्त्री क्या पुरुष, सब के लिये आज छुट्टी है। १०½ या ११ बजे, नियत समय पर, प्रातःकाल, प्रायः सब लोग अपने अपने गिरजाघरों में जाते हुए दिखाई देते हैं। वहाँ ईश्वराराधना के बाद घर लौट कर भोजन करते हैं। फिर कुछ देर आराम करके सैर को निकलते हैं।

शिकागो बहुत बड़ा शहर है। संसार के बड़े शहरों में इसका तीसरा नम्बर है। यहां एक "फील्ड म्यूजियम" अर्थात् अजायबघर है। यह मिशिगन झील के किनारे, शिकागो-विश्वविद्यालय से थोड़ी ही दूर पर, है। रविवार को सबेरे नौ बजे से शाम के पाँच बजे तक, सबको यहाँ मुफ्त सैर करने की आज्ञा है। इस लिये इस दिन यहाँ बड़ी भीड़ रहती है। आठ नौ बरस के बालक, बालिकायें ऐसे ही स्थानों से अपनी विद्या का आरम्भ करते हैं। क्योंकि यहां पर संसार की उन सब अद्‌भुत वस्तुओं का संग्रह है, जो शिकागो के प्रसिद्ध सांसारिक मेले (World's Fair) में इकट्ठी की गई थीं। यहां यह बात यथाक्रम दिखलाई गई है कि पृथ्वी के ऊपर प्राणियों का जीवन, प्राकृतिक नियमों के अनुसार, किस

प्रकार वर्त्तमान अवस्था को पहुँचा है। भू गर्भ-विद्या-सम्बन्धी पदार्थों को भिन्न भिन्न कमरों में दरजे बदरजे रख कर उनका क्रम-विकास अच्छी तरह बतलाया गया है। यहां यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उत्तरी अमरीका के हिरन किस प्रकार भिन्न भिन्न चारों ऋतुओं में अपना रङ्ग बदलते हैं। किस प्रकार प्रकृति-माता बर्फ के दिनों में उनको भोजन देती हैं। उत्तरीय ध्रुव में रहनेवाले रीछों के बर्फ के भीतर बने हुये घर क्या ही अच्छी तरह दिखाये गये हैं। यहाँ यह बात प्रत्यक्ष मालूम हो जाती है कि अमरीका के प्राचीन निवासी (Red Indians) किन देवी-देवताओं की पूजा करते थे, कैसे घरों में रहा करते थे, किस प्रकार किन चीजों की मदद से पहनने के वस्त्र बनाते थे, उनकी नौकायें, उनके खाने पीने का सामान, उनके देवालय, उनके युद्ध के शस्त्र—सब चीजें बहुत ही अच्छी तरह दिखाई गई हैं। सब से अधिक सक्षम प्राणी ही संसार में बाक़ी रहते हैं, इस सिद्धान्त की पुष्टि इन दृश्यों को देखते ही हो जाती है। जब हमने इन चीजों को देखा तब तत्काल हमें यह ख्याल हो आया कि क्या भारतवासियों का नाम, उनकी चीज़ें, उनका इतिहास आदि सब कुछ नष्ट होकर किसी दिन लन्दन के अंग्रेज़ी अजायबघर (British Museum) में ही तो न रह जायगा।

इस अजायबघर के मध्य में महात्मा कोलम्बस की दीर्घ-काय मूर्त्ति (Statue) विराजमान है। इस जिनोआ-निवासी को देख कर दर्शक के मन में भांति भांति के विचार उत्पन्न होने लगते हैं और एक अद्भुत दृश्य आँखों के सामने घूम जाता है। पुरानी अमरीका और आज की अमरीका में कितना अन्तर है? वे यहां के प्राचीन-निवासी कहाँ गये? पिछली

तीन शताब्दियों में यहां की भूमि का कैसा रूप बदला है? कहाँ योरप? कहां अमरीका? हज़ारों कोस का अन्तर! भारतवर्ष की तलाश में एक पुरुष भूल से इधर आ निकलता है। उसका आना क्या है, यमराज के आने का संदेशा है! हज़ारों वर्षों से रहने वाले, स्वतन्त्रता से विचरने वाले, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या मनुष्य सभी तीन ही शताब्दियों के अन्दर स्वाहा हो जाते हैं! करोड़ों भैंसे अमरीका के जङ्गलों में न जाने कब से, आनन्द-पूर्वक विचरते थे, पर आज उनका नामोनिशान तक नहीं मिलता। उन सब जीवों ने क्या अपराध किया था? क्यों एक दूर देश में बसने वाली जाति, जिसका कोई अधिकार इस देश पर नहीं था, आकर यहाँ के असली रहने वालों को नष्ट करने का कारण हुई? क्या यही ईश्वरीय न्याय है? नास्तिकता से भरे हुए ऐसे ही प्रश्न यहां दर्शक के मन में उठते हैं। तत्काल एक आवाज़ कान में आती है—"प्रकृति का यह अटल सिद्धान्त है कि सबसे अधिक समर्थ—सबसे अधिक योग्य—ही का दुनिया में गुज़ारा है"। यदि तुम अपना अस्तित्व चाहते हो तो अपने पास पड़ोस वालों की बराबरी के बन जाओ। वही जाति अपना नाम संसार में स्थिर रख सकती है जो इस नियम के अनुकूल चलती है।

इस अजायबघर में वनस्पति-विद्या, रसायन विद्या-जन्तु-विद्या, नर-शरीर-विद्या आदि भिन्न २ विद्याओं के सम्बन्ध की सामग्री भी विद्यमान है। "एक पन्थ दो काज"—छुट्टी का दिन है, सैर भी कीजिये और कुछ सीखिये भी। उन्नति के कैसे अच्छे मौक़े यहाँ के निवासियों को दिये जाते हैं। बालकपन से ही खेल के बहाने यहां वाले इतनी वाक़फ़ियत हासिल

कर लेते हैं जो हमारे देश में दस बरस स्कूल में पढ़ने से भी नहीं होती।

अजायबघर से बाहर निकल कर देखिये, झील के किनारे किनारे सड़क बनी हुई है। बेंचें रक्खी हुई हैं। वहाँ स्त्री, पुरुष, बालक आनन्द से बैठे हैं और हँस खेल रहे हैं। उनके चेहरों को देखिये—"स्वतन्त्रता" उनके माथे पर जगमगा रही है। नवयुवक अपनी प्रियतमाओं के साथ इधर से उधर, उधर से इधर घूमते और वार्तालाप करते हुए क्या ही भले मालूम होते हैं। मिशिगन झील भी उनके इन प्रेम के भावों को देख कर प्रसन्न मालूम होती है। वह अपने स्वच्छ शीतल पवन के झोकों से उन्हें आशीर्वाद सा दे रही है। जल की तरंगें छोटे छोटे बालकों को देख कर, उनसे न मिलने के लिये, बड़े अह्लाद से आगे बढ़ती हैं; परन्तु तत्काल ही यह सोच कर कि शायद कुछ बेअदबी न हुई हो, पीछे हट जाती हैं। इस समय भगवान सूर्य अपने दिन के कार्य को पूर्ण कर पश्चिम की ओर गमन करते हैं।

इस अजायबघर के सिवा और भी बहुत से स्थान शिकागो-निवासियों को रविवार मनाने के लिये हैं। कितने ही उद्यान (Parks) ऐसे हैं जहाँ "पियानो" बाजे तथा मन बहलाने के और अनेक सामान रखे रहते हैं। वहां आकर लोग बैठते हैं; संगीत सुनते हैं और आनन्द-मग्न होकर घर जाते हैं।

यहां एक उद्यान है जिसका नाम हम्बोल्ड पार्क है। इस में नहर के ढंग के जल के बड़े बड़े और लम्बे कुंड हैं। उनमें जल भरा रहता है। छोटी छोटी नावें पानी पर तैरा करती हैं। ये नावें खेल के लिये हैं। ग्रीष्म-काल में यहां नावों की दौड़ होती है। रविवार के दिन इन उद्यानों का दृश्य बहुत ही

मनोहर हो जाता है। नवयुवक नौकायें खेते हुए हँसते खेलते, गाते जीवन का आनन्द लेते हैं। एक एक नौका पर प्रायः एक नवयुवक और एक युवती स्त्री होती है। वे सहाध्यायी मित्र, अथवा पति-पत्नी होते हैं। इस तरह की संगति इस देश में बुरी नहीं मानी जाती और न हम लोगों के देश की तरह ऐसे बुरे भाव ही इन लोगों में उत्पन्न होते हैं। स्त्रियों की बड़ी प्रतिष्ठा है। कोई बहुत ही पतित पुरुष होगा जो उनके साथ नीच व्यवहार करेगा। ऐसे पुरुष के लिए कानून में बड़े भारी दण्ड का विधान है। प्रायः सभी उद्यानों में ऐसे जल-कुण्ड हैं जो स्थान जिसके निकट हो वह वहीं जाकर रविवार को आनन्द मनाता है।

कोई शायद पूँछे कि क्या और रोज़ वहाँ जाना मना है? ऐसा नहीं है। परन्तु कारण यह है कि अधिकांश लोगों को सिवा रविवार के और रोज़ छुट्टी ही नहीं मिलती; इसलिये रविवार को ही इन उद्यानों में लोग एकत्रित होते हैं। रोज़ सिर्फ़ कहीं कहीं टेनिस खेलते हुए स्त्री-पुरुष दिखाई देते हैं। यह बात ग्रीष्मऋतु की है। जाड़ों में जब इन कुण्डों का पानी जम जाता है तब वहाँ पर लोग "स्केटिंग" (Skating) करते हैं। स्केटिंग एक प्रकार का खेल है। हर साल दिसम्बर में स्केटिंग का समय होता है। बेहद जाड़ा पड़ता है, पर बालक बालिकायें इन स्थानों में नाचती हुई दिखाई देती हैं।

लिङ्कन-उद्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें अमरीका के विख्यात योद्धा वीर-वर ग्राण्ट की मूर्ति है। अश्वारूढ़ ग्राण्ट, इस देश के इतिहास के ज्ञाता को एक भयङ्कर युद्ध का स्मरण कराते हैं। यह युद्ध गुलामों के व्यापार को बन्द कराने के लिये आपस में हुआ था। अमरीका के उत्तर के लोग चाहते थे कि

गुलामों का व्यापार बन्द हो जाय। उनका सिद्धान्त था—"स्वतन्त्रता की दृष्टि में सब आदमी बराबर हैं"—जीवन और स्वतन्त्रता के स्वाभाविक नियमों में सब का हक़ एक सा है। वे नहीं चाहते थे कि अमरीका जैसे स्वतन्त्र देश में मनुष्य भेड़ बकरियों की तरह बिकें। इस सत्य सिद्धान्त की रक्षा के लिए एक लोमहर्षण युद्ध उत्तर और दक्षिण निवासियों में हुआ, और परिणाम में सत्य की जय हुई। शूर-वीर ग्राण्ट इस युद्ध में उत्तरवालों की ओर से सेनापति थे। वे काले हबशियों को वैसा ही चाहते थे जैसा कि गोरे चमड़ेवाले अमेरिका के निवासियों को। इस महात्मा का स्मारक चिन्ह दर्शक को एक नया जीवन प्रदान करता है। वह उसे सूचना देता है कि किसी मनुष्य को दूसरे पर शासन करने का अधिकार नहीं है। सब मनुष्य इस विषय में बराबर हैं। समाज एक यन्त्र की भाँति है; मनुष्य-समुदाय उसके पुरज़े हैं। अपनी अपनी योग्यतानुसार सब समाज के सेवक हैं। किसी से घृणा मत करो; क्या काला, क्या गोरा, सब एक ही पिता के पुत्र हैं।

इस उद्यान के एक भाग में भिन्न भिन्न प्रकार के पौधे रखे हुए हैं। जो वृक्ष जिस तापमान में जी सकता है उसी के अनुसार वहाँ उसे उष्णता पहुँचाई गई है और उसकी रक्षा की गई है। उष्ण देशों के अनेक वृक्ष यहाँ देखने में आते हैं। दर्शक को वनस्पति विद्या-सम्बन्धी बहुत सी बातें यहां मालूम हो जाती हैं।

उद्यानों के सिवा बहुत से और भी स्थान लोगों के बैठने, उठने, हँसने, खेलने के लिये हैं। शिकागों बहुत बड़ा नगर है। इससे नगरनिवासियों के आराम और शुद्ध पवन की प्राप्ति के लिये, बीच बीच गलियों में, "बुलावार्डज़" (Boulavards)

नामक विहार-स्थल हैं। यहां की गलियाँ अपने देशों की जैसी नहीँ हैं। गलियां क्या एक बाज़ार हैं। पत्थर के मकानों के आगे, दोनों किनारों पर, पांच फीट के क़रीब रास्ता, सड़क से ऊँचा, लोगों के चलने के लिये बना हुआ है। बीच की सड़क गाड़ी, घोड़े, मोटर आदि के लिये है। खुले मकानों और चौड़ी सड़कों के कोने पर भी, हवा साफ़ रखने और ग़रीब आदमियों के मनोरञ्जन तथा लाभ के लिये थोड़ी थोड़ी दूर पर विहार-वाटिकायें हैं, जहाँ बैठने के लिये बेंचैं रखी रहती हैं। काम से थके हुए स्त्री-पुरुष रोज़ सायंकाल में यहाँ दिखाई देते हैं। क्योंकि और स्थानों में गाने, बजाने और जल-विहार आदि के लिये थोड़ा बहुत ख़र्च करना पड़ता है, जो थोड़ी आमदनी के लोग नहीं कर सकते। उनके लिये ऐसे स्थानों, उद्यानों और अजायबघरों में घूमने की स्वतन्त्रता है। यत्न यह किया गया है कि सब को इस स्वतन्त्र देश में आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिले। यहां जो धन व्यय किया जाता है वह, शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति के लिये, किया जाता है।

यह तो हुई दिन की बात अब रात को सुनिये। यहां बहुत से नाटक-घर प्रदर्शनियां और समाज हैं, जहां अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोग रात को जाते हैं। शिकागो में लोग अक्सर रात को भी गिरजों में जाते हैं। रात को भी वहां उपदेश, गायन और हरिकीर्तन होता है। यहां एक जगह "ह्वाइट सिटी" (White City) श्वेत-नगर है। बहुत से लोग वहां जाते हैं। इस जगह को "श्वेत-नगर" इसलिये कहते हैं कि यहां बिजली की शुभ्र रोशनी होती है, जिससे रात को भी दिन हो सा रहता है। इसके विशाल द्वार पर बड़े मोटे मोटे बिजली के प्रकाश के अक्षरों में "दि ह्वाइट सिटी"

(The White City) लिखा हुआ है। बिजली की महिमा यहाँ खूब ही देखने को मिलती है। स्थान स्थान पर प्रकाश-मय रङ्ग-बिरङ्गे अक्षर-चित्र बने हुए हैं, जो मिनट मिनट में रंग बदलते हैं। इस श्वेत-नगर के भीतर अनेक मनोरञ्जक स्थान हैं; कहीं पर गाना हो रहा है; कहीं बड़े बड़े "हालों" में नाच हो रहा है; कहीं "सरकस" का तमाशा है। दुनियाँ भर के तमाशा करने वाले यहां लाये जाते हैं। गरमी के दिनों में वे, तीन ही चार मास में हज़ारों रुपये कमा लेते हैं। यह स्थान एक कम्पनी का है। उसके नौकर सारी दुनियां में तमाशा करने वालों को लाने के लिये घूमा करते हैं। भारतवर्ष के यदि दो तीन अच्छे अच्छे पहलवान, किसी देशी कम्पनी के साथ, अमरीका में आवें तो हजारों रुपये कमा कर ले जायँ। हमारे देश में अभी लोगों ने रुपया पैदा करने का ढङ्ग नहीं सीखा। एक साधारण मनुष्य इङ्गलिस्तान से आकर, हिन्दु-स्तान में विज्ञापनों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करके, लाखों बटोर कर ले जाता है. परन्तु हमारे स्वदेशी कारीगर, पहलवान, बाज़ीगर आदि कभी इस ओर आने का साहस नहीं करते। अमरीका में कुश्ती का शौक़ बढ़ रहा है। यदि इस समय कोई पहलवान थोड़ा सा रुपया ख़र्च कर इधर आवे और किसी अच्छी कम्पनी की मार्फत कुश्ती हो, तो लाखों रुपये के वारे न्यारे हो जायँ।

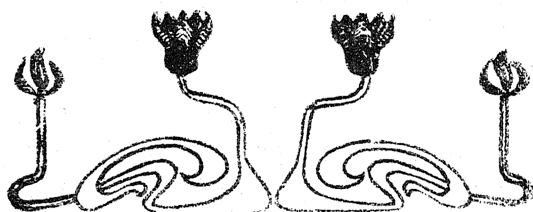
इस श्वेत-नगर में रविवार को बड़ा भारी मेला होता है। गाड़ियाँ स्त्री-पुरुषों से लदी हुई जाती हैं। हज़ारों दर्शक इकट्ठे होते हैं। रात के ८ बजे से ११ बजे या १२ बजे तक मेला रहता है। यह स्थान केवल गर्मियों में खुलता है, क्योंकि जाड़ों में शीत के कारण यहां कोई नहीं आता। शीत ऋतु के लिये

नगर के भीतर और अनेक स्थान हैं जहाँ और ही तरह के मनारञ्जक खेल होते हैं।

रविवार का दिन इस नगरी में लोग इसी तरह व्यतीत करते हैं। अब यहां वालों की जीवन-चर्य्या का मिलान यदि हम भारतवर्ष से करते हैं तो कितना बड़ा अन्तर पाते हैं। उन तमाशों या नाटकों की बात जाने दीजिये जिनको हमारे बहुत से पाठक शायद अच्छा न समझें, पर और ऐसे कितने मनोरंजक या शिक्षाप्रद खेल तमाशे हैं जिनका हमारे स्वदेशी भाइयों को शौक है? वे अपने अवकाश को, अपनी छुट्टियों को, किस तरह बिताते हैं? भङ्ग पीकर, ताश खेलकर, पतङ्ग उड़ाकर और व्यर्थ के बकवाद में लिप्त रह कर वक्त की वे कीमत ही नहीं जानते। यद्यपि कुछ पढ़े लिखे लोग ऐसे हैं जो इन बुराइयों से बचे हुए हैं, परन्तु वे तीस करोड़ की जन-संख्या में दाल में नमक के बराबर भी नहीं। आधी संख्या हमारे देश में मूर्खा स्त्रियों की है जिनको बाहर निकलने की आज्ञा ही नहीं! जहां के निवासी सैकड़े पीछे आठ से भी कम साक्षर हैं, उन्हें दुर्व्यसनों में डूबने से भगवान ही बचावे।

पाठक! यह शिकागो के एक दिन का दृश्य आपकी भेंट किया गया। आशा है कि आप इससे लाभ उठाने का यत्न करेंगे। सोचिये तो सही, हमारे देश के करोड़ों निर्धन किस तरह जीवन-जञ्जाल काट रहे हैं? जिन्हें हम नीच जाति के समझते हैं उन्हें किस घृणा की दृष्टि से हम देखते हैं? उनके सुख को हम कितनी परवा करते हैं? अपने घर, अपने नगर, अपनी दिन-चर्य्या आदि का अन्य देशों से मुकाबिला कीजिये और देखिये कि इस समय हमारा कर्त्तव्य क्या है? यह

रविवार का दृश्य आपको इसलिए नहीं दिखाया गया कि इसे देखकर आप भूल जाइये। नहीं; इससे आप कुछ सीखिये। यह दृश्य एक महान् उद्देश्य को सामने रख कर दिखाया गया है। कृपा करके, विचार तो कीजिये कि वह महान् उद्देश्य क्या है?



बिजली की रेलगाड़ी

(Electric Railway)



अमरीका में आजकल इस बात का यत्न हो रहा है कि किस प्रकार बिजली से रेलगाड़ी चलाने का प्रबन्ध किया जाय। बिजली से चलनेवाली ट्राम आदि साधारण गाड़ियाँ तो, हमारे देश-बन्धुओं ने कलकत्ता, मद्रास आदि बड़े बड़े शहरों में भी देखी होंगी; परन्तु यह शायद उन्होंने न सुना हो, कि अमरीका-निवासी भाफ़ से चलने वाली रेलगाड़ी के स्थान पर अब बिजली की रेलगाड़ी चलाने की चिन्ता में हैं। वे चाहते हैं कि किस प्रकार ख़र्च थोड़ा और लाभ अधिक हो। उनके रहने और व्यापार व्यवहार आदि का ढंग हमारे देश का सा नहीं है। हमारे देश में यदि पिता लकड़ी या बाँस की पुरानी तकड़ी से सौदा तौलता था, तो उसका लड़का भी उस तकड़ी का पिण्ड नहीं छोड़ता। जिन करघों से सैकड़ों वर्ष पहिले जुलाहे कपड़े बुनते थे, आज भी भारतवर्ष के जुलाहों के हाथ में वही देखे जाते हैं। कभी किसी के मन में आगे बढ़ कर क़दम मारने का हौसला ही नहीं होता।

समय ही रुपया है (Time is money) इसी नियम पर अमरीका-निवासी चल रहे हैं। इनका मूल मन्त्र है—किस प्रकार थोड़ा समय लगे और काम अधिक हो। इनके कारख़ानों में जाइये; आप सब कहीं इसी नियम की सर्व-व्यापकता

पाइएगा। हमारे देश के आराकश, एक भारी लकड़ी चीरने में सारा दिन लगा देते हैं, पर कभी उनके मन में यह नहीं आता कि क्या हम थोड़ा समय ख़र्च करके इस काम के करने का तरीक़ा नहीं निकाल सकते? अमरीका-निवासी भाफ़ की रेलगाड़ी से जो फ़ी घण्टा ५० मील से अधिक जाती है, तंग आ गये हैं। वे कहते हैं कि यह चाल बड़ी सुस्त है। वेंकोवर से शिकागो २७०० मील है; उसे तै करने में तीन दिन लग जाते हैं इससे वे चाहते हैं, कौन सा उपाय हो, जो दो ही दिन लगें? एक दिन की बचत हो।

पाठक शायद यह कहें कि ऐसी क्या आफ़त आई है! क्यों अमरीका वालों में यह धुन समाई है? ऐसी जल्दी काहे की है? भाई, अमरीका हिन्दुस्थान नहीं। वहाँ उन्नति, उन्नति की ही ध्वनि सब कहीं सुन पड़ती है। सभ्य संसार में बिना उन्नति के काम नहीं चल सकता—"तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा" ने ही भारत को मटियामेट कर दिया!

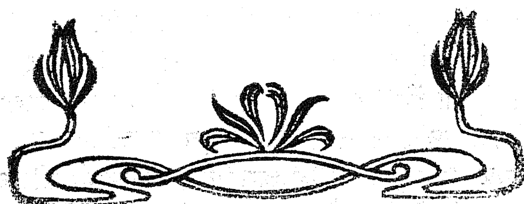
भला बिजली की रेलगाड़ी से क्या लाभ? एक बड़ा भारी लाभ तो बिजली की रेलगाड़ी का तत्काल ठहर जाना है। भाफ़ से चलनेवाली रेलगाड़ी को ठहराने के लिए समय चाहिये। हमारे देश में लोगों ने बहुधा रेलों की टक्करें सुनी होंगी। उनसे लाखों रुपये की हानि और सैकड़ों की जानें जाती हैं। ऐसी टक्करों को बिजली की गाड़ी कम कर देगी। भाफ की रेलगाड़ी में किराया अधिक लगता है, बिजली की गाड़ी में किराये की क़िफायत होती; थोड़े ही ख़र्च से लम्बे २ सफर हो सकेंगे। थोड़ी तौफीक़वालों को भी दूर दूर के स्थान देखने का अवसर मिलेगा। समय थोड़ा लगेगा। भाफ की रेलगाड़ी में बहुत समय लगता है। बिजली की गाड़ी इस

दिक़्क़त को दूर करेगी। भाफ़ की गाड़ी को तो अपने खाने पीने ही में बहुत समय लग जाता है। बड़े बड़े स्टेशनों पर केवल कोयला पानी के लिये देर तक ठहरना पड़ता है। बिजली की गाड़ी को खाना पीना दरकार न होगा। बिना खाने के ही वह बराबर काम देगी। इसके सिवा भाफ़ के एञ्जिन को घुमाने फिराने की ज़रूरत रहती है। उसका मुँह, बिना एक चक्कर पर लाये नहीं घूमता। बिजली की गाड़ी के लिये दोनों रास्ते खुले रहेंगे। जिधर, जिस समय चाहो, चलाओ; जब चाहो इधर से उधर घुमाओ; उसे कुछ उज्र न होगा। इस आज्ञा-वाहक गुण के होने से बिजली सर्व-प्रिय हो रही है। भाफ़ के एञ्जिनराम, ग्रीष्म ऋतु में, अपने ऊपर रहने वालों का नाकों दम कर देते हैं। बिजली की गाड़ी पर काम करनेवालों को यह दुःख न भोगना पड़ेगा। भाफ़ की गाड़ी मुसाफिरों पर कोयला फेंक फेंक कर उनकी अप्रतिष्ठा करती है; सारे वस्त्र काले कर देती है, बिजली की गाड़ी मुसाफिरों से कभी ऐसी गुस्ताख़ी न करेगी। वह बड़े प्रेम, बड़ी नम्रता से उनकी सेवा करती है; और जब मुसाफिर चलने लगते हैं तब मानों सीटी के द्वारा निवेदन करती है—"महाशय, फिर भी कभी दर्शन दीजिएगा।"

भारत की रेलों में तीन या चार दरजे गाड़ियों के होते हैं, अमरीका में उस तरह के कोई दरजे नहीं। यहां भेद भाव ही नहीं। किसी गाड़ी के अन्दर घुसो, साफ़ सुथरे गद्दे आराम-कुरसियों पर पड़े हैं। एक एक मुसाफिर के लिये एक एक कुरसी है, जिस पर वह रात को सो भी सकता है। गाडी की एक तरफ़, एक छोटे कमरे में, दो नल ठन्ढे और गरम पानी के रहते हैं। पास ही एक शीशा दीवार में लगा रहता

है। साबुन की टिक्की रक्खी रहती है। एक धुला हुआ साफ़ अँगोछा लटका रहता है। सब तरह का आराम गाड़ी में रहता है। एक ख़ास गाड़ी खाने पीने के लिए रहती है जहां मुसाफ़िर समयानुकूल भोजन पाते हैं। अब अपने यहाँ का हाल देखिये। भेड़ बकरी की तरह आदमी गाड़ियों में भरे जाते हैं। उनको दम लेना भी कठिन हो जाता है। पीने के पानी के लिये हर स्टेशन पर चिल्लाना पड़ता है। पहिले और दूसरे दर्जे के सिवा तीसरे और ड्योढ़े में सारी रात जागते गुज़रती है। किसी को कुछ तकलीफ़ हो, कोई पूछने वाला नहीं है। स्त्रियों की दुर्दशा होती है वह लिखने योग्य नहीं। इन सब दुर्दशाओं के होने पर भी भारतवासियों के ध्यान में कभी यह बात नहीं आती कि ये दिक्कतें कैसे दूर हो सकती हैं। अमरीका की गाड़ियों में इतना आराम है, तिस पर भी लोग "उन्नति, उन्नति" की पुकार मचा रहे हैं। पर भारत के रामचन्द्र और कृष्ण की सन्तान कभी सोचती तक नहीं, कि हम कैसे इन दुखों को दूर कर सकते हैं। यदि भारतवर्ष के धनाढ्य पुरुषों की एक कम्पनी कोई लाइन खोलने के लिए उद्यत हो जाय, और लाइन बनाकर अपने भाइयों के आराम का सब प्रबन्ध कर दे तो और कम्पनियों के छक्के छूट जायँ, और झकमार कर वे अपने कुप्रबन्धों को दूर कर दें। रेलगाड़ियों के मालिक और अफ़सर जानते हैं कि इनके लिए कोई और लाइन तो है ही नहीं; रोने चिल्लाने दो, आख़िर जायँगे तो हमारी ही लाइन से न? बस यही कारण है कि हमारी दुर्दशा पर कोई ध्यान नहीं देता। पर अमरीका में एक नहीं अनेक कम्पनियां हैं, और प्रत्येक की कोशिश यही रहती है कि किसी न किसी प्रकार हमारी लाइन पर अधिक मुसाफ़िर आवें, इसलिये

मुसाफ़िरों के आराम का भरपूर प्रबन्ध किया जाता है। इन्हीं कम्पनियों की आपस की इस प्रकार की चढ़ा-ऊपरी का यह फल है जो यहां की एक कम्पनी बिजली की गाड़ी बनाने का विचार कर रही है। भारतवासी अप्रतिष्ठा सहते हैं; स्टेशनों पर गालियां खाते हैं; खाने पीने की तकलीफ़ें उठाते हैं; सारी रात जागते व्यतीत करते हैं; गर्मियों में क़ैदियों की तरह गाड़ियों के भीतर बन्द रहते हैं; तिस पर भी यह नहीं सोचते कि क्या हम इन दिक़्क़तों को दूर नहीं कर सकते? सचमुच सब कष्ट दूर हो सकते हैं; अमरीका की जैसी सुन्दर गाड़ियां बन सकती हैं; प्रबन्ध अच्छा हो सकता है; सब तरह के आराम मिल सकते हैं; बिजली की गाड़ियां भी बन सकती हैं, हाँ व्यवसाय, परिश्रम, मेल और पूँजी चाहिये।



अमरीका के खेतोंपर मेरे कुछ दिन



न का महीना आ गया। साल भर की पढ़ाई ख़तम हो गई। विद्यालय के विद्यार्थियों को अब तीन साढ़े तीन महीने की छुट्टी रहेगी। हर एक छात्र ने छुट्टियाँ बिताने का प्रबन्ध पहिले ही से कर रक्खा है। जिन्हें योरप की सैर को जाना है उन्होंने अग्निबोट कम्पनियों से सब बातें तै कर ली हैं। जापान की ओर जाने वाले जापानी भाषा सीख रहे हैं। जो दूसरे साल के ख़र्च के लिये रुपया कमाना चाहते हैं उन्होंने बड़े बड़े कारख़ानों से पहिले ही पत्र-व्यवहार कर लिया है। मतलब यह कि सभी ने अपनी अपनी आवश्यकताओं के मुताबिक़ जोड़ तोड़ लगा रक्खी है।

इस बीच में मैं भी अमरीकन बन गया। पहिले एक कम्पनी के ग्राहक बढ़ाने का काम करने का विचार किया, और उसके लिये लिखा पढ़ी भी की, पर पीछे से इरादा बदल गया। सोचा कि किसी खेत पर चल कर काम करना चाहिए। इसमें एक पन्थ दो काज हैं। बहुत दिनों से यह जानने की अभिलाषा लग रही थी कि अमरीकन किसानों की चाल ढाल देखें; उनकी खेती के वैज्ञानिक तरीक़े जानें। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक अमरीकन दोस्त को पत्र लिखा। मेरे मित्र आइयोवा (Iowa) रियासत के एक कालेज में अध्यापक हैं। उनकी मेरी जान पहचान शिकागो-विश्वविद्यालय में ही हुई थी। मित्र का सम्बन्ध बड़े बड़े ज़मींदारों से है। उनके पिता भी जमींदार हैं।

मित्र से परिचय-दायक पत्र लेकर मैं वरमिलियन नामक नगर में पहुंचा। वरमिलियन एक छोटा सा क़स्बा दक्षिण डकोटा रियासत में है। यह शिकागो से पांच सौ मील पश्चिम की ओर है। यहां के एक बड़े जमींदार मिस्टर एल्वी एन्ड्रियूज के नाम मेरे दोस्त ने मुझे पत्र दिया था। मित्र से यह भी मुझे पता लग गया था कि जमींदार महाशय मिशेगन कालेज के ग्रेजुएट हैं; क़ानून में भी आपने एल० एल० बी० की बदवी प्राप्त की है; इसलिये मैं समझता था कि श्रीमान् बड़े ही फूंक फूँक कर चलने वाले होंगे।

जिस समय गाड़ी वरमिलियन पहुंची, दोपहर थी। धूप ऐसी कड़ाकेदार थी कि मुझे अपना प्यारा देश याद आ गया। जब मैं एल्वी महाशय के घर पर पहुंचा तब वे कहीं बाहर गये थे। उनकी वृद्धा माता ने मुझे प्रेम से बिठलाया और ठहरने के लिये कमरा दिखला दिया।

कमरे में अपना बेग रख कर मैं दरवाजे के बाहर बरामदे में कुरसी पर आ बैठा। हवा बहुत धीरे धीरे चल रही थी। इस लिये मैं पसीने से तर हो गया। वृद्धा ने मुझे एक पङ्खी लाकर दी और मेरे पास कुरसी पर बैठ कर कपड़ा सीने लगी। थोड़ी देर तक हम लोग चुप रहे। वृद्धा ने पूँछा—

"एल्वी कहता था कि एक हिन्दू हमारे खेत पर काम करने आवेगा। क्या आप ही खेत पर काम करने के विचार से आये हैं?"

मैं—(बड़े अदब से) "हाँ, मैं इसी लिये आया हूं।"

उसने कुछ मिनट मुझे ध्यान से देख कर कहा—"अमरीकन खेत का कठिन काम आप ऐसे शरीर का पुरुष कैसे कर सकेगा?"

मैं—"आप ऐसा न समझिये कि मैं बिलकुल ही कमज़ोर हूं। इसमें शक नहीं कि मेरा शरीर अमरीकन मजदूरों का सा नहीं है; परन्तु मेरा साहस उन्हीं का सा है।"

वृद्धा हँस कर बोली—"अच्छा इसकी परीक्षा हो जायगी।"

वह फिर अपने काम में लग गई। मैं कुरसी पर बैठा सोचता रहा कि बुढ़िया कहीं रङ्ग में भङ्ग न डाल दे कि मेरा वहाँ आना ही वृथा हो जाय।

रात को मिस्टर एल्वी आ गये। मुझसे बड़ी अच्छी तरह पेश आये। साढ़े चार रुपया रोज़ के काम पर उन्होंने मुझे रखना स्वीकार किया। दूसरे ही दिन मैं उनके खेत पर गया।

वरमिलियन से आठ दस मील पर वरवेंक नाम का एक बहुत छोटा सा गांव है। वह रेल की सड़क पर है। एल्वी महाशय की चार सौ एकड़ भूमि यहीं पर है। मुझे यहीं काम करना था।

मैं जिस समय खेत पर पहुँचा, सब लोग गिरजे गये थे। केवल एक मज़दूर खेत पर था। यहां पर यह भी बतला देना चाहिये कि जैसे हमारे यहां बड़े बड़े ज़मींदार एक प्रबन्धकर्ता रखते हैं वैसे ही मिस्टर एल्वी के खेत पर भी एक मैनेजर, मिस्टर हाल्वे, अपनी घर-गृहस्थी के साथ रहता था। उसके एक दर्जन लड़के लड़कियाँ थीं। शाम को ये सब लोग गिरजे से लौटे।

धीरे धीरे भोजन का समय आया। हम लोग मेज़ के चारों ओर कुरसियों पर बैठे। उस समय मेरी अजीब हालत थी। भला कहाँ शिकागो यूनिवर्सिटी की विशाल भोजनशाला का स्वच्छ और सभ्य जनोचित भोजन, और कहाँ यहाँ का रूखा सूखा मोटा भद्दा खाना! यद्यपि विश्व-विद्यालय में भी मुझे

मांस खाने वालों के पास बैठ कर भोजन करना पड़ता था तथापि कभी ऐसी घृणा उत्पन्न न हुई थी। जिनको तमाम दिन खेत पर काम करना पड़े, भला वे ज़रा से गोश्त पर कैसे गुज़ारा कर सकते हैं। यहाँ माँस के इतने बड़े बड़े टुकड़े उन को खाने को दिये गये थे कि देखने ही से तबियत ख़राब होती थी। रसोईघर बिलकुल ही पास था। मारे दुर्गंध के मैं तो बेचैन सा हो गया। सोचा कि यहाँ इनके साथ रह कर खेत पर काम कैसे हो सकेगा? परोसने वाली स्त्री जब मुझे माँस देने लगी तब मैंने सिर हिला दिया।

स्त्री--(आश्चर्य से) "क्या आप मांस नहीं खाते?"

मैं—"नहीं, मैं मांस नहीं खाता।"

मैनेजर हाल्वे, जो मेरे सामने बैठा था, बोला--"तो आप से यहाँ का काम न हो सकेगा"। ख़ैर मैं चुप रहा।

हाल्वे आयरिश हैं। इनके पिता आयर्लैंड से अमरीका आये थे। आप की उम्र पचास वर्ष से ऊपर है, मगर देखने में पैंतीस वर्ष के मालूम होते हैं। क़द मँझोला कोई साढ़े पाँच फ़ीट होगा। अधिकांश अमरीकनों की तरह चेहरा बिलकुल सफ़ाचट नहीं है, बल्कि मोटी मोटी मूँछें हैं; हाँ, दाढ़ी साफ़ है। स्वभाव के साधु होने पर भी अक्खड़पन कूट कूट कर भरा है। इनकी स्त्री द्वितीय विवाहिता है। बड़ी स्थूल, चलना फिरना कठिन, पर आख़िर किसान की स्त्री है; दिन भर काम में लगी रहती है। स्वभाव इसका बड़ा नेक है। जब से उसे मालूम हो गया कि मांस से मुझे घृणा है और मैं अण्डा-भोजी भी नहीं हूं, तब से वह मेरे लिये अलग भोजन बना दिया करती थी। मैं उसको "माता" कह कर पुकारता था।

अभी तक मेरा नाम यहाँ कोई न जानता था। भोजन के बाद और लोगों के साथ जब मैं भी घुड़साल में गया तब वहाँ एक नौजवान मज़दूर ने मुझसे दिल्लगी के तौर पर कहा—"कहो तो, जानी, भोजन का मज़ा आया ?"

मैं ने हँस दिया। फिर वह मुझसे पूछने लगा—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

मैं—"मेरा नाम जानी (Johny) ही ठीक होगा।"

बस सारे खेत वाले मुझे "जानी" ही कह कर पुकारने लगे। यदि फिर मैं उस खेत पर कभी काम करने जाऊँ तो लोग "जानी" ही कह कर बुलावेंगे, असली नाम "देव" कह कर कोई न पुकारेगा।

इस खेत पर इन दिनों केवल पाँच आदमी काम करते थे--हाल्वे, उसका लड़का तथा तीन और। मेरे आने से छः जने हो गये। फ़सल का समय न होने से इतने ही आदमी काफ़ी थे। यदि किसी दिन अधिक काम हो जाता तो हाल्वे की दो लड़कियाँ हाथ बटा लेती थीं। उनको आदमियों से कुछ कम मज़दूरी मिलती थी।

अस्तबल में हर एक आदमी अपनी अपनी जोड़ी को चारा डालने और पानी पिलाने लगा। मैं चुपचाप खड़ा देखता रहा। क्योंकि अभी मैंने खेत के काम वाले कपड़े भी नहीं ख़रीदे थे। घोड़ों की तृप्ति कर उन लोगों ने सूअरों को मकई के भुट्टे डाले। पांच चार बैल भी एक तरफ़ बँधे थे। उनको भी दाना डाला गया।

हाल्वे, मेरे पास खड़ा, सूअरों को मकई डाल रहा था। मैंने उससे पूछा—"इतने सूअर आपने क्यों पाल रक्खे हैं ?"

हाल्वे—(हँसकर) "इन्हीं के लिए तो यह सब खेती है। इनको खिला पिला कर मोटा करते हैं, तब बेंच डालते हैं।"

मैं—"और ये बैल आप लोग क्या करते हैं ?"

हाल्वे—"अभी पाँच चार रोज हुए एक सौ बैल हम लोगों ने सूसिटी के बाजार में बेचे थे। ये चारो भी बेच डाले जायँगे।"

उस समय मेरे दिल पर बड़ी चोट लगी। मैंने शिकागो का बूचड़खाना अपनी आँखों से देखा था। हजारों सूअर, भेड़ और बैल वहां पर मैंने बूचड़खाने के बाहर बँधे देखे थे। "यही लोग पशुओं को यहां से पाल पाल कर वहां मारने को भेजते हैं और अपने दाम खरे करते हैं"। यह क्या माया है ? 'स्वार्थ ! खुदग़र्जी !!' अमरीका में लाखों एकड़ भूमि सिर्फ पशुओं के निमित्त है। जमींदार लोगों की अधिकांश आमदनी इसी व्यापार से है। मकई जितनी पैदा होती है उसका दसवाँ भाग मनुष्य अपने खाने में लाते होंगे, बाक़ी सब सूअरों, भेड़ों और बैलों के खाने में आती है। जब ये पशु खूब मोटे ताज़े हो जाते हैं तब सभ्यताभिमानी मनुष्य उनको मार कर खा जाते हैं। अमरीका का करोड़ों रुपये का व्यापार इसी से होता है। इन पशुओं की क़ीमत इनके वज़न के अनुसार लगती है। इसी लिये हाल्वे इनको मकई खाने को देते थे।

* * * *

अमरीका में घोड़ों से खेती होती है। प्रातःकाल सात बजे अपनी अपनी गोड़ने की कल, जिसके आगे दो घोड़े रहते हैं, लेकर मजदूर अपने अपने काम पर पधारे। मैं इस काम को बिलकुल न जानता था, इसलिये खोदने का काम

मुझे दिया गया। ग्यारह बजे के क़रीब मैं मकई के खेत में खड़ा काम कर रहा था कि किसी ने पीछे से मेरी पीठ पर हाथ रक्खा। मैंने घूम कर देखा तो जमींदार महाशय किसानों के कपड़े पहने हाथ में कुदाली लिये खड़े हैं। मैं बड़ा हैरान हुआ। अव्वल तो बी० ए० फिर एल० एल० बी०, तिस पर भी छै सौ एकड़ भूमि का मालिक, मेरी तरह काम करने के लिये तैयार खड़ा है। धन्य! अमेरिका, धन्य! अपने ऐसे ही परिश्रमी सुपुत्रों की बदौलत आज तू उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान है; परन्तु जिस देश के शिक्षित और धनवान मनुष्य शारीरिक परिश्रम से बेतरह नाक भौं सिकोड़ते हैं वह देश क्यों न अधोगति को प्राप्त हो? क्यों न वह दुःख-दारिद्र का लीलास्थल बना रहे? जब मेरी उनकी चार आँखें हुईं तब वे हँस कर बोले—"क्यों, कैसा कठिन काम है?"

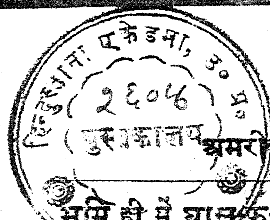
मैं—(मुस्करा कर) "सभी काम आरम्भ में कठिन होते हैं। पीछे से अभ्यास हो जाने पर आसान हो जाते हैं।"

एल्वी—"शाबाश! ऐसे ख़्याल वाले आदमी के लिये दुनियां में कोई भी काम मुश्किल नहीं है।"

मैं चुप रहा फिर एल्वी बोले—"आप यदि आलू के खेत में काम करें तो बहुत अच्छा हो। यह मकई तो प्रायः पशुओं के खाने में आती है इसलिये इसकी अच्छी बुरी की चन्दा परवा नहीं। ख़ास कर इस समय जब दूसरी खेतियों में आदमियों की सख़्त जरूरत है।"

मैं—"जैसी आज्ञा, मुझे तो काम करना है।"

हम दोनों आलू के खेत में पहुंचे। जमींदार महाशय ने इस साल १२० एकड़ भूमि में आलू बोये थे। आलू की फ़सल के अच्छे होने की इस साल कम आशा थी। पहले त।



भूमि ही में घास-फूस बहुत उगा था, आक और सूरजमुखी बहुत थे, जिनके उखाड़ने के लिए दो आदमी बराबर दरकार थे। दूसरे आलू की फ़सल में इस साल कीड़ा लग गया था। बाज़ बाज़ जगह तो इन मूज़ियों ने ज़मीन सफ़ाचट कर दी थी। मैंने पल्वी महाशय से पूछा—"क्या इन कीड़ों के दूर करने का कोई उपाय नहीं है ?"

पल्वी—"है क्यों नहीं ? कल देखो दो आदमी लगाकर सारे खेत में पेरिस ग्रीन (Paris Green) छिड़कवा दूँगा। मैं दूसरे दूसरे कामों में लगा रहा, इसलिए यह सब ग़फ़लत हुई।"

पेरिस ग्रीन एक प्रकार का विष है। एक बड़ी डब्बेदार गाड़ी को पानी से भर कर उसमें इस विष को घोल देते हैं। विष के पीछे ऐसी कल लगी रहती है कि जब उस पर बैठा हुआ आदमी घोड़ों को हाँकता है तब फुहारे की तरह विष-मिश्रित पानी दोनों ओर की कतारों पर पड़ता जाता है। पौधे बिलकुल भीग जाते हैं और कीड़े प्रायः मर जाते हैं। बाज़ बाज़ दफ़े चार चार क़तारों पर एक ही बार पानी छिड़कते जाते हैं। उस कल की नली को बढ़ा घटा कर ऐसा करते हैं। मुझे दो चार दिन यह भी काम करना पड़ा था।

बारह बजे भोजन के लिये छुट्टी हुई। एक बजे से फिर मैं खेत में काम करने चला गया।

आलू के खेत में दो जने और गोड़ने की कल चला रहे थे। इस कल के आगे दो घोड़े लगे रहते हैं और एक आदमी चलाने वाला होता है। यह कल खेत की क्यारियों में दोनों ओर पौधों की जड़ों में मिट्टी खोद खोद कर डालती जाती है, इससे खेती शीघ्र फूलती फलती है। वर्षा से मिट्टी दब जाती

है और धूप से सख्त हो जाती है, इसलिये फ़सल के पकने तक पांच चार बार सारे खेत को गोड़ना जरूरी है। यह मशीन बहुत कीमती नहीं है। चालीस पचास रुपये में अच्छी काम लायक मिल सकती है।

"जानी!"—भोजन करके मैं बरामदे में खड़ा था कि किसी ने पीछे से पुकारा। मैंने घूम कर देखा तो हाल्वे का लड़का थोड़ी दूर पर खड़ा मुझे बुला रहा है। मैंने पास जाकर पूछा—"क्यों क्या है?"

लड़का—"पापा (पिता) कहते हैं कि आज आप हम लोगों के साथ जौ के खेत पर काम करने चलें।"

मैं—"बहुत अच्छा।"

मैंने हाल्वे से गेहूं और जौ काटने वाली कल को चलती हुई देखने की इच्छा कई बार प्रकट की थी। आज इसी लिए उसने मुझे बुलाया था। जब मैं खेत पर पहुंचा, तब हाल्वे मशीन चला रहे थे। इस मशीन को अंग्रेजी में बाइंडर (Binder) कहते हैं। इसके चलाने के लिये चार, छै, आठ, दस घोड़े, जैसी मशीन हो, दरकार होते हैं। बड़े बड़े खेतों पर पच्चीस पच्चीस, तीस तीस घोड़े इस मशीन को चलाते हैं। पल्वी के खेत पर जो मशीन थी उसमें घोड़े पीछे रहते थे और काटने वाली कल आगे। नहीं तो प्रायः घोड़े मशीनों के आगे ही जोते जाते हैं। इस मशीन से तीन काम होते हैं—काटना, बांधना, और फेंकना। जौ को काट कर उसके पूले बना और रस्सी से बांध कर यह मशीन फेंकती जाती थी। हम तीन जने (मैं तथा दो लड़के और) उन पूलों को उठा उनके सिरे मिला कर खड़ा करते जाते थे। इस तरह पांच

छ पूले इकट्ठे इस प्रकार खड़े किये जाते थे कि धूप से जो जल्द सूख जायँ, और यदि पानी बरसे तो उनके ऊपर से बह जाय।

अकसर ज़मींदार अनाज के सूखते ही उसको भूसी से अलग करने के लिये मड़नई की कल (Thrashing Machine) का उपयोग करते हैं। इस मशीन से गेहूं या जौ अलग होकर डब्बेदार गाड़ियों में गिरते जाते हैं। भूसा कल के ज़ोर से उड़ उड़ कर दूर गिरता जाता है। उस का एक बड़ा ऊंचा टीला सा बनता जाता है। पास के एक खेत पर एक दिन मैं गेहूं की मड़नई देखने गया था। पल्वी का विचार शीघ्र मड़-नई करने का नहीं था, इसलिये जौ के सूखने पर उन फूलों के बड़े बड़े कुप्प बना दिये गये।

इस खेत पर सौ एकड़ भूमि में ओट (Oats) बोये गये थे। जब वे पक गये तब इसी मशीन से वे भी काटे गये। उनके भी बड़े बड़े कुप्प बना दिये गये। यह मशीन बिलकुल जड़ तक फ़सल नहीं काटती; आठ से दस इञ्च तक डंठल रह जाते हैं। परन्तु इससे कोई हानि नहीं, उलटा फ़ायदा है। जब भूमि पर नए सिरे से हल चलाया जाता है तब ये डंठल खाद का काम देते हैं। पश्चिमी अमरीका में बहुत से ज़मीं-दार ऊपर ही ऊपर से फ़सल काटते हैं। बाक़ी खाद के लिये रहने देते हैं। यहां भी जब ओट कट चुके और उनके पूलों के बड़े ऊंचे कुप्पे बना दिये गये, तब हल का काम आरम्भ हो गया। हल वाली कल को अंग्रेज़ी में प्लाविंग् मशीन (Ploughing Machine) कहते हैं। इसके आगे भी छै, आठ, दस, ज़रूरत के मुताबिक घोड़े रहते हैं। पशुओं के लिये यह बड़ा कठिन काम है। आठ से दस इंच सख्त ज़मीन को

खोद खोद कर फेंकने में उन्हें बड़ी मेहनत पड़ती है। जैसा मैंने बतलाया वे सब कटे हुये डण्ठल इस मिट्टी के नीचे दब कर खाद बन जाते हैं।

यही खाद काफ़ी नहीं होती। खाद डालने के लिये एक जुदा कल है। उसको अंग्रेज़ी में मैन्यूर स्प्रेडर (Manure Spreader) कहते हैं। यह भी एक डब्बेदार गाड़ी की तरह की कल है। पहिले इसको खाद से भर लेते हैं। फिर खेत में ले जाकर पीछे की कल खोल देते हैं। ज्यों ज्यों गाड़ी के घोड़े चलते जाते हैं त्यों त्यों खाद गिरता जाता है।

* * * *

आज सख्त बारिश थी। खेतपर नहीं जाना था। छुट्टी है, गप्पें उड़ने लगीं। मैं, हाल्वे, दो लड़के, हाल्वे की तीन लड़कियां और उनकी माता, बैठक में कुरसियों पर बैठे थे। हाल्वे की बड़ी लड़की, जिसका नाम एल्सी था, पियानो के स्टूल पर बैठी थी।

मैंने गांव में किसी से सुना था कि मिस्टर एल्वी मज़दूरों से काम तो ले लेते हैं पर मज़दूरी देने में आगा पीछा करते हैं। अपना सन्देह दूर करने के लिये मैंने हाल्वे से कहा—"क्यों जी, क्या सचमुच एल्वी मज़दूरी देने में देर लगाया करते हैं?"

मेरे सवाल करने का लहजा ऐसा था कि "माता" मेरे दिल का भाव समझ गई। उन्होंने दिल्लगी के तौर पर कहा—"अभी तक तो किसी को मज़दूरी नहीं मिली। छै मास से हम लोग यहाँ हैं। सिर्फ पन्द्रह रुपये मिले हैं। आप को उम्मेद नहीं, इस साल कुछ मिले।"

मैं—"वाह यह कैसे हो सकता है? मैं कालेज कैसे जाऊँगा?"

इस पर सब लोग हँस पड़े। हाल्वे ने कहा—"घबराइए नहीं। इस मुल्क में मज़दूरों की रक्षा गवर्नमेंट अच्छी तरह करती है। आपको यदि एल्वी मज़दूरी न दे तो आप उसका असबाब नीलाम करवा सकते हैं।"

इस पर एल्सी (बड़ी लड़की) ने हँसकर, मुझे सम्बोधन करके, कहा—"अच्छा यदि एल्सी आप को मज़दूरी न दे, तो आप उसकी कौन सी चीज़ लेना पसन्द करेंगे।

मैं—"उसके अस्तबल में जो अच्छी घोड़ी बँधी है, मैं तो उसी पर चढ़कर रफूचक्कर हो जाऊंगा।" इस पर मारे हंसी के सब लोग लोट पोट हो गये।

इस तरह बहुत प्रकार की बातचीत होती रही। मैंने हाल्वे से कहा कि आप कोई दिल्लगी की बात सुनावें। हाल्वे ने कहा, दिल्लगी क्या, एक सच्ची बात सुनाता हूँ —

"जब पिछली बार हम लोग बैल बेचने सूसिटी गये, तब लोगों से सुना कि वहाँ पूर्व से पादरी लोग व्याख्यान देने आये हुए हैं। एक लेकचर उस रोज़ भी तीसरे पहर होने वाला था। मैं भी सुनने गया। एक नौजवान पादरी खड़ा लेकचर दे रहा था। अपने लेकचर में उसने अपने पादरी हो जाने का कारण बतलाया। कहने लगा कि मैं किसान हूं। एक दिन दोपहर को खेत में खड़ा काम कर रहा था कि मुझे आकाश में कुछ शब्द सुनाई दिया। मैंने जो आँख उठा कर देखा तो एक फ़रिश्ता खड़ा पाया। उसके हाथ में एक तख्ती थी। उस तख्ती पर मोटे अक्षरों में "पी० सी०" (P. C.)

लिखा हुआ था। कुछ देर में फ़रिश्ता लोप होगया। मैं सोचने लगा कि यह क्या? आख़िर मैंने समझा की फ़रिश्ता कह गया है कि (Preach Christ) ईसा के सिद्धान्तों का प्रचार कर। बस मैंने उस दिन से अपना काम छोड़ ईसाई धर्म्म का प्रचार करना आरम्भ किया। यह सुनकर, श्रोतागणों में एक बुड्ढा जो कोने में बैठा था, उठा और कहने लगा—"महाशय, आपने भूल की"। व्याख्यानदाता (हैरान होकर)—"क्या?"

बूढा—"फ़रिश्ते ने आप से कहा था 'Plough Corn—अर्थात् मकई बोओ।' आप ने उलटा समझा?"

जितने आदमी वहां बैठे थे, सभी कहकहा मार कर हंस पड़े। व्याख्यानदाता पर मानों घड़ों पानी पड़ गया। पाठकों को बतलाने की ज़रूरत नहीं कि बुड्ढे के और पादरी साहब के कहे हुये शब्दों के प्रथमाक्षर एक ही हैं। दोनों ने उनके दो भिन्न भिन्न अर्थ किये। हम लोग इस प्रकार बहुत देर तक बातें करते रहे।

आज तमाम दिन पानी बरसता रहा। शाम को भोजन के बाद सब लोग फिर बैठक में इकट्ठे हुए। एल्वी भी दोपहर की गाड़ी से आ गये थे। एल्सी पिआनो बजाने में कुशल थी। गाना बजाना आरम्भ हुआ। एक अजीब दृश्य था—स्वामी, सेवक सब एक समान-कोई भेद-भाव नहीं। अपने देश में देखो। नौकर तो पशु से भी बदतर समझा जाता है। जमींदार लोग किसानों को अपने साथ कुरसी पर बिठलाना हतक-इज़्ज़त समझते हैं। पाठक यदि आपके यहाँ कोई नौकर हो तो आप उसको शिक्षा दें; उसके अन्दर आत्मसम्मान का माद्दा उत्पन्न करें; यही सच्ची देशसेवा समझिए।

पल्सी पिआनो बजाती थी और गाती भी थी। उसके साथ उसकी दो बहनें और भाई भी गाते थे। अधिकांश भजन प्रेम और खीष्ट-धर्म्म सम्बन्धी थे। दो घण्टे तक हम लोगों ने गाने का आनन्द लूटा। अन्त में, हाल्वे के कहने पर, एक छोटी लड़की ने, जिसकी उम्र आठ बरस की थी, एक भजन गाया। उसके कुछ पद मैं नीचे लिखता हूँ—

There are many flags in many lands,
There are flags of every hue.
But there is no flag in any land,
Like our own red, white and blue.

Chorus.

Then hurrah for the flag,
Our country's flag, its stripes and white stars.

Verse.

I know where the prettiest colors are,
And I'm sure if I only knew.
How to get them here I would make a flag,
Of glorious red. white and blue.

*   *   *   *   *

Verse.

We should always love the stars and stripes,
And we mean to be ever true.
To this land of ours and the dear old flag,
The red, the white and blue.

न जाने क्यों, इस भजन को सुनकर मुझे बेचैनी सी हुई। मैं झट से उठ कर, सब से आज्ञा ले, अपने कमरे में चला

गया। आँखों से टप टप आंसू गिर रहे थे। अकेला अंधेरे कमरे में बैठा जो कुछ सोच रहा था उन भावों को लिखने का शक्ति इस लेखनी में कहाँ!

* * * * *

घास के खेत में काम करना कठिन है। वर्षा के बाद मच्छरों की बहुतायत हो गई है। इस समय, दोपहर को हवा भी बन्द है। दोनों हाथों से या तो काम करें या मच्छर हटावें। इधर हाथ हटाओ तो उधर काटते हैं। मतलब यह कि काम करने वालों का आज नाक में दम था।

हम दो आदमी भाग्यशाली थे—एक तो मैं और दूसरा मेरा साथी। हमारा काम घास की मेड बाँध कर उसके बुर्ज बनाना था। इसलिये हम दोनों ज़मीन से कई फुट ऊँचे रहते थे, और ज्यों ज्यों घास आती जाती थी, त्यों त्यों ऊँचे होते जाते थे। इससे मच्छरों से बहुत कुछ रक्षा होती थी।

घास के बुर्ज बनाने के लिये जो मशीन रहती है उसके लिये छै आदमी दरकार होते हैं। एक आदमी कटी हुई घास को इकट्ठा करता जाता है—हाथ से नहीं, मशीन से। दो जने दूसरी मशीनों से उस कटी हुई घास को लाकर एक बड़ी मशीन के दाँतों के आगे रखते जाते हैं। ये दाँत लकड़ी के डेढ़ डेढ़ गज़ लम्बे होते हैं। जब काफ़ी घास उन दाँतों में अट जाती है, तब एक आदमी दूसरी तरफ़ से घोड़े को हाँक देता है। घास उन दाँतों पर ऊपर उठती हुई चली जाती है। ज़मीन से कोई पाँच गज़ ऊँचे जाकर ये दांत पीछे की ओर ढुलक पड़ते हैं। घोड़े को रोक लेते हैं। सारी घास पीछे गिर जाती है। घोड़े को वापिस हाँक लेते हैं। इस तरह

मशीन घास को पीछे की ओर फेंकती जाती है। वहां दो आदमी गिरो हुई घास को इकट्ठा कर उसकी मेंड़ बांधने और पुर्ज बनाने में लगे रहते हैं। तात्पर्य्य यह कि घास को इकट्ठा कर इस तरीक़े से रखते हैं जिससे वर्षा का पानी पड़ने से वह सड़ न जाय।

अभी दो ही घण्टा मुझे काम करते हुआ था कि एक लड़के ने मुझे आकर कहा कि पल्वी बुलाते हैं। बुर्ज से उतर कर मैं पल्वी के पास चला गया। पल्वी दूसरे खेत में एक और काम में मशगूल थे। जब मैं वहां पहुँचा तब मुझे मकई भरने में मदद देने का काम मिला। यहाँ एक दूसरी ही कल चल रही थी। इसको अंग्रेज़ी में "कार्न शेलर" (Corn-Sheller) कहते हैं। इसका काम मकई के भुट्टों से दानों को अलग करना है। बारह घोड़े इस कल को चला रहे थे। एक आदमी मकई के भुट्टे एक बड़े नल में डालता जाता था। अंडियां अलग हो जाती थीं और दाने दूसरी नली से डब्बे-दार गाड़ी में गिरते जाते थे।

इस खेत पर काम करने का यह मेरा आख़िरी दिन था। दूसरे दिन अपनी मज़दूरी ले मैंने सब से "गुडबाई" कही और दूसरी धुन में किसी और जगह चला गया।

पाठक, आप यदि ऊब न गये हों तो मैं दो चार बातें आप से और करलूं। मैं ने इस लेख में कोशिश यही की है कि आप को अमरीकन-कृषि-सम्बन्धी बातें सुनाऊं। मैंने सब बातें सच सच आप को सुना दीं हैं, कोई बात छिपा नहीं रक्खी। सम्भव है कि आप को इस लेख के पाठ से अधिक रस न आया हो। यदि ऐसा हुआ हो तो मुझे खेद है।

एक बात और है। मैंने जो इस लेख में कहीं कहीं मांस की बातें लिखीं हैं उनसे मेरा अभिप्राय केवल अपना हाल ठीक ठीक लिखने का है। मेरा यह मतलब हरगिज़ नहीं है कि वैष्णव-विचार के विद्यार्थी अमरीका न आवें। आख़िर मुझे खाने को मिलता ही रहा, और अमरीकावाले सिर्फ़ मांस ही थोड़े खाते हैं। शाक तरकारी सब जगह मिल जाती है। इससे केवल आप यह देख सकेंगे कि निर्धन भारतीय विद्यार्थी को अमरीका आकर कितना आत्मत्याग करना पड़ता है। जापानी विद्यार्थी के लिए ऐसी कठिनाइयां नहीं हैं। वे जहां जायँ वहां उनको चावल, मांस और मछली मिल सकती है।

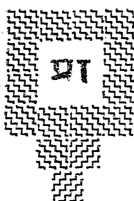
इसके लिखने से एक अभिप्राय और भी है। आजकल विदेशयात्रा का दरवाज़ा खुला हुआ है। सैकड़ों विद्यार्थी अन्य देशों में जाकर अपना तन, मन, धन लगा कर विद्योपार्जन करते हैं। परन्तु जब वे स्वदेश को लौटते हैं तब आप उनसे प्रायश्चित्त करने को कहते हैं। भला जो लोग अमीर हैं वे तो आपके डर से काशी के किसी महामहोपाध्याय जी को बुलाते हैं; आपको खुश करने के लिये दो तीन सौ ब्राह्मणों की भी पेटपूजा कराते हैं; तिस पर भी किसी न किसी बिरादरी वाले की मूर्खता से उन बेचारों की फ़ज़ीहत ही होती है। परन्तु यदि आप किसी मेरे समान विद्यार्थी को जिसने सब के साथ बैठ कर खाया है—यद्यपि मांस नहीं खाया—वापिस आने पर, प्रायश्चित्त करने को कहें तो वह बेचारा बे मौत ही मरा। न तो उस ग़रीब के पास इतना रुपया ही है जो शास्त्री महाराज की आगवानी कर सके; न ब्राह्मणों की दक्षिणा के लिए धन ही है; तो मेरे सदृश लोग तो आप के विचार में

अशुद्ध ही रहे! मर मर के अमरीका पहुंचे; वहाँ जाकर सैकड़ों कष्ट उठा कर कुछ सीखा। वह भी किस लिए? अपने पेट की ख़ातिर नहीं, उसका पालन तो अच्छी तरह स्वदेश में ही हो सकता था, बल्कि आप को और आपके सन्तानों की भलाई के लिये। जब सीख साख कर वापस आये तब आप ने यह पाखंड खड़ा किया---"अशुद्ध हो, अशुद्ध हो" और शुद्ध करने का ठेका दिया है उन लोगों को जिनका अपना निज का जीवन भी शुद्ध नहीं है। पाठक, मैं आप से हाथ जोड कर पूछता हूँ कि क्या यही न्याय है? क्या इन्हीं बातों से देश का उद्धार होगा?

परमात्मा हमारा सब का पिता है। उसी की आज्ञा पालन करने के लिये हम लोग देश विदेश घूमते हैं और मातृभूमि की सेवा के लिये कमर कसे हैं। केवल परमात्मा की आज्ञा-उल्लङ्घन करने से हम लोग अशुद्ध हो सकते हैं, और उसी की उपासना करने से शुद्ध भी हो सकते हैं। मनुष्य की क्या मजाल है जो हमको अशुद्ध से शुद्ध कर सके। जो आप ही मलिन है वह किसी को शुद्ध क्या करेगा। इसलिये हे भारतीय युवको! यदि किसी उच्च उद्देश को सामने रख कर आप ने परदेश-गमन किया है और वहाँ जाकर उसी के लिये सब कष्ट सहन करते रहे हो, तो परमात्मा के निकट आप शुद्ध हैं। निर्भय होकर स्वदेश को लौटो और अपने उद्देश की पूर्ति करो।



जनेवा झील की सैर



त: कालीन कामों से फारिग हो, कपड़े पहन मैं तैयार ही हुआ था कि मेरे साथी ने दरवाज़ा खटखटाया। "आप आ गये"—यह कह कर मैंने झट से दरवाज़ा खोल दिया।

मेरे साथी ने मुस्करा कर पूछा—"कहिये आप तैयार हैं?"

मैं—"बस तैयार ही हुआ था कि आप आ गये।"

साथी—"अच्छा अब चलिये।"

मेरे साथी का नाम मार्कस है। वह बहुत ही हँसमुख, खुशमिजाज, नौजवान है। लम्बा, चौड़ा, हाथ पैर गठीले, चेहरा साफ़, दाढ़ी मूछ सफ़ाचट, उम्र कोई चौबीस बरस। आप जब उसे देखेंगे उसके चेहरे पर मुसकराहट पायेंगे। यों तो अमरीका-निवासी स्वभाव ही से हँसमुख होते हैं, और हँसी दिल्लगी बहुत पसन्द करते हैं, परन्तु मार्कस में यह विशेष गुण है कि उससे मिलते ही आप का चेहरा खिल उठेगा। आप कैसे ही उदास क्यों न हों, सब उदासी भूल जायँगे। मार्कस के पूर्वज स्वीडन से अमरीका आये थे, इसी लिये शरीर से आप बलिष्ट हैं।

शिकागो-विश्वविद्यालय से आध मील दूर, जेक्सन बाग़ की दूसरी ओर, "एलिवेटर" नामक गाड़ियों की सड़क है। बात चीत करते हुए हम उसके स्टेशन पर पहुंचे। इन गाड़ियों पर चढ़ने वाले चाहे आध मील जायँ, चाहे बीस

मील, किराया ढाई आने ही देना पड़ता है। अपना किराया देकर हम ऊपर प्लेटफ़ार्म पर चले गये। प्लेटफ़ार्म पर कई तरह की छोटी छोटी कलें रखी हुई थीं, जो सौदा बेच रही थीं। यदि आप को तम्बाकू की ज़रूरत है तो एक पैसा कल के मुंह में डाल दो और नीचे वाले लोहे के डण्डे को दबा दो, आप को तम्बाकू मिल जायगी। उसी तरह बहुत सी चीज़ों के लिये जुदा जुदा छेद थे, जहां पैसा डालने से वह चीज़ मिलती थी। बिना पैसा डाले नहीं मिल सकती थी। भारत-वासियों के लिए यह एक अचम्भे की बात होगी।

गड़गड़ करती हुई गाड़ी आ पहुंची। हम लोगों को जगह न मिलने के कारण खड़े रहना पड़ा। इस समय भीड़ होने का कारण यह था कि लोग सवेरे, आठ बाजे, दुकानों पर जाते हैं और गाड़ियां केवल दोही होती हैं। एक में तम्बाकू पीने वाले, दूसरी में हमारे जैसे बैठते हैं। मगर यह दिक्क़त कुछ ही मिनटों के लिये होती है। ज्यों ज्यों शहर निकट आता जाता है, डिब्बा खाली होता है।

मैं—"आप तो गरम कोट लेते आये; मैं तो लाया नहीं, पर आज कुछ ऐसी सरदी भी तो नहीं है।"

मार्कस—"सर्द हवा चलते देर नहीं लगती। और फिर हम लोगों को झील के उस पार जाना है। वापस आने तक ठण्ड पड़ने लगेगी।"

मैं—"तो क्या सरदी में ठिठुरना होगा?"

मा०—"ठिठुरना क्यों होगा? इसी कोट में गटपट हो रहेंगे।"

"क्वर्क-गली" में पहुंच कर हमने जनवा झील को जाने वाली रेलगाड़ी का स्टेशन तलाश किया। पता लगा कि गाड़ी

के जाने में अभी एक घण्टे की देरी है। फैशन के मुताबिक़ यहाँ पर दूसरे, तीसरे दिन हजामत ज़रूरी है; और यदि नाई से हजामत कराओ तो (२½ आने के पैसे लगते हैं, इसलिये रोज़ के और ज़रूरी कामों में हजामत भी शामिल है। मार्कस आज सुबह शीघ्रता के कारण हजामत नहीं कर सके थे।

मा०—"मैं तो नाई की दुकान पर जाता हूं; आप यहाँ पर तमाशा देखें।"

मैं—"बहुत अच्छा।"

तमाशा क्या था, वही जो बड़े बड़े शहरों में स्टेशनों पर होता है। मुसाफिरखाने में बहुत सी बेंचें रखी हुई थीं, जिन पर स्त्री पुरुष बैठे थे। भाँति भाँति की बातें कर रहे थे। कोई कोई अख़बार पढ़ रहा था।

एक बेंच पर चार पाँच आदमी खूब हंस हंस बातें कर रहे थे। मैं उनके पीछे वाली बेंच पर बैठ कर उनकी बातें सुनने लगा। एक ने कहा—

"हम रास्ते में बिजली की गाडी से आरहे थे, एक आयरिश (Irish) हमारे कमरे में जगह न मिलने के कारण दरवाजे ही पर खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद किराया लेनेवाला कांडक्टर (Conductor) आया। उसने कहा—"आगे बढ़िये, साहब"। आयरिश बोला—"ग़ज़ब खुदा का! ढाई आने के पैसे भी दिये और घर तक पैदल भी चलें!" इस आगे बढ़ने में उसका पैर दूसरे आदमी के पैर पर पड़ गया। वह आदमी बोला—"तुम्हारी आँखें कहाँ हैं?" आयरिश बोला—"सिर में"। उस आदमी ने कहा—"तो क्या मेरा पैर नहीं देख पडता?" आयरिश बोला—"नहीं, तुम जूता जो पहने हो।"

दूसरा आदमी बोला—"हम तुमको दिल्लगी सुनावें।"

"रात को हम तमाशा देखने थियेटर में गये। एक यहूदी अपने लड़के को साथ लेकर तमाशा देखने आया। सिर्फ़ अपने लिये टिकट खरीद कर लड़के के साथ वह झट अन्दर घुसने लगा। दरवाज़े पर जो टिकट देखने वाला था उसने रोका और कहा कि एक टिकट इस लड़के के लिये भी ख़रीदना होगा। यहूदी बोला—"आप यक़ीन कीजिये, लड़का आँख बन्द किये बैठा रहेगा!" यह सुन सब लोग खिलखिला कर हंस दिये।

फिर तीसरा कहने लगा—"मैं कल दोपहर को एक गली से जा रहा था। एक बड़ा सा कुत्ता भौंकता हुआ मेरे पीछे लगा। मैंने पहले तो समझा कि शायद हाथ मिलाना चाहता है; मगर जब वह उछलकर काटखाने को बढ़ा तब मैं भागा। कुत्ता भी मेरे पीछे पीछे चला। मैं एक अस्तबल में घुस गया। वहाँ मेरी नज़र एक लम्बी लकड़ी पर पड़ी जिसके एक तरफ़ लोहे की एक नोकदार कील थी। मैंने आव देखा न ताव, झट लकड़ी उठा ली और नोकदार छोर से कुत्ते के चुभो दिया। इतने में कुत्ते का मालिक भागता हुआ आया और कुत्ते को ज़ख्मी देखकर झल्लाकर बोला—"किस लिये तुमने कुत्ते को ज़ख्मी किया?" मैंने कहा—"यह मेरे पीछे भागता हुआ आया था।" वह बोला—"क्यों तुमने लकड़ी के दूसरे सिरे से नहीं हटाया?" मैंने कहा—"क्यों नहीं, वह मेरी तरफ़ दूसरे सिरे से (पीछा करके) आया?"

इस टोली का एक एक आदमी इसी तरह हंसी दिल्लगी की बात सुनाता और सब लोग खिलखिला कर हंसते। रेल

का समय आगया। मुसाफ़िर अपना अपना बेग लेकर तैयार हुए। मेरे साथी मार्कस भी आ पहुंचे।

रेल के प्लेटफ़ार्म पर जाकर पता लगा कि विश्वविद्यालय के २०० से अधिक विद्यार्थी आज जनवा झील की सैर को निकले हैं। इनमें से आधे के करीब लड़कियाँ थीं। हर एक के पास व्यालू करने के लिये सामान था; मगर हमलोगों ने कुछ नहीं लिया था। सोचा था कि जनवा झील के पास जो गाँव है वहां कुछ ले लेंगे।

टिकट काटने वाले से मालूम हुआ कि यह स्पेशल ट्रेन (ख़ास गाड़ी) है जो विश्वविद्यालय के छात्रों ही के लिए रेलवे कर्मचारियों ने चलाई है। इसलिए केवल तीन बड़े बड़े डिब्बे हम लोगों के लिए काफ़ी थे। एक डिब्बे में सौ के क़रीब आदमी बैठ सकते हैं। यहां हिन्दोस्तान की तरह स्त्रियों के लिए जुदा, मर्दों के लिए जुदा, कमरा नहीं था। सब जने मिल जुलकर साथ ही बैठ गये।

साढ़े नौ बजे के क़रीब गाड़ी खुली। शिकागो शहर की धुवां मिश्रित वायु तथा शोरो गुल से बाहर हुए। मैदान की शुद्ध पवन का सञ्चार हुआ। गाड़ी के दोनों ओर हरियाली ही हरियाली थी। सब्ज़ पत्तों से सुसज्जित वृक्ष अपने पूरे सौन्दर्य में दृष्टि पड़ते थे। प्रकृति-माता की शोभा अनुपम थी। मार्च में जहाँ हिम ही हिम दृष्टि पडती थी, वहाँ आज मई में हरी मख़मल का बिछौना बिछा हुआ है। गाड़ी में बैठे हम लोग उस सुन्दर दृश्य को देख देख कर आनन्दित हो रहे थे। प्रसन्न-चित्त विद्यार्थियों ने शिकागो का राग अलापना आरम्भ किया—

शिका—गो—गो, गो—शिका—गो
गो—शिका—गो, गो—शिका—गो
गो—शिका—गो, गो—शिका—गो
शिकागो—गो

ऊँचे स्वर से एक ध्वनि में जब सब लोगों ने "शिकागो—गो" कहा, तब मुझे बड़ा ही आनन्द आया। कहाँ यह जीवन और कहाँ हमारे देश के लोगों का! स्वतन्त्र और स्वछन्द; एक ही प्रकार के अधिकार; सब लड़के लड़कियों का इकट्ठे विद्याध्ययन; इकट्ठे ही खेल कूद।

मार्कस के पास उनके एक और साथी आ बैठे; इससे हम लोग तीन आदमी हो गये। कुछ देर तक हम लोग भिन्न भिन्न विषयों पर बात चीत करते रहे। फिर मैंने मार्कस से कहा कि मैं जरा गाड़ियों में घूम कर देख आऊँ कि और सब लोग क्या कर रहे हैं।

रेलगाड़ियों के डिब्बे यहाँ हिन्दोस्तान की तरह कबूतरखानों जैसे नहीं होते। बहुत लम्बे चौड़े होते हैं, जिनमें पचास साठ आदमी आसानी से बैठ सकें। उनके बीच में जाने आने का रास्ता रहता है, और एक गाड़ी दूसरी से इस प्रकार जुड़ी रहती है कि एक आदमी सब गाड़ियों में आ जा सकता है।

अधिकांश विद्यार्थियों को मैंने ताश खेलते हुए पाया। चार चार आदमी बीच में मेज़ रख कर तुरब (whist) खेल रहे थे। कोई कोई मासिक पुस्तकें पढ़ रहे थे। एक जगह तीन लड़कियाँ बैठी बात चीत कर रही थीं। उनमें से एक, जिसका नाम "मिस" (कुमारी) स्टाक था, मुझ से परिचित थी। जिस समय उसने मुझे देखा, बड़े प्रेम से हाथ मिलाये और अपनी एक सहेली से कहा—

"मिस नैना, मिस्टर देव से परिचित हो लीजिए।"

मिस नैना ने मेरे साथ हाथ मिलाया। मैंने कहा—"आप का परिचय पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ।" इस प्रकार दूसरी मिस वडम्स के साथ मिस स्काट ने मेरा परिचय करवाया। फिर मिस स्टाक ने अपनी सहेलियों से कहा—"मिस्टर देव हिन्दुस्तान से यहाँ विद्याभ्यास के लिये आये हैं। आप और मैं दोनों पिछली गरमियों में एक ही प्रोफेसर (अध्यापक) से वक्तृता का अभ्यास करते थे। मिस्टर देव ने बहुधा अच्छे अच्छे विषयों पर व्याख्यान देकर हम लोगों को अनुगृहीत किया है, इनकी और मेरी पहचान तभी से है।"

नैना—"अच्छा, तो आप हिन्दुस्तान के रहने वाले हैं! मैंने समझा था आप इटली के निवासी हैं।"

मैं (मुसकराकर)—"बहुधा लोगों ने यहाँ मुझे इटली ही का निवासी समझा है।"

मिस स्टाक—"मिस्टर देव, मैंने आपको अपनी सहेली नैना के विषय में कुछ नहीं कहा। आप जान कर प्रसन्न होंगे कि यह रूस की रहने वाली हैं और रूस में स्वतंत्रता के लिए जो जद्दो-जहद हो रही है उसमें ये भी शामिल थीं। अभी एक ही महीना इनको यहाँ आये हुआ है।"

भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसे ऐसी देवी के दर्शन कर आह्लाद न हो। स्वतन्त्रता—देश की स्वतन्त्रता—जैसे पुण्य के काम में जिस ने अपने आप को बलिदान कर दिया हो; मातृभूमि की दुःख-निवृत्ति के लिए जिन्होंने अपने आप को खतरे में डाला हो; हम ऐसे वीरों को नमस्कार करते हैं। मिस स्टाक के इस कथन पर उस देवी में मेरी श्रद्धा और भक्ति

बढ़ गई। मैंने ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा। बीस वर्ष की युवा लड़की, हाथ पैर से मज़बूत, गोल चेहरा, बड़ी बड़ी आँखें, क़द कोई साढ़े पांच फीट से कुछ अधिक, साधारण वस्त्र पहने हुए, मुझे मानों देशभक्ति का उपदेश दे रही थी।

मैं—"आपने अंग्रेजी भाषा का अभ्यास कहां किया था?"

नैना—(ज़रा लजाकर) "मुझे अंगरेज़ी बोलने का अभ्यास बहुत कम है। स्कूल में थोड़ा सा सभ्यास किया है।"

मिस एडम्स ने जो अभी तक चुप थी, मुझ से कहा—

"मिस्टर देव, हम लोग यहाँ हिन्दुस्तान के हालात जानने को बहुत उत्सुक हैं। प्राय: मिशनरियों (पादरियों) से ही समाचार मिलते रहते हैं। आज हमें बहुत अच्छा अवसर मिला है कि आप से ठीक ठीक हालात दरियाफ़्त करें। आप बताइए कि क्या सचमुच आप लोग स्त्रियों को क़ैदियों की तरह रखते हैं?"

मैं—"आप अपने प्रश्न को ज़रा स्पष्ट कर दीजिए तो मैं उत्तर दूं।"

एडम्स—"मैंने लेक्चरों (व्याख्यानों) में सुना है और किताबों में पढ़ा है, कि हिन्दू लोग अपनी औरतों को घरों में क़ैदियों की तरह रखते हैं। यदि बाहर जायँ तो मुँह पर परदा डाल कर। यदि किसी के घर लड़की पैदा हो तो घर में मातम सा छा जाता है; पुरुष, स्त्री से बात चीत करना छोड़ देता है; और कहता है कि क्यों इसने लड़की पैदा की? बहुतेरे तो लड़कियों को मार भी डालते हैं।"

यह विषय रोचक था और मिस एडम्स ने ज़रा ऊँची आवाज़ से बात चीत की थी, इससे इधर उधर की लड़कियां

लड़के पास आकर बैठ गये और उत्तर की आकांक्षा में मेरे मुँह की ओर देखने लगे।

मैं—"इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश में स्त्रियों को ऐसी स्वतन्त्रता नहीं जैसी इस देश में है। हम लोग उन अबलाओं के अधिकारों की तरफ़ बहुत कम ध्यान देते हैं। तिस पर भी हम स्त्रियों को क़ैदियों की तरह नहीं रखते। हम उनकी इज़्ज़त करते हैं और घरों में हमारी मातायें पूरे अधिकार रखती हैं। यह सच है कि बहुत से अनपढ़ मूर्ख लोग स्त्रियों को कष्ट देते और लड़की का पैदा होना बुरा समझते हैं, मगर यह दशा उच्च और शिक्षित लोगों में नहीं है। परदे के कारण भी कई हैं। परदे का रिवाज हिन्दुस्तान में विदेशियों के आने से पहले प्रचलित न था, और अब भी कई प्रान्तों में नहीं है।"

एक लड़की—"हिन्दुओं का धर्म ही ऐसा है जिससे मर्दों की अपेक्षा स्त्रियां नीच समझी जाती हैं। स्त्रियां पति के जूठे टुकड़े खाकर रहती हैं; मातायें लड़कियों को गङ्गा में फेंक देती हैं; और यहां तक कि पति के मर जाने पर स्त्री का सिर मूड़ उसे सारी उम्र मातमी लिबास पहनाये रखते हैं।"

ऐसी बातें सुन कर एक लड़की ने धीरे से कहा—"परमात्मा का शुक्र है कि मैं ऐसे मुल्क में पैदा नहीं हुई।"

मैं—"असल में बात यह है कि हिन्दुओं के धर्म के अनुसार स्त्री-पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है। जो धर्म और शास्त्र की मर्य्यादा समझते हैं वे स्त्रियों को वैसे ही अधिकार देते हैं, परन्तु हमारे देश में मूर्खता अधिक है। इस लिये ऐसी ऐसी बातें आप लोगों के सुनने और पढ़ने में आती हैं। हम लोग ऐसी स्वतन्त्रता भी देना नहीं चाहते जैसी इस देश में है।

आप लोग एक सीमान्तर पर हैं और अधिकांश लोग हिन्दुस्तान में दूसरे सीमान्तर पर। हम उस रास्ते जाना चाहते हैं जिस पर हमारे पूर्वज चलते थे।"

एडम्स—"वह कौन सा?"

मैं—"स्त्री और पुरुष के अधिकार बराबर हैं। स्त्री घर की स्वामिनी है; मनुष्य का अधिकार-स्वातन्त्र्य घर से बाहर है। स्त्रियों को विद्याध्ययन वैसा ही आवश्यक है जैसे पुरुषों को। स्त्री का मान, सत्कार, पूजा करना पुरुष का धर्म है।"

इतने में टिकट काटने वाले ने आकर कहा—"यहाँ गाड़ी बदलेगी।" सब लोग उठ खड़े हुये। मैंने मिस स्काट से कहा कि स्टीमर में आप लोगों से फिर भेंट होगी। शीघ्र उनसे जुदा होकर मैं अपने मित्र के पास आया।

दूसरी गाड़ी में बैठ कर दो तीन स्टेशन ही गये थे कि जनवा झील दिखाई पड़ने लगी। इस झील का नाम जनवा-झील (जो स्वीटजरलैंड में है) इसलिये रक्खा गया है कि यह उसी की तरह रमणीक है। दृश्य भी इस में वैसे ही हैं। शिकागो से उत्तर-पश्चिम, ७० मील की दूरी पर यह झील है। इसकी लम्बाई ६ मील और चौड़ाई सवा मील से तीन मील तक है।

रेलगाड़ी ठीक झील के किनारे जाकर खड़ी हुई। गाड़ी से उतर कर हम लोग हारवर्ड नामी अग्निबोट में जा बिराजे। पवन मन्द मन्द गति से चल रहा था। अग्निबोट में एक आदमी, जिसका काम यही था कि यात्रियों को झील के इर्द गिर्द के घरों, फुलवाड़ियों और दृश्यों का हाल बयान करे, सब लोगों को वहाँ का वृत्तान्त बताता जाता था। झील के

चारों ओर बहुत अच्छे अच्छे घर बने हुये हैं। वहाँ शिकागो के धनाढ्य आदमी गरमियों में आकर रहते हैं। छोटी छोटी पहाड़ियाँ वृक्षों और घास से लदी हुई झील की शोभा को दुगना करती हैं।

हँसते खेलते विद्यार्थी लोग विश्वविद्यालय की प्रशंसा के गीत गा रहे थे और अपनी इस यात्रा का पूरा आनन्द उठा रहे थे। आज ज़रा बदली थी। जब पवन ज़ोर से चलने लगता था तब शीत मालूम होता था। मैंने मार्कस का कोट ओढ़ लिया और अच्छी तरह आराम से बैठ गया। एक विद्यार्थी अपने साथ फ़ोटोग्राफ़ी का केमरा लाया था। उसने उसी समय सब की तसवीर ले ली।

बारह बजे के बाद हम लोग झील के उस पार, झील जनवा नामी गाँव में, पहुँचे। अधिकांश लोग वहाँ होटल में खाना खाने चले गये। मैं, मार्कस और तीसरा साथी गाँव के बाहर एक वृक्ष के तले बैठ गये। हमारा तीसरा साथी जो सामान लाया था वह हम तीनों के लिये काफ़ी था। सो हम लोगों ने आनन्द से भोजन किया। लौटते समय रात को खाने के लिये फल और रोटी मोल ले ली।

हमारे देश के गाँवों की तरह यहाँ के गाँव नहीं हैं। यहाँ के गाँवों के मकान बहुत फ़ासले पर सुन्दर और हवादार होते हैं। मकानों के बनाने में अधिकतर लकड़ी से काम लेते हैं। आलतीनुमा छतें रहती हैं। एक, दो छतों के मकान बनाते हैं। यहाँ चाहे गरमी हो, चाहे जाड़ा, अन्दर कमरों में लोग सोते हैं। प्रत्येक गाँव में स्कूल होता है; टेलीफ़ोन होता है; बिजली की रोशनी का प्रबन्ध भी बहुत जगह है। परन्तु ग़रीब लोग

प्राय: मिट्टी का तेल जलाते हैं। ज़मीन से पांच सात फ़ीट ऊँचे मकान होते हैं। मकानों में मच्छर, मक्खी न घुसें, इस लिये हर एक खिड़की और दरवाज़े के आगे बारीक जालियाँ लगी रहती हैं। खिड़कियों के दरवाज़ों में शीशे लगे रहते हैं। अग्निबोट में सीटी बजी। हम लोगों ने समझा कि वापस जाने का समय हो गया। क्योंकि रास्ते में झील के एक किनारे शिकागो विश्वविद्यालयकी प्रकाण्ड यन्त्रशाला (Observatory) जो यर्कस साहब के नाम से मशहूर है, देखनी थी। असल मतलब इस यात्रा का यही था, इसलिये सब लोग झटपट अग्निबोट में आ गये।

ढाई बजे के क़रीब अग्निबोट यर्कस यन्त्रालय के सामने पहुंच गया। विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने लाखों रुपये इमारत तथा दूसरे सामान के लिये इसलिये खर्च किये हैं, जिसमें ज्योतिष विद्या के प्रेमी छात्र और आचार्य्य अपनी रुचि के अनुसार इस विद्या से लाभ उठा सकें। एक ऊंची पहाड़ी के ऊपर इस शाला की बहुत विशाल इमारत बनाई गई है। उसके तीन ओर गुम्बज़ हैं। एक ओर के बड़े गुम्बज़ में संसार में शायद सब से बड़ी दूरबीन रक्खी है। दूसरे दो गुम्बज़ों पर छोटी छोटी दूरबीनें हैं।

जब और विद्यार्थियों के साथ मैं उस बड़े गुम्बज़ में पहुँचा, जहां वह दीर्घकाय दूरबीन रक्खी थी, तो मैं आश्चर्य्य से आंखें फाड़ फाड़ कर उसे देखने लगा। उसके बड़े बड़े चक्र और भाप के बल से उस गुम्बज़ का घूमना, और दूरबीन का भी तारों की गति के अनुसार साथ साथ घूमते जाना हैरानी में डालता था। जब सब विद्यार्थी गुम्बज़ में इकट्ठे हो गये तब

एक आचार्य्य ने हम लोगों को सब घुमा फिरा कर दिखाया। हमें समझाया कि किस तरह तारों की गति तथा अन्यान्य ज्योतिष-सम्बन्धी बातें इस यन्त्र से जानी जाती हैं। सूर्य्य के ऊपर जो धब्बे दिखाई देते हैं उनके कई फ़ोटो हमें दिखाये। पाठक समझ सकते हैं कि ४० इञ्च के शीशे (Lens) से कैसी अच्छी तरह आचार्य्य लोग यहां आकाश का वेध करते होंगे और जो फ़ोटो उस शीशे के द्वारा ली गई होंगी वे कैसी होंगी। फ़ोटोग्राफ़ी और ज्योतिष विद्या का जो सम्बन्ध है उसका महत्व आचार्य्य ने हम लोगों को बहुत ही अच्छी तरह बतलाया।

इसी प्रकार चारों गुम्बज़ों में विद्यार्थी गये और आचार्य्यों ने सबके यथा योग्य प्रयोगों का वृत्तान्त संक्षेप से समझा दिया।

पाठक हम आप से क्या कहें। जब जब इस देश में हमको ऐसे ऐसे उपयोगी और लाभदायक वैज्ञानिक यन्त्रों के देखने का अवसर आता है तब तब हमारे मुंह से बेइख़्तियार यही निकलता है—"स्वतन्त्र देश क्या नहीं कर सकता"—यहाँ अमरीका में लोगों को अपनी मानसिक शक्तियों की उन्नति करने का कैसा अच्छा अवसर मिलता है। इस विद्यालय में करोड़ों रुपये लगा कर ज्योतिष का सामान केवल अमरीकन बच्चों के उपकारार्थ रक्खा गया है। जिस किसी को ज्योतिष में रुचि है वह यहाँ आकर सारी आयु व्यतीत कर सकता है। उसको वज़ीफे और हर तरह की सहायता मिलती है, जिसमें वह विज्ञान की वृद्धि करे। एक हमारा देश है जहां करोड़ों आदमी पशुओं की तरह पैदा होते हैं और जन्म भर अविद्या-न्धकार में पड़े पड़े मर जाते हैं। उनको मनुष्य-जीवन मिलना

और न मिलना बराबर है। जो चाहते हैं कि उन्नति करें; विद्या पढ़े; उनको कोई उत्साह देने वाला नहीं; सामान नहीं; कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ अपनी शक्तियों का यथा-योग्य उपयोग कर सकें।

आचार्य्य की इच्छा थी कि वह उस बड़ी दूरबीन से सूर्य्य के धब्बे दिखावे। मगर बदली के कारण हम लोग अपनी यात्रा से पूरा लाभ न उठा सके। इसलिये उसने केवल भिन्न भिन्न यन्त्रों के उपयोग बतलाये। जिन तारागणों को दूरबीन की सहायता से भी अच्छे प्रकार नहीं देख सकते उनकी धीमी रोशनी के सामने फ़ोटोग्राफ़ के प्लेट बहुत देर रखने से जो तबदीलियाँ उस पर होती हैं उनसे उन तारागणों का बहुत कुछ हाल मालूम हो जाता है। ज्योतिष विद्या सम्बन्धी जो जो प्रश्न विद्यार्थियों ने किये उन सब का आचार्य्य ने सन्तोषजनक उत्तर दिया। इस देखने भालने में हमारे तीन घण्टे ख़र्च हो गये।

भोजन का समय हो जाने के कारण सब लोगों ने व्यालू की। हमने भी केले और रोटी से पेट भरा। इसके बाद यहाँ के ज्योतिष-पुस्तकालय को देखा। वहाँ तारागणों के कितने ही नक़शे हैं। सूर्य्य-ग्रहण के बहुत बड़े बड़े फ़ोटोग्राफ़ हैं। अनेक प्रकार के फ़ोटोग्राफ़ यहाँ देखने में आये।

अग्निबोट ने सीटी दी और हम लोगों ने समझा कि वापस जाने का समय हो गया। सब लोग समय पर अग्नि-बोट में आ गये। ठीक सन्ध्या हो जाने पर हम लोग रेल के स्टेशन पर पहुंचे। शिकागो की गाड़ी खुली और दस बजे रात को हम लोग शिकागो पहुँच गये। स्टेशन पर विद्या-

र्थियों ने फिर "शिकागो-गो" की ध्वनि की। मार्कस और मैं विश्वविद्यालय की ओर चले।

मार्कस ने मेरा हाथ अपने हाथ में दबा कर कहा—"क्यों सैर का आनन्द आया?"

"आनन्द तो आया, मगर एक कसर रह गई।"

"वह क्या?"

"उस बड़ी दूरबीन से सूर्य्य के धब्बे न देख सके। बदली ने काम ख़राब कर दिया।"

"खैर, फिर कभी सही। झील जनवा दूर तो है ही नहीं।"

"फिर, क्या रोज़ रोज़ आना थोड़े ही होगा।"

"यह क्यों? दो ही डालर खर्च हुए हैं न। आधा डालर भोजन का समझ लो।"

"हर वक्त थोड़े ही प्रोफेसर इस प्रकार बतलाने को तैयार होगा।"

"हाँ, गरमियों में एक दिन फिर बहुतसे विद्यार्थी आवेंगे। हर तीसरे महीने एक बार प्रोफेसर मोलटन अपने विद्यार्थियों को वहां भेजते हैं।"

"अच्छा, देखो यदि मैं गरमियों में शिकागो में रहा तो अवश्य ही एक दफे फिर आऊंगा।"

"मैं तो इस बार गरमियों में बाहर स्टीरियास्कोप के चित्र बेचने मिनेसोटा जाऊंगा।"

"सचमुच?"

"जरूर।"

"तीन महीने में कितना कमाने की आशा रखते हो ?"

"कह नहीं सकता। कम से कम सात आठ सौ रुपये से कम क्या कमाऊंगा।

"आप अमरीकन लोग रुपया कमाने में बड़े चतुर हैं।"

"यह पहली बात है जो हमारे माँ बाप लड़के लड़कियों को सिखाते हैं। अमरीकन कहीं चला जाय, भूखा नहीं मरेगा। कोई न कोई काम कर ही लेगा।"

"हमारे देश में तेली का बेटा तेली और बाबू का बेटा बाबू बनने की कोशिश करता है।"

"तभी वहां के लोग भूखों मरते हैं। यहां शिकागो के एक करोड़पति का लड़का भी एक कारखाने में काम करता है और १५० रुपये महीना कमाता है। सिर्फ़ इसलिये कि बाप के रुपये के ऊपर अवलम्ब करना ठीक नहीं मुमकिन है बाप कंगाल हो जाय या और आपत्ति आ जाय।"

"इसमें शक नहीं। मैं इन बातों का मूल्य अब अच्छी तरह समझा हूं। हमारे देश में दस दस बीस बीस बरस हजारों रुपये ख़र्च करके हमलोग स्कूल और कालिजों में पढ़ते और परीक्षा पास करते हैं, और बाद में जगह जगह जूतियाँ चटख़ानी पड़ती हैं।"

"यहाँ हमारे ही विश्वविद्यालय में आप लड़कों को देखें। उनके हाथ देखने से साफ़ मालूम हो जायगा कि इन लोगों ने मेहनत मज़दूरी की है। क्यों ? इसलिए कि हर अमरीकन लड़के का सिद्धान्त है—"To lead an independent life"—(स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना)। यदि कोई और

काम न मिले, तो मजदूरी ही करके ६ रुपये रोज कमा लेगा।"

"एक हमारा देश है जहाँ मजदूरी करने वाले नीच जाति में गिने जाते हैं, और उनके साथ उठना बैठना, मिलना जुलना लोग बुरा समझते हैं।"

"आप लोगों की नस नस में "Aristocracy" (महा-पुरुषता) भरी है।"

मैं चुप हो गया। हमारी नस नस में Aristocracy (महा-पुरुषता) भरी है, क्या यह सच नहीं है? सच है। किस घृणा की दृष्टि से तेली, चमार, लोहार, धोबी, मोची, आदि लोग देखे जाते हैं। किसी के बाप-दादे ने कलाल का काम किया तो उसका सारा वंश निन्दित हो गया और उनकी भिन्न बिरादरी कर दी गई। इसी प्रकार सबके जुदा जुदा पेशे हो गये। नीच ऊँच का भाव सिर से पैर तक हमारे देश में है। अफ़सोस!

बिजली की गाड़ी में बैठकर आधे घण्टे में हम विश्व विद्यालय के पास पहुंच गये। मार्कस "गुड नाइट" कह कर अपने घर चला गया और मैं अपने कमरे में पहुंचा। कपड़े उतार बिछौने पर लेट गया। आध घण्टा उसी Aristocracy (महापुरुषता) वाली बात की उधेड़बुन में लगा रहा। इसके बाद सो गया।

एलास्का-यूकन-पेसेफ़िक प्रदर्शिनी



उद्‌यराम जी, मैं तो कल रात को स्टीमर से सियेटल जाऊँगा।”

“क्यों इतनी जल्दी क्या है?”

“चलेंगे। चलके सियेटल की प्रद-र्शिनी देखेंगे।”

“मुझे भी तो प्रदर्शिनी देखनी है?”

“आप न जाने कब जावें। पहली जून से प्रदर्शिनी खुली है और आप तभी से ‘आज चलते हैं कल चलते हैं’ कह रहे हैं। पूरे तीन महीने तो आप ने इस तरह गुज़ार दिये, बाकी डेढ़ महीना और रह गया है, वह भी इसी प्रकार गुज़ार देंगे। न आपको अपने गोरखधन्धे से फुरसत मिले और न प्रदर्शिनी देखनी नसीब हो।”

मेरी यह बात सुन कर उद्‌यराम जी हंस पड़े और बोले “भाई, बात तो सब सच कहते हो। क्या करें, यह संसार का धन्धा ही ऐसा है। पर यह तो बात निश्चय है कि यदि आपके साथ हमारा जाना न हुआ तो प्रदर्शिनी न देख सकेंगे। अच्छा आप, तीन दिन और ठहरें। पांच सेप्टेम्बर की शाम को यहां से चलेंगे और छः सेप्टेम्बर को सियेटल पहुँचेंगे। छः को प्रदर्शिनी में बड़ा भारी मेला भी है; कहते हैं सियेटल डे (Seattle Day) है और बहुत लोग उस दिन आवेंगे।”

"अच्छा तीन दिन और ठहर जाता हूं; पर इसके बाद न ठहरूँगा।"

"बस इसको पक्का समझिये। पांच को हम लोग सियेटल चलेंगे।"

बेचारे उदयराम काम काज की भीड़ में पांच को भी तैयार न हो सके। मैंने पांच की सुबह को अपने मित्र बिहारीलाल को तार द्वारा सूचना दे दी कि मैं रात के स्टीमर से सियेटल आता हूं।

उदयराम जी लुधियाना (पञ्जाब) के रहने वाले हैं। जन्म के आप ब्राह्मण हैं। केनाडा आये हुये आप को चार वर्ष हो गये। आपका कारोबार बहुत अच्छा चलता है। एक दूकान है, कुछ ठेका है, ज़मीन ख़रीदी हुई है। 'सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति' यह इनका परम सिद्धान्त है। यदि सोचें तो इस ज़माने में है भी ठीक। ईश्वर की दया से आपने अच्छा रुपया पैदा किया है, और दिन प्रति दिन कर रहे हैं। सब काम अकेले ही देखना पड़ता है, इस लिये फ़ुरसत कम रहती है।

अपने एक दूसरे मित्र मुन्सीरामजी को साथ ले मैंने सियेटल की तैयारी की। मुन्शीराम भी पञ्जाबी हैं और इधर वेंकोवर में ही मेरी इन से भेंट हुई है। आदमी साधु और शान्त-स्वभाव होने से सर्व-प्रिय हैं। आप से मेरा घना सम्बन्ध हो गया है।

रात के साढ़े नौ बजे के क़रीब हम लोग केनेडियन पेसेफ़िक कम्पनी के Wharf पर पहुँचे। यूनायटेड स्टेट्ज़ अमरीका का परदेशगमन सम्बन्धीय जो दफ़्तर वेंकोवर में है वहां से हमने ज़रूरी काग़ज़ ले लिये थे, इस लिये स्टीमर में

चढ़ने में कोई दिक़त न हुई। पन्द्रह रुपये जाने आने के फ़ी आदमी लगे। क्योंकि हम लोगों ने वापिस टिकट लेने में किफ़ायत देखी थी।

स्टीमर में जहाँ हम बैठे थे वहाँ एक केनेडियन अपने एक छोटे लड़के के साथ बैठा था। बात चीत करने से मालूम हुआ कि वह भी प्रदर्शिनी देखने सियेटल ही जा रहा है। वह लड़का कोई आठ वर्ष का होगा, मगर था बड़ा समझदार। प्रदर्शिनी की बाबत तरह तरह के सवाल अपने बाप से पूछता था।

लड़का—"पिता, एलास्का-यूकन-पेसेफिक प्रदर्शिनी इतना बड़ा नाम क्यों इस मेले का रक्खा गया है?"

बाप—"बेटा! तुम अब सो जाओ। कल हम तुमको यह सब बतलावेंगे।"

लड़का—"मुझे तो अभी नींद नहीं आई। जब तक नींद नहीं आती तब तक आप मुझे ज़रूर बतलावें।"

बाप—"अच्छा सुनो। वंकोवर के उत्तर पश्चिमी ओर एलास्का एक शीत-प्रधान देश है।"

लड़का—(बात काट कर) "एलास्का तो मैं जानता हूं—वहीं जहां बहुत सी सोने की खानें हैं।"

बाप—"हाँ वही, तुम अब जो कुछ मैं कहता हूँ ध्यान से सुनते जाओ। एलास्का, युनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेंट के अधीन है। वहाँ आबादी बहुत थोड़ी है; मुल्क बहुत बड़ा है; अच्छा मुल्क है। बहुत सी खानें हैं। अमरीकन गवर्नमेंट चाहती है कि वहाँ जा कर लोग बसें। जिन्होंने वहां अपना रुपया व्यापार व जमीनों में लगा रक्खा है वह भी चाहते हैं कि लोग आकर बसें। मगर लोग तभी आवें जब उनको

एलास्का की बाबत मालूम हो ; कोई उसके गुण-गान करे। यह प्रदर्शिनी एलास्का की चर्चा सभ्य दुनिया में करने के लिये खोली गई है। एलास्का की चीज़ें वहाँ रक्खी गई हैं ताकि लोग देखें और वाक़फ़ियत हासिल करें इसी लिये इस मेले के पहले एलास्का का नाम आया है।"

लड़का—"एलास्का हो गया, अब यूकन के विषय में बतलाइये।

बाप—"बृटिश कोलम्बिया के दक्षिण में यूकन एक प्रान्त है। यह भी अमरीका वालों के अधीन है और कोई २००,००० वर्गमील क्षेत्र-फल में है। योरप तथा दक्षिणी अमरीका के लोग इस विषय में बहुत कम जानते हैं। एलास्का की तरह वहां भी आबादी बहुत कम है, पर सोने की खानें बहुत हैं। इस यूकन प्रान्त का विज्ञापन सभ्य दुनियां में देना यह इस प्रदर्शिनी के उद्देश्यों में से है।"

वह लड़का ऊंघने लग गया था, इस लिये उसके पिता ने उसको सुला दिया ; मगर हम लोग चूँकि उसकी बात ध्यान से सुन रहे थे इस लिए वह हम लोगों को संबोधन कर कहने लगा—

"आप लोगों को यह बातचीत दिलचस्प मालूम हुई ?"

मैं—"जरूर। आप बतलाइये कि यह पेसेफ़िक का नाम इस प्रदर्शिनी के साथ क्यों जोड़ा गया है ?"

केनेडियन—"पेसेफ़िक, जोड़ने से बहुत कुछ मतलब है। पहले तो यह कि पेसेफ़िक महासागर सम्बन्धी जो देश व द्वीप हैं उनकी आपस में तिजारत बढ़ाने का उपाय करना ; दूसरे पेसेफ़िक तटस्थ जो अमरीकन रियासतें हैं जैसे—वाशिंगटन, केलेफ़ोर्नियां, आरेगन—उनकी उपज और धन

धान्य का ब्योरा पूर्वीय अमरीकन रियासतों को बतलाना ताकि वहाँ से भद्र लोग इधर आकर बसें; तीसरे पेसेफ़िक महासागर संबन्धीय जो जातियाँ हैं उनका आपस में मेल मिलाप बढ़ाना, इस प्रकार लम्बी चौड़ी व्याख्या इस पेसेफ़िक शब्द की है।"

मैं—"तो क्या यह सब काम इस प्रदर्शिनी से निकल आवेंगे?"

केनेडियन—"ज़रूर। प्रदर्शिनी में दूर दूर से लोग आवेंगे। वे आकर खुद सब चीज़ें इन प्रान्तों की अपनी आंखों से देखेंगे। जाँच पड़ताल करेंगे। एक दूसरे से मिलकर अपनी तसल्ली करेंगे। आप जानते हैं कि बहुत सी ग़लतियाँ इस प्रकार दूर हो जावेंगी। इस प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त वालों से मिल कर बहुत सी बातों का यहीं फ़ैसला कर लेंगे। चीन जापान से लोग आवेंगे। अमरीका वालों से थोड़ी बहुत उनकी अनबन है वह दूर हो जावेगी, क्योंकि प्रदर्शिनी द्वारा वे समझ जावेंगे कि एक को दूसरे की मित्रता से कितना लाभ है। कितनी तिजारत आपस के प्रेम द्वारा बढ़ सकती है। यही आप वेंकोवर में ही देखिये अभी तीन ही महीने से किस क़दर ज़मीन की क़ीमत बढ़ने लगी है। क्यों? कारण यह है कि प्रदर्शिनी से इधर लोग घूमने आते हैं, ज़मीनें देखते हैं; और अच्छी समझ कर ख़रीदते भी हैं। इस प्रदर्शिनी से अमरीका वालों को तो फ़ायदा होगा ही, केनाडा को बड़ा भारी लाभ पहुँचेगा। अमरीका के बराबर का मुल्क केनाडा है। अमरीका में आठ करोड़ की आबादी है। केनाडा में अभी साठ लाख भी नहीं। हम लोग चाहते हैं कि केनाडा की आबादी बढ़े और लोग यहाँ आकर बसें। इस प्रदर्शिनी

से बहुत लोग इधर भी आवेंगे । केनाडा की आबादी बढ़ेगी ! जंगल कट कर शहर बसेंगे, मुल्क की तिजारत बढ़ेगी और हम लोगों के वारे न्यारे होंगे ।"

मुन्शीराम ने मुझसे कहा कि एक बात मैं भी पूछ लूँ । मैंने कहा, पूछिये । उस केनेडियन से उन्होंने कहा—

"क्यों जनाब, आप लोग इतनी जल्दी इस मुल्क को बसाने की फ़िक्र में क्यों हैं ? इतनी जल्दी क्या पड़ी है जो बाहर से लोगों को बुला बुला कर देश आबाद करने की फ़िक्र हो रही है ? "

यह प्रश्न सुन कर केनेडियन मुस्कराया और बोला—

"आप लोग हिन्दुस्तान से आते हैं न, इसी लिये ऐसा सवाल है । वह भूका मुल्क है । आबादी ज़ियादा है ; मुल्क छोटा है, तिस पर खेती के साइन्टिफ़िक तरीक़े लोग नहीं जानते । इल्म हुनर की तरक्क़ी उस देश में नहीं है । पूरे वैज्ञानिक तरीक़ों से लोग वाक़िफ़ नहीं हैं । इसके विपरीत यहां खाने को बहुत है । बहुत ही उपजाऊ भूमि है, आबादी थोड़ी है । आप सोचें कि देश की सम्पत्ति बिना मेहनत के नहीं बढ़ सकती । करोड़ों एकड़ ज़मीन जो ख़ाली पड़ी है वह कुछ भी देश को फ़ायदा नहीं पहुँचाती । यदि लोग बसेंगे तो उनके द्वारा आमदनी की सूरतें निकलेंगी । हम लोग बड़े बड़े कारख़ाने खोल सकेंगे ; हमारी चीज़ें सब दुनियां में बिकने जावेंगी ; रुपया आवेगा ; देश मालदार होगा ; यह बड़ी जाति हो जावेगी । आज यदि हमारा सम्बन्ध इंग्लिस्तान से टूट जावे तो यूनाइटेड स्टेट्ज़ केनेडा को अपने साथ मिला ले । हम लोग अमरीकनों का मुक़ाबिला नहीं कर सकते । एक तो

हमारे पास धनाभाव से जहाज़ (जंगी) नहीं, दूसरे हमारी आबादी थोड़ी है, इतने सिपाही कहां से आवेंगे। इसलिये हम लोगों को अपने देश की आबादी बढ़ाकर धनी और सम्पन्न होना चाहिए ताकि संसार में हमारी भी एक महती जाति बसे और दूसरी जातियों का हमें डर न रहे।

इस वार्तालाप से हम लोगों को बहुत सी बातें मालूम हुईं। दिल तो चाहता था कि कुछ और भी पूछ पाछ करें, मगर रात अधिक हो गई थी, उस भले आदमी को सोना था; इसलिये हमने उसको धन्यवाद देकर सोने की तैयारी की, और अपने शयनागार में जाकर सो रहे।

अग्निबोट बहुत अठखेलियां लेता हुआ जारहा था। प्रातः-काल का शीतल स्वच्छ पवन शरीर को पुलकित करता था। भगवान् सूर्य्यदेव की स्वर्णमयी किरणें डेक पर खड़े यात्रियों को सियेटल नगर की ओर आह्वान करती थीं। पेसेफ़िक महा-सागर भी अग्निबोट के साथ खेलता हुआ मन्द मन्द मुस-कराता था और उस मुसकराहट में रंग बिरंगी इन्द्रधनुष की आभा यात्रियों का मन मोहे लेती थी।

हम लोग भी इस सुन्दर दृश्य का आनन्द लेते तथा प्राणा-यामीय श्वासों से नीरोग पवन सेवन करते करते सियेटल पहुंच गये। डेक के ऊपर बहुत से लोग अपने इष्ट मित्रों की इन्तिज़ारी में खड़े अग्निबोट की ओर प्रेम भरी दृष्टि से ताक रहे थे। हमारे मित्र बिहारीलाल भी खड़े थे। सीढ़ी लगते ही लोग नीचे उतरने शुरू हुए। हमलोग भी उतर आये। बिहारी-लाल हमें देखते ही दौड़ कर आया और हँसता हुआ बोला—

"आहा कृष्ण! आप आ गये! मैं घंटे भर से खड़ा इन्तिज़ार करता था।"

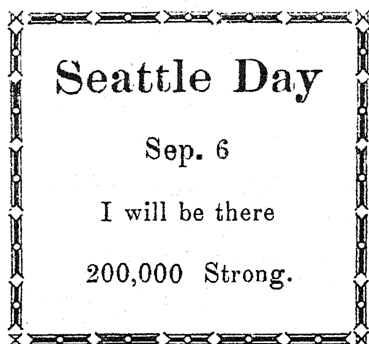
मैं—(मुसकराकर) "वही न हिन्दुस्तानियों वाली बातें। भला घण्टा भर पहिले हैरान होने की क्या ज़रूरत थी। स्टीमर का समय तुमको मालूम नहीं था तो टेलीफ़ोन करके पूछ लेते, और ठीक समय पर आते।"

मुन्शी०—(हँसकर) "बिहारीलाल का प्रेम कैसे जाहिर होता।"

बिहारी०—"हां बेशक, मेरा प्रेम कैसे जाहिर होता।"

मैं—"अच्छा चलो प्रेमी अब प्रदर्शिनी दिखलाओ।"

हँसी ठट्ठा करते हम तीनों जने थर्ड एवन्यू पर आये। यहीं से प्रदर्शिनी को गाड़ी मिलती थी। रास्ते में जगह जगह पर हमने ये इश्तिहार मोटे अक्षरों में लिखे देखे।



मैंने बिहारीलाल से पूछा कि इससे क्या मतलब है। बिहारीलाल ने बतलाना शुरू किया—

"जब से प्रदर्शिनी खुली है तब से तरह तरह के दिन प्रदर्शिनी वाले रखते हैं। आप जानते हैं कि पहिली जून से सोलह अक्तोबर तक साढ़े चार महीने प्रदर्शिनी को रहना है। साढ़े चार महीने कैसे गुज़रें? उनको गुज़ारने का ऐसा ढंग होना

चाहिये कि सब प्रकार के लोग आकर्षित हों और उनका मन न ऊबे। इसीलिये ऐसे ऐसे दिन नियत किये गये हैं जैसे—(Grocer's Day) बनियों का दिन। उस रोज़ सारे शहर के बनिये आवेंगे। (Japanese Day) जापानियों का दिन; उस रोज़ पेसीफ़िक के किनारे जो रियासतें हैं, वहाँ बसने वाले सभी जापानी आवेंगे। (Farmer's Day) किसानों का दिन; सारे किसान उस रोज़ इकट्ठे होंगे और प्रदर्शिनी का आनन्द लेंगे। आज सियेटल वालों का दिन है। यह विज्ञापन प्रत्येक सियेटल निवासी को कहता है कि मेले में आज दो लाख से कम आदमी किसी सूरत में भी न हों। सभी को जाना चाहिये; इसी में सियेटल की नाक रहती है। इसीलिये देखो, पांच पांच मिनट बाद बिजली की गाड़ियाँ खचाखच भरी हुई प्रदर्शिनी को भाग रही हैं।"

मैं—(खिले चेहरे से) "शाबाश! अब तो तुम होशियार होते जाते हो बिहारीलाल!"

बिहारी०—(हँसकर) "यूनीवर्सिटी में पढ़ कर भी होशियार न हूँगा तो कैसे हूँगा।"

मुन्शी०—(बिहारीलाल की पीठ ठोक कर) "खूब! पर सावधान रहना, अभी बहुत से सवाल जवाब होने हैं, प्रदर्शिनी आ लेने दो।"

बिहारी०—"मैं तैयार हूं।"

इस प्रकार बातें करते हुए गाड़ी में चढ़ गये।

'प्रदर्शिनी, प्रदर्शिनी' आख़िर हम प्रदर्शिनी के सामने पहुंच गये। दो बड़े बड़े स्तूपों के दरम्यान रंग-बिरंगी झण्डियां सबसे पहले देखने में आईं। ये अमरीका, जापान, इङ्गलिस्तान

आदि स्वतन्त्र देशों के कौमी झण्डे थे। उन झण्डों के नीचे मोटे अक्षरों में (Seattle Day) 'सियेटल का दिन' लहरा रहा था।

अर्द्धचन्द्राकार तीन दरवाजों द्वारा स्त्री-पुरुष और बाल-बच्चे अन्दर जा रहे थे। हम लोगों ने भी पहले दरवाज़ों के बाहर जो तीन कोठियाँ थीं, वहां से पचास पचास सेण्ट* का एक सिक्का ले लिया और अन्दर घुस गये।

घुसते ही मेरी दृष्टि एक विशाल मूर्ति पर पड़ी। यह जार्ज वाशिंगटन का दीर्घकाय (Bronze statue) बुत था। (Father of the Country) 'देश का पिता' यह शब्द मेरे कान में पड़े, जो एक माता अपने बच्चे को यह मूर्ति दिखलाकर कह रही थी। (Father of the Country) यह शब्द मैंने बार बार दोहराये। पूज्यभरी दृष्टि से मैं उस महान आत्मा की ओर देखता रहा। "सचमुच इसी वीर की हिम्मत से अमरीका स्वतन्त्र हो गया। इसी देश-भक्त ने अपना सर्वस्व अपने देश के अर्पण कर इसको गुलामी से आजाद किया था। कैसे कैसे कष्ट इसने सहन किये थे। देश के लिये किस किस की गालियां इसने नहीं सहीं। किस हिम्मत और धैर्य्य से इसने अपने देश भाइयों को अति दुःख के समय में ढाढ़स दिया था और उनको निराश होने से बचाया था। निस्सन्देह, ऐ जार्ज वाशिंगटन! तुम इस देश के पिता हो और अमरीकन बच्चों के आदर्श हो। नहीं, नहीं, सभी दुःखित देशों के बच्चों के

---

* हर एक दर्शक अपना अपना सिक्का लेकर द्वार पर जाता और वहां शीशे के बक्स में अपना सिक्का फेंक देता था। तब द्वारपाल चक्र घुमा उसे अन्दर जाने की आज्ञा करता था। लेखक

आदर्श हो। मैं भी निष्काम सेवा की शिक्षा आप से ग्रहण कर अपनी जननी का दुख दूर करूँ" यह कह मैंने मन ही मन में उस वीर को नमस्कार किया और आगे बढ़ा।

सब से पहले हम लोग पेस्ट्रीट* की ओर गये क्योंकि बहुत बड़े हुल्लड़ में इमारतों के देखने का मज़ा नहीं आता। वहां सब चीज़ें आराम से देखने वाली होती हैं। दर्शक लोग पहले पहल इमारतों पर ही टूटेंगे, इसलिए हम लोग पेस्ट्रीट की ओर चले।

कैसा मनोहर दृश्य था? छोटी छोटी क्यारियों में बिजली की रोशनी वाले (bulbs) बड़ी तरतीब से लगाये गये थे। यद्यपि इस समय दिन था, बिजली की रोशनी नहीं थी, पर उनकी सजावट लोभायमान थी। छोटे छोटे वृक्षों में फलों की भांति बिजली के दीपक लटक रहे थे। 'रात को यह दीप क्या ही ग़ज़ब ढायेंगे' यह मैंने मुन्शीराम से कहा। मुन्शीराम बेचारे हैरान थे। उन्होंने कभी कोई प्रदर्शिनी नहीं देखी थी।

ख़ैर, हम लोग पेस्ट्रीट में पहुंचे। लोगों का धन हरने को यहां भांति भांति के तमाशे रचे हुए थे। एक बहुत बड़ा चक्र, जिसमें पंगूड़े लटकते थे, दर्शकों को बहुत ऊंचा ले जाता और प्रदर्शिनी का नज़ारा दिखलाता था। इसके दस आने देने पड़ते थे। जापानियों और चीनियों का बाजार देखने में आया। यहां चीन जापान से भांति भांति की कारीगरी की चीज़ें बिक्री के लिए मौजूद थीं। अन्दर ही अपनी अपनी रंगशालायें भी बनाई हुई थीं, जहां खेल होते थे।

*Pay Street पेस्ट्रीट उस गली का नाम था जहाँ हर तरह के खेल तमाशे थे। लेखक

आदि स्वतन्त्र देशों के कौमी झण्डे थे। उन झण्डों के नीचे मोटे अक्षरों में (Seattle Day) 'सियेटल का दिन' लहरा रहा था।

अर्द्धचन्द्राकार तीन दरवाजों द्वारा स्त्री-पुरुष और बाल-बच्चे अन्दर जा रहे थे। हम लोगों ने भी पहले दरवाज़ों के बाहर जो तीन कोठियाँ थीं, वहां से पचास पचास सेण्ट * का एक सिक्का ले लिया और अन्दर घुस गये।

घुसते ही मेरी दृष्टि एक विशाल मूर्ति पर पड़ी। यह जार्ज वाशिंगटन का दीर्घकाय (Bronze statue) बुत था। (Father of the Country) 'देश का पिता' यह शब्द मेरे कान में पड़े, जो एक माता अपने बच्चे को यह मूर्ति दिखला-कर कह रही थी। (Father of the Country) यह शब्द मैंने बार बार दोहराये। पूज्यभरी दृष्टि से मैं उस महान आत्मा की ओर देखता रहा। "सचमुच इसी वीर की हिम्मत से अमरीका स्वतन्त्र हो गया। इसी देश-भक्त ने अपना सर्वस्व अपने देश के अर्पण कर इसको गुलामी से आजाद किया था। कैसे कैसे कष्ट इसने सहन किये थे। देश के लिये किस किस की गालियां इसने नहीं सहीं। किस हिम्मत और धैर्य्य से इसने अपने देश भाइयों को अति दुःख के समय में ढाढ़स दिया था और उनको निराश होने से बचाया था। निस्सन्देह, ऐ जार्ज वाशिंगटन ! तुम इस देश के पिता हो और अमरीकन बच्चों के आदर्श हो। नहीं, नहीं, सभी दुःखित देशों के बच्चों के

---

* हर एक दर्शक अपना अपना सिक्का लेकर द्वार पर जाता और वहां शीशे के बक्स में अपना सिक्का फेंक देता था। तब द्वारपाल चक्र घुमा उसे अन्दर जाने की आज्ञा करता था। लेखक

आदर्श हो। मैं भी निष्काम सेवा की शिक्षा आप से ग्रहण कर अपनी जननी का दुख दूर करूँ" यह कह मैंने मन ही मन में उस वीर को नमस्कार किया और आगे बढ़ा।

सब से पहले हम लोग पेस्ट्रीट* की ओर गये क्योंकि बहुत बड़े हुल्लड़ में इमारतों के देखने का मज़ा नहीं आता। वहां सब चीज़ें आराम से देखने वाली होती हैं। दर्शक लोग पहले पहल इमारतों पर ही टूटेंगे, इसलिए हम लोग पेस्ट्रीट की ओर चले।

कैसा मनोहर दृश्य था? छोटी छोटी क्यारियों में बिजली की रोशनी वाले (bulbs) बड़ी तरतीब से लगाये गये थे। यद्यपि इस समय दिन था, बिजली की रोशनी नहीं थी, पर उनकी सजावट लोभायमान थी। छोटे छोटे वृक्षों में फलों की भांति बिजली के दीपक लटक रहे थे। 'रात को यह दीप क्या ही ग़ज़ब ढायेंगे' यह मैंने मुन्शीराम से कहा। मुन्शीराम बेचारे हैरान थे। उन्होंने कभी कोई प्रदर्शिनी नहीं देखी थी।

खैर, हम लोग पेस्ट्रीट में पहुंचे। लोगों का धन हरने को यहां भांति भांति के तमाशे रचे हुए थे। एक बहुत बड़ा चक्र, जिसमें पंगूडे लटकते थे, दर्शकों को बहुत ऊंचा ले जाता और प्रदर्शिनी का नज़ारा दिखलाता था। इसके दस आने देने पड़ते थे। जापानियों और चीनियों का बाजार देखने में आया। यहां चीन जापान से भांति भांति की कारीगरी की चीज़ें विक्री के लिए मौजूद थीं। अन्दर ही अपनी अपनी रंगशालायें भी बनाई हुई थीं, जहां खेल होते थे।

---

*Pay Street पेस्ट्रीट उस गली का नाम था जहाँ हर तरह के खेल तमाशे थे। लेखक

अमरीकन लोगों ने धन कमाने के हेतु तरह तरह के स्वांग रचे हुए थे। एक जगह (Scenic Alaska) एलास्का के दृश्य नामी इमारत के अन्दर पांच चार घेरेदार नहरें थीं, जिनका पानी एक चक्र के ज़ोर से बह रहा था। एक छोटी सी नौका में पांच चार दर्शक बैठ जाते थे। किश्ती उन घेरों में से गुज़रती थी। नहर के इर्द गिर्द दीवारों पर मिट्टी से एलास्का के हिम-पर्वती दृश्य बनाये हुए थे। बस इसी के पांच आने ले लेते थे। एक जगह रूस, एलास्का, न्यूज़ीलेण्ड आदि के असकीमो इकट्ठे किये हुए थे; उनकी झोपड़ियां उनके रहन-सहन का ढंग दिखलाती थीं। दूसरी जगह फिलिपाइन द्वीप से इग्रोटो लाकर रक्खे हुए थे। इग्रोटो उन द्वीपों की जङ्गली जाति का नाम है जो नंगे रहते हैं और कुत्ते का मांस खाते हैं। इस प्रकार यह सब तमाशे के तौर पर वहां थे। निस्सन्देह वहां के लोगों को यह बहुत अजीब मालूम होते थे, पर हम लोगों को इन सब जंगली जातियों का नाचना कूदना अच्छा न लगा।

पेस्ट्रीट में यों तो बहुत सी जगह लोग अपना पैसा ख़र्च कर हंसते खेलते थे, पर हम लोगों ने डेढ़ रुपया देकर एक जगह से ही सारा आनन्द लूट लिया। वह मानीटर और मेरीमेक का जल-युद्ध था। इस जल-युद्ध का ब्यौरा इस प्रकार है।

१८६० में जब यूनाइटेड स्टेट्ज़ की उत्तरीय और दक्षिणीय रियासतों में हब्शियों की गुलामी के झगड़े के कारण घोर संग्राम प्रारम्भ हुआ तब उत्तरीय रियासतों ने दक्षिणीय रियासतों का जल-मार्ग बन्द कर दिया ताकि उनको योरुप से

कोई सहायता न पहुंच सके। उस युद्ध में दक्षिणीय रियासतों की गवर्नमेंट की तरफ़ से मेरीमेक नाम का एक लोहे का जंगी जहाज़ बनाया गया था। उस जहाज़ ने एक ही दिन के युद्ध में शत्रुओं के अच्छे २ जहाज नष्ट कर दिये। करने ही थे; क्योंकि मेरीमेक अपने ढंग का लोहे का पहिला जहाज़ था। अब तक लकड़ियों के ही जहाज़ों से युद्ध होता था। इस मेरीमेक के बनने की खबर उत्तर वालों को भी मिल गई थी। उन्होंने मानीटर बनाना आरम्भ कर दिया था, पर वह ठीक समय पर न पहुंच सका। दूसरे दिन जब मेरीमेक फिर युद्ध करने आया तब अपने मुक़ाबिले में एक छोटे से जङ्गी जहाज को डटा देखा। यह मानीटर था। अब ख़ूब घमासान युद्ध हुआ जिसमें छोटे मानीटर ने अपने शत्रु के ख़ूब दांत खट्टे किये।

बस, इसी युद्ध की नक़ल दिखलाई गई थी। नकल क्यों थी, असल थी। वैसा ही समुद्र, उसमें वैसे ही चलते हुए जहाज़ फिर वैसे वैसे ही तोपों का चलना, जहाज़ों में आग लगनी, उनका डूब जाना, मेरीमेक का पहले दिन के युद्ध से विजयी लौटना। रात को वैसे ही अन्धेरी. दिन चढ़ना, मानी-टर का आना, उसकी मेरीमेक से मुटभेड़, दनादन तोपों का छूटना, मानीटर की विजय! यह सब इसी तरह दिखलाया गया। न जाने कैसे किया? यह मेरी समझ में नहीं आया। चलती फिरती तस्वीरों (Moving Pictures) के ढंग पर ही इसकी रचना थी।

हम तीनों जने इस जल-युद्ध को देख अवाक रह गये। यह दृश्य सारी उम्र नहीं भूलेगा। डेढ़ रुपया देकर दिल को तसल्ली हो गई और जाना कि हमने आशा से बहुत अधिक पाया।

सात सेप्टेम्बर को प्रातःकाल के कार्य्यों से निश्चित हो खा-पी कर दस बजे के करीब मैं और मुन्शीराम दोनों प्रदर्शिनी देखने चले। बिहारीलाल किसी दूसरे काम के सबब हमारे साथ न आ सके थे और हम लोगों को उनकी कुछ ऐसी आवश्यकता भी न थी।

आज सब बड़ी बड़ी इमारतों के देखने का विचार था। निश्चय किया कि आरम्भ से एक एक इमारत देखें, और आज का सारा दिन तथा दस बजे रात तक प्रदर्शिनी का मज़ा लूटें। जब चित्त भर जावे तब बाहर निकलें।

मुख्य द्वार पर घुसते ही दाहिनी ओर को जो रास्ता जाता था वह तो 'पेस्ट्रीट' की गली थी। जरा आगे दाहिने और बायें दो विशाल भवन थे--एक आडिटोरियम दूसरा फाइन आर्टज़ बिल्डिंग। इन दो भवनों के बीच 'युगेतप्लाज़ा' नाम का एक रम्य स्थान था जहाँ हरी हरी घास की दूब आँखों को आनन्दित करती थी। इसी के बीच में महात्मा वाशिंगटन का दीर्घकाय बुत खड़ा था। हम लोग पहले 'फ़ाइन आर्टज़' भवन के अन्दर गये।

यह भवन उन सात भवनों में से एक है जो प्रदर्शिनी के बाद वाशिंगटन-स्टेट यूनीवर्सिटी को मिल जावेगा और जहाँ यूनीवर्सिटी अपना केमिस्टरी हाल सजावेगी। इस इमारत पर स्टेट गवर्नमेंट का छः लाख रुपया ख़र्च हुआ है।

इस भवन के अन्दर फ्रांस, इटली, जरमनी, इङ्गलैंड आदि देशों के निपुण चित्रकारों के तैल-चित्र रक्खे हुए थे। यह वह स्थान था जहाँ महीनों ख़र्च करने से आनन्द मिल सकता था। हम लोग एक हो घंटे में क्या देख सकते थे। एक से एक

बढ़कर चित्र--पर्वतों और बनों के नज़ारे, नदी और समुद्रों के किनारे, भेड़ों और गायों के चरवाहे—सब जीते जागते दर्शकों का मन हरते थे। कहीं सुन्दर रमणियाँ अपनी अलौकिक प्राकृतिक छटा में चित्रकार के गुणों को उज्वल करती थीं; कहीं शूर-वीर रण भट-वीरों को वीर-रस पान कराते थे; कहीं प्रीतम अपनी प्रियादत्त प्रेम-रस चख रहे थे। सभी प्रकार के भाव, सभी प्रकार के जीवन वहां विद्यमान थे। जो जिसका अधिक प्यारा था, जिसको जो दृश्य अधिक भाता था वह उसी के सामने टकटकी लगाये बुत बना हुआ खड़ा था और दिल में कहता था-"काश कि यह चित्र मुझको मिल जाय।"

फाइन आर्टज़ भवन से निकल हम लोग 'आडिटोरियम' में गये। यह भवन भी पक्का ईंटों का बनाया गया है और इस पर नौ लाख रुपया लागत आई है। यह भी प्रदर्शिनी के बाद वाशिंगटन यूनीवर्सिटी की मिलकियत हो जावेगी। इसमें ढाई हज़ार मनुष्यों के बैठने का स्थान है। दूसरी पक्की इमारतों की तरह यह भी 'अग्नि-संरक्षक' बनाई गई है।

आडिटोरियम से निकल कर हमने मुख्य फाटक वाली सड़क को फिर पकड़ा। 'युगेट-प्लाज़ा' के आगे उसी सड़क में 'ओलोम्पिक-प्लेस' की क्यारी थी जिसके दाहिनी ओर 'एलास्का भवन' और बाईं ओर 'यूनाइटेड स्टेट्ज़ गवर्नमेंट भवन' थे। गवर्नमेंट भवन की चर्चा दर्शकों में बहुत था इस लिये हम पहले इसी के अन्दर घुसे।

यह भवन गुम्बद की शकल का था जिसमें गेलरी के ढंग की छतें थीं। पहली छत पर दो भाग थे। एक ओर अमरी-

कन लोगों की शिक्षा के लिये गवर्नमेंट ने 'लाइट हौस' का घूमना तथा जल-भाग में शत्रुओं से रक्षा के उपाय दिखाये थे। उधर ही अमरीका के बड़े बड़े विख्यात देश-भक्तों के चित्र लटकते दिखाई दिये। दूसरी ओर सिक्के बनते थे और छपते थे। इधर अमरीका-देश के जङ्गलों की बहुत बड़ी बड़ी तसवीरें थीं और गवर्नमेंट के जङ्गल विभाग की कारगुज़ारी अच्छी तरह दिखलाई गई थी। एक तरफ़ पुराने ढर्रे के जहाज बना कर रक्खे हुये थे और उनका मुक़ाबिला आधुनिक जहाजों से किया गया था।

दूसरी छत पर 'युद्ध-विभाग' का सामान था। १७८५ से लेकर आज तक अमरीकन गवर्नमेंट के इस महकमे में जो कुछ देखने योग्य है वह सब सामग्री यहाँ मौजूद थी। पिछली शताब्दी की तोपें, सिपाहियों की पोशाकें, लड़ाई के जहाज़ यह सब दर्शकों के शिक्षार्थ बना कर रक्खे गये थे और उनके पास पास आधुनिक तरक्क़ी के नमूने पूर्ण रूप से दिखलाये हुये थे। भयङ्कर ड्रेडनाट भी यहाँ देखने में आया, जो जल पर तैर रहा था। यह सब कुछ अमरीकन गवर्नमेंट ने अपनी प्रजा की आँखें खोलने के लिये किया था। छोटे छोटे बच्चे अपनी माताओं से भांति भांति के प्रश्न इन दुर्दमनीय जलयानों को देख कर करते थे, वे भी हंसती हुई अपनी सन्तान को अपनी जाति का गौरव विदित कराती थीं। पर मेरे मुँह से यही निकलता था—"इन रुद्ररूप मशीनों का अन्त कहाँ होगा ?"

तीसरी छत पर अमरीकन गवर्नमेंट का पोस्ट-आफ़िस-विभाग, न्यायालय-सम्बन्धी सामान तथा शिक्षा-विभाग की

सामग्री थी। इनके अतिरिक्त मन को लुभानेवाला एक और विभाग था उसको 'मत्स्य विभाग' कहना अनुचित न होगा। यहां हर प्रकार की मछलियां देखने में आईं। दीवार से लगे हुये स्वच्छ जलों के छोटे छोटे कुण्ड थे जिन पर मोटा शीशा लगा हुआ था। मशीनों द्वारा कुण्डों में पानी आता जाता था। इन्हीं कुण्डों में रंग-बिरंगी मछलियां तैर रही थीं। ऐसी कारीगरी से यह कुण्ड बनाये गये थे कि ठीक समुद्र या दरिया की तह का बोध हो। ऊपर से रोशनी पड़ती थी और दर्शक लोग मछलियों का एक एक अंग अच्छी तरह देख सकते थे। मैं तो यह सब देख कर बड़ा ही खुश हुआ। जो जन्तु हम किसी सूरत से भी अच्छी तरह न देख सकते थे वे आज आसानी से भले प्रकार देखने में आये और फिर इस उत्तम तरीक़े में।

यहां से निकल हम लोग 'पलास्का भवन' में पहुंचे। पलास्का की स्वर्ण की खाने प्रसिद्ध हैं। वहाँ की बड़ी बड़ी सुवर्ण की ईंटें देखीं; खानों से निकले हुए अन्य धातु-मिश्रित सोने के बड़े बड़े टुकड़े रक्खे हुए दिखाई दिये। पास ही एक मशीन से मिश्रित सोने को अलग किया जाता था। दूसरी तरफ़ पलास्का के जानवरों की क़ीमती पोस्तीनें लटक रही थीं जिनको पहिनना बीसवीं शताब्दी के सभ्य मनुष्य गौरव का कारण समझते हैं। एक ओर 'पलास्का दृश्य' नाम की कोठरी थी। हम लोग उसके अन्दर गये।

देखते क्या हैं कि चांद चढ़ा हुआ है। हिमावृत पर्वत-श्रेणी उस चाँदनी में अवर्णनीय शोभा दे रही है। सामने घाटियाँ हैं, जङ्गल है। अरे यह क्या! धीरे धीरे चन्द्र अस्ताचल पर्वत पर पहुँच रहे हैं। यह लो, वे अस्त हो गये! पौ फटने लगी।

धीरे धीरे प्रकाश होता जाता है और घाटियों में श्वेत हिम चमकने लगी है। 'क्या यह जादू है या तिलिस्म?' मैं यह विचार ही रहा था कि एक द्वारपाल ने हम लोगों को दूसरे द्वार से बाहर कर दिया।

घड़ी में देखा कि तीन बज गये हैं। 'मुन्शीराम, आओ भाई ज़रा सुस्ता लें' यह कह कर मैं मुन्शीराम के साथ एक बेञ्च पर बैठ गया। जहाँ हम बैठे थे हमारे पीछे 'कारन्थियन स्तूप' ठीक गवर्नमेंट भवन सामने विराजमान था। इसी सीध में 'Cascades जलपतन' और 'Arctic Circle उत्तरीय वृत्त' थे। तीन स्थानों पर थोड़ी थोड़ी उँचाई से पानी एक दूसरे जलकुण्ड में गिरता हुआ उत्तरीय वृत्त में जाता था और वहाँ मध्य से एक बड़ा फ़व्वारा बहुत ऊँचा उठ कर जल की वर्षा करता था। आध घंटा हम लोग यह मनोहर दृश्य देखते रहे। फिर 'यूरपियन बिल्डिंग' देखने चले।

'जल-पतन' और 'उत्तरीयवृत्त' के दोनों ओर चार वृहत् भवन थे। दाहिनी ओर यूरपीन एग्रीकलचरल बिल्डिंग, और बाईं ओर 'ओरियन्टल' और 'मेन्युफेक्चरिंग बिल्डिंग' थीं।

यूरपियन भवन में जर्मनी, फ्राँस, आस्ट्रिया, इटली, टर्की आदि देशों की कारीगरी के नमूने मौजूद थे। ख़रीद और फ़रोख़्त का काम भी होता था। जर्मनी के बने हुए खिलौने बहुत चाह से लड़के लोग ख़रीदते थे। बहुत सरसरी तौर से इस भवन में हम घूम गये, फिर 'एग्रीकलचरल भवन' में दाख़ल हुए।

यहाँ पर हर प्रकार के फल देखने में आये। सेव, नाश-पाती, अंगूर, संतरा, नारंगी, आड़ू, खरबूजे, तरबूज, आदि

जो जो फल इधर होते हैं सभी जिस प्रान्त में जैसा फल होता है वैसा उस प्रान्त का प्रतिनिधि मौजूद था। इससे दर्शकों को यह पता लगता था कि कहां कैसा फल उत्पन्न होता है। भूमि के फलदा होने, न होने का बोध होता था। इसी प्रकार अनाजों की संस्था थी। वैज्ञानिक ढंग से अनाज में कैसी तरक्की हो सकती है इसके उदाहरण मौजूद थे।

"कितनी शिक्षा इन सब चीजों को देख कर होती है?" आश्चर्य्य से मुन्शीराम ने मुझ से कहा--

"बेशक, क्यों नहीं। यह सब बातें किसानों के लिए कितनी मुफ़ीद हैं। यहां के किसानों ने इस बिल्डिंग में आकर कितना लाभ उठाया होगा।"

"हां! एक हमारा भी देश है जहां अन्धकार में पड़े हुए लोग ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं। वही पुराने हल बैल, उसी से जो कुछ थोड़ा बहुत पैदा हो उसी पर सन्तोष कर भूखे-रहते हुए दिन काट रहे हैं। बेचारे समझते हैं कि उनके भाग्य में ऐसा बदा है; भूमि कम उपज देती है। पर यह ख़बर नहीं कि अविद्या के गढ़े में पड़ने से यह दुर्गति है। वही भूमि सौगुना अधिक उपजाऊ हो सकती है यदि उसको वैज्ञानिक ढंग से काम में लाया जावे।"

"पर सिखावे कौन?"

"जैसे यहाँ गवर्नमेंट करोड़ों रुपये खर्च कर देश में किसानों को सिखाती है इसी तरह हमारी भी गवर्नमेंट को करना चाहिए।"

मैं मुसकरा दिया। मुन्शीराम समझ गये कि इस मुसकराहट का अभिप्राय क्या है। ठण्डी सांस भरते हुए मेरे साथ भवन से बाहर आ गये।

ओरियन्टल भवन में हमको बहुत देर नहीं लगी। वहां अधिकतर इटली की बनी हुई मूर्तियां थीं। यूनानी हुनर अभी तक इटली में ही प्रधान है; वहीं के कारीगर संगतराश योरुप और अमरीका की ऐसी मांग पूरी करते हैं। बेशक उनका काम बहुत ही उच्च कोटि का है। दर्शक देख कर उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहता।

पर हम तो 'ओरियण्टल' नाम देख कर चौंके थे और समझते थे कि शायद हम अपनी पुण्य-भूमि की कोई वस्तु स्पर्श कर अपने आप को धन्य मानेंगे, पर निराशा देवी ने विकट हास्य कर निरादर से हमको बाहर निकाल दिया।

अब मेन्युफेक्चरिंग भवन की बारी आई। यूनाइटेड स्टेट्ज़ के अन्दर जो जो वस्तु कलों कारखानों द्वारा बनती हैं उनकी कम्पनियों ने अपनी अपनी ओर से प्रतिनिधि यहां भेजे हुए थे, जो अपनी अपनी मेशीनें चलाकर पब्लिक को दिखलाते थे कि इस प्रकार उनके यहां चीज़ें तैयार होती हैं। यह एक प्रकारसे उन कोठीवालों का इश्तिहार था। लाखों आदमी, जो प्रदर्शिनी देखने आये, उनको उन कोठी वालों का पता मालूम हो गया। एक जगह कलें रेशम बुन रही थीं, वहां यदि दर्शक रेशमी रूमाल या और कुछ रेशमी कपड़ा ख़रीदना चाहता था तो उन पर प्रदर्शिनी तथा ग्राहक का नाम बुन दिया जाता था। बड़े बड़े आरे तथा लकड़ी काटने के अस्त्र, हल, गेहूं काटने की मशीनें इत्यादि बहुत कुछ धरा था। एक दुकान पर भांति भांति के मुरब्बे, अचार रक्खे थे, और बेचने वाली कम्पनी अपने विज्ञापन बांटती थी। न्यूयार्क, न्यू-इंगलैंड को कपड़ा बेचने वाली कम्पनियों की बड़ी बड़ी दूकानों के चित्र

दर्शकों को दिखलाये जाते थे और उनसे यह आशा की जाती थी कि वे उक्त कम्पनियों का माल खरीदें।

संध्या हो गई। बिजली की रोशनी से प्रदर्शिनी के भवन जगमग जगमग करने लगे। गवर्नमेंट भवन का गुम्बज कैसा प्रकाशमान था। इधर उधर ऊपर नीचे सुन्दर कतारों में बिजली देदीप्यमान थी। इन वृत्तों को देखो, विद्युद्दीप कैसी शोभा देरहे हैं। वह देखो, जलपतन के नीचे विद्युत-प्रकाश कैसी छटा दिखाता है। सचमुच, प्रदर्शिनी की महिमा रात को ही देखने योग्य है। सड़कों के किनारे छोटे वृक्ष कुञ्जों में दिन को जो विद्युद्दीप मुक्ताफल सम बोध होते थे, अब तनिक उनकी छवि निहारो।

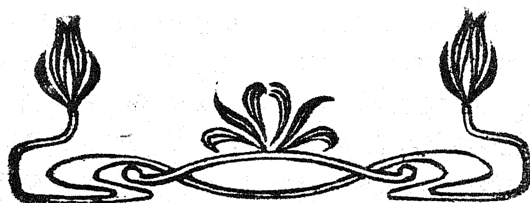
विद्युद्देवी का अकथनीय प्रभाव देखते हुए हम लोग 'रेनियर विस्टा' की ओर बढ़े चले गये। अभी बहुत सी इमारतें देखनी बाक़ी थीं। केलेफ़ोरनिया, वाशिंगटन, ओरेगन भवन सब पीछे छोड़ आये थे। और बहुत छोटी-मोटी इमारतें देखने को थीं, पर दिल में विचार किया कि इतना बहुत है, हमने भर पाया।

'रेनियर विस्टा' की ओर घूमते घामते हम लोग वहां पहुंचे जहाँ "Captive Balloon क़ैदीबैलून" उड़ रहा था। बहुत लोग यहां पर खड़े थे, हम भी खड़े हो गये। एक एक डालर इस गुब्बारे पर चढ़ने का देना पड़ता था और दो पुरुष एक बार बैठ सकते थे। गुब्बारा पृथ्वी से सात सौ गज़ के क़रीब ऊँचा जाता था और बहुत थोड़ी देर ठहर कर नीचे उतर आता था। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि यह गुब्बारा मज़बूत तारों से बँधा हुआ था।

एक एक डालर देकर हम दोनों जने भी उसी गुब्बारे के पंगूरे में बैठ गये। झट से गुब्बारा ऊपर उठा मैंने मज़बूती से पंगूरे का रस्सा पकड़ लिया। मुन्शीराम ने तो आँखें बन्द कर अपना मुह पंगूरे में छिपाया और कहने लगे—"मैं मरा, मैं मरा।" मैंने कहा—"डरो मत मुन्शीराम! गिरते नहीं।" देखते देखते हम लोग आसमान में टँग गये। मैं कभी आँखें बन्द करता, कभी खोलता था। नीचे देखने को साहस न होता था। यह तो देखा, क्या देखा? कुछ नहीं; मन का भ्रम रहा। हाँ, रोशनी; इधर उधर प्रकाश, चला, नीचे, नीचे, नीचे। मैंने भी कलेजा थामा और मुन्शीराम को जोर से चिपट गया।

हाथ पकड़ कर गुब्बारे वाले ने हम लोगों को पंगूरे से निकाला, और एक ओर बिठला दिया। मैं अभी तक मानों स्वप्नावस्था में था। मुन्शीराम पहले चैतन्य हुए और मुझे पकड़ कर बोले—

"चलो राधाकृष्ण अब घर चलें।"



कारनेगी का शिल्प-विद्यालय

It is really astonishing how many of the world's foremost men have begun as manual labourers. The greatest of all, Shakespeare, was a woolcarder; Burns, a ploughman; Columbus, a sailor; Hannibal, a blacksmith; Lincoln, a railsplitter; Grant, a tanner. I know of no better foundation which to ascend than manual labour in youth.

—Andrew Carnegie.



भारतवर्ष के शिक्षित समाज को शिल्प विद्यालय की आवश्यकता और उसकी महिमा का अनुभव होने लगा है, यह बड़े सौभाग्य की बात है। देश के युवकों को आत्मावलम्बन का सबक़ सिखाने का एक यही उपाय है। हिन्दू जाति में जो ऊँच नीच का भेद भाव है—हाथ से काम करने वालों पर जो घृणा है—उसको दूर करने का यही सहल तरीक़ा है। देश की सम्पदा बढ़ाने, देश की भावी सन्तति को रोज़गार में लगाने, उनको जाति के हितसाधन के योग्य बनाने का सबसे अच्छा ढंग यही है कि उनको कला-कौशल और यंत्र-विद्या की शिक्षा दी जाय। भारत धन धान्य पूरित देश है। यहां किसी वस्तु की कमी नहीं—सभी आनन्दपूर्वक रह सकते हैं—यदि हम अपनी सन्तान को आधुनिक जीवन युद्ध के शस्त्रों से सुसज्जित करें।

हमें प्राकृतिक दुनिया से मुक़ाबिला करना है। सस्ती चीज़ें बना कर उन्हें भारत में बेचने वाले योरप तथा अमरीका से हमारा सामना है। इसमें जीत उसी की होगी जो अपने प्रतिद्वंदियों के समान बुद्धिमान् और कार्य्यपटु होगा। सुस्त, काहिल, अशिक्षित, साम, दाम, दण्ड और भेद को न जानने वाली जाति से यह काम न होगा। जिनका हमें मुक़ाबिला करना है उनके गुण-दोषों की पहचान करनी चाहिये; उनकी सी कार्य्यपटुता सीखनी चाहिये; उनके सदृश दलबद्ध होना चाहिए; उनकी भांति अपने यहां शिल्प-विद्यालय खोलने चाहिएँ और सबसे बढ़ कर हाथ से काम करने वालों का आदर करना चाहिए--क्योंकि यही लोग देश की दौलत बढ़ाते हैं। इन्हीं के सिर पर स्वजाति का भार है। यही सब को टुकड़ा देते हैं। ऐसा करने से देश में आलसियों और बड़ी तोंदवालों की क़दर कम हो जायगी, और जो लोग दूसरों की कमाई पर चैन उड़ाते हैं उनका ह्रास हो जायगा।

आइए, पाठक! हम आपको अमेरिका के प्रसिद्ध कारनेगी-शिल्पविद्यालय का वृत्तान्त सुनावें। हमने उसे अपनी आंखों देखा है। इस वृत्तान्त से अमेरिका की उन्नति के कारण अल्पांश में आपकी समझ में आजायंगे।

अमेरिका की संयुक्त रियासतों की पेन्सलवेनिया रियासत में पिट्सबर्ग नामी एक बड़ा भारी शहर है। यहीं पर जगद्-विख्यात धनी कारनेगी साहब का स्थापित किया हुआ शिल्प-विद्यालय देश के संख्यातीत युवकों को कला कौशल और यन्त्र विद्या आदि की शिक्षा देता है। कारनेगी के विशाल पुतली घर भी यहीं पर हैं। उनमें लोहे का काम होता है। यही इस 'लोहा-नरेश' (Steel King) की राजधानी है। अपनी इस

राजधानी में, जहाँ श्रीमान् कारनेगी को करोड़ों रुपये की आमदनी है, ऐसे विद्यालय का खोलना बहुत ही उचित हुआ। इस विद्या के लिए आपने सत्तर लाख डालर दे दिये हैं! एक डालर तीन रुपये दो आने का होता है। इस हिसाब से आपने दो करोड़ दस लाख से अधिक रुपये खर्च करके यह शिल्पविद्यालय खोला है।

क्या भारत का कोई सपूत ऐसा विद्यालय खोलकर अपनी भारतमाता की शोभा बढ़ावेगा?

कारनेगी-शिल्पविद्यालय तीन भागों में विभक्त है—ललित-कला, अजायबघर और कलाभवन। छः एकड़ भूमि में इनकी इमारतें हैं। विद्यार्थियों की ज़रूरतों को पूरा करने का सब सामान है।

इमारतों का हाल सुनिये—

पहले कारनेगी-पुस्तकालय को लीजिये। पुस्तकालय क्या है शाही महल है। इस इमारत को देखकर हम दङ्ग रह गये। व्यसन हो तो ऐसा हो। इस संगमरमर के विशाल भवन में विद्याप्रेमियों के लिये चुन चुन कर पुस्तकें रक्खी गई हैं, जिनकी संख्या तीन लाख पचास हज़ार के क़रीब है। इनमें से ३५०० पुस्तकें वैज्ञानिक और यन्त्र-विद्या-सम्बन्धी हैं, जो एक से एक बढ़ कर हैं। तीन सौ के क़रीब पत्रिकायें वहाँ आती हैं जिनको पढ़ कर विद्याव्यसनी जन अलौकिक आनन्द प्राप्त करते हैं। इतने ही अख़बार और साप्ताहिक पत्र भी इस पुस्तकालय की शोभा बढ़ाते हैं। पुस्तकालय का यह विभाग विद्वान वैज्ञानिक लोगों की संरक्षा में है जिनसे हर प्रकार की सूचनायें मुफ़्त मिलती हैं।

और ख़ूबी देखिए। इस पुस्तकालय की एक सौ बीस शाखायें पिट्सबर्ग नगर में हैं। नगर के हाई स्कूलों के छात्र, कन्याओं के समाज, तथा मज़दूरों की सोसाइटियाँ इन शाखाओं के द्वारा इस बृहत् पुस्तकालय से पूरा पूरा लाभ उठा सकती हैं। जो किताब जिसको चाहिये वह अपने शाखा-विभाग के पुस्तकाध्यक्ष से कह देता है। वह उसकी ख़बर बड़े पुस्तकालय में कर देता है। दूसरे दिन किताब वहाँ पहुँच जाती है। यह सब मुफ़्त, मुफ़्त, मुफ़्त!

देखा आपने। ऐसे तरीक़ों से विद्या-प्रचार हुआ करता है। बातों से काम नहीं निकला करते। हम लोग लाखों रुपया काशी आदि क्षेत्रों में व्यर्थ लुटा रहे हैं—निखट्टुओं की संख्या बढ़ा रहे हैं पर काशी और गया में पुस्तकालय कितने खोले हैं? शिक्षित समाज से इतना नहीं हो सकता कि इस 'दान' का उचित प्रबन्ध करे और इससे विद्यालय, पुस्तकालय आदि खोल कर देश के बच्चों को विद्यादान दे।

अब अजायबघर की बात सुनिए। यह अजायबघर अमेरिका के चार बड़े बड़े अजायबघरों में से एक है। इसमें पन्द्रह लाख छोटी बड़ी दर्शनीय चीजें रक्खी हैं। यह संग्रह बहुत सा धन ख़र्च करके बड़े परिश्रम से किया गया है। इसमें खनिज, जड़ी बूटी और कीट-विद्या सम्बन्धी नमूने बड़े काम के हैं। पुरातत्व और नर-वंश विद्या सम्बन्धी संग्रह भी अपने ढंग का इसमें एक ही है।

ललित-कला वाला विभाग और भी बढ़िया है। धनिक कारनेगी ने चुन चुन कर कुशल चित्रकारों के तैल चित्र यहाँ रक्खे हैं। अमेरिका तथा योरप के चित्रकारों का सर्वोत्तम

कौशल यहां देखने में आता है। जो विद्यार्थी इस कला में प्रवीण होने के लिये विद्यालय में भरती होते हैं वे घण्टों इन चित्रों के सामने बैठ कर अभ्यास करते हैं।

इस विभाग की ओर से सार्वभौमिक (भारत को छोड़ कर!) प्रदर्शिनियां होती हैं जिनमें सब से अधिक कुशल-चित्रकार को पुरस्कार दिया जाता है। इससे चित्रकारों का उत्साह बढ़ता है। वे दिन दूनी रात चौगुनी मेहनत करके अपने अभ्यास को बढ़ाते हैं।

साथ ही संग तराशी और भवननिर्माण विषयक कमरे भी इसमें हैं, जहां इन कलाओं के उस्तादों की कारीगरी के नमूने रक्खे हुये हैं। विद्यार्थी लोग यहां भी आकर अभ्यास करते हैं। बड़ी बड़ी इमारतों के नमूने यहां हैं। उनको देख कर विद्यार्थी वैसा ही, या उससे बढ़ कर, काम बनाने का उद्योग करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस विभाग में सङ्गीत का भी प्रबन्ध है। एक बड़ा कमरा इसके लिए है। शनि और रविवार को यहां गायनाचार्य्यों की धूम रहती है। व्याख्यान आदि भी यहीं होते हैं।

कला-भवन सम्बन्धी चार स्कूल हैं, जिनमें दिन को और रात को भी पढ़ाई होती है। जो दिन में आ सकते हैं वे दिन में पढ़ते हैं, जो रात में आ सकते हैं उनके लिए रात का प्रबन्ध है। विद्यार्थी जो कुछ सीखना चाहता है, उसके समय के अनुसार तदर्थ सब प्रबन्ध कर दिया जाता है।

पहले स्कूल में विद्युत्, रसायन, वाणिज्य, धातु, यन्त्र, खनिज पदार्थ तथा आरोग्य सम्बन्धी विद्यायें सिखाई जाती हैं।

दूसरे स्कूल में सब काम हाथ से करना सिखाया जाता है, जिसमें विद्यार्थी कल-पुरज़ों को खोल सकें; यदि कुछ

टूट जाय तो उसको फ़ौरन बना सकें; कलों की भीतरी और बाहिरी सब बातें समझ जायं; पुरज़ों को जोड़ देने में कुशल हो जायं। यहां पर ऐसे लोग भी भरती किये जाते हैं जो वाणिज्य विद्यालयों में अध्यापकों का काम करना चाहते हों।

तीसरे स्कूल में मकान बनाने और उनको सजाने आदि का काम सिखाया जाता है। इस स्कूल के लिए एक बड़ी भारी इमारत तैयार हो रही है। उसके बन जाने पर और बहुत बातों का सुभीता हो जायगा।

चौथे स्कूल में स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध है। उनको गृहसम्बन्धी कार्य्यों की शिक्षा यहां दी जाती है। सीना-पिरोना, भोजन बनाना, गाना, मकान सजाना तथा-साहित्य, विज्ञान आदि सभी आवश्यक बातें यहां सिखाई जाती हैं। यह चौथा स्कूल विद्या-प्रेमी कारनेगी ने अपनी माता की यादगार में खोला है। अपनी माता से किसको स्नेह नहीं होता? परन्तु बहुत थोड़े ऐसे हैं जो उस स्नेह को अमर करने के लिये कोई चिरस्थायी यादगार बनाते हों।

हमने बहुत संक्षेप में इस शिल्प-विद्यालय का वर्णन किया है। हमने अपनी आँखों से इन स्कूलों में विद्यार्थियों को जाकर देखा है, उनको सब काम अपने हाथ से करते देख चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। जिन्हें इस विद्यालय के विषय में अधिक जानना हो वे नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करें—

The Registrar,
Carnegie Technical Institute,
Pittsburg, Pa., U. S. A.

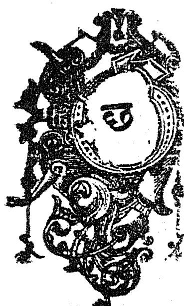
वे वहां से विद्यालय का विवरण-पत्र भी मँगा सकते हैं।

इस स्कूल में दाख़िल होने वाले की उम्र कम से कम सोलह वर्ष की होनी चाहिए। जो रात को आकर पढ़ना चाहें, उनकी उम्र अठारह वर्ष से कम न हो। फ़ीस साठ रुपये सालाना दिन के विद्यार्थियों से और पन्द्रह रुपये सालाना रात के छात्रों से ली जाती हैं। यह फ़ीस पिटसबर्ग में रहनेवाले विद्यार्थियों के लिये है। दूसरे छात्रों से नब्बे रुपये सालाना दिन वाले और इक्कीस रुपये रात वाले विद्यार्थियों से ली जाती है।

भारतवर्ष के स्कूलों से एण्ट्रेन्स पास विद्यार्थी सहज ही में यहां भरती हो सकते हैं। जो विद्यार्थी एक साल का ख़र्च एक हज़ार रुपया वहां लेकर पहुंचे वह सहज ही में बाकी साल काम करके पढ़ सकता है, पर विद्यार्थी चतुर, तीक्ष्ण-बुद्धि और मधुर-भाषी हो तो। पिट्सबर्ग में एक वेदान्त सोसाइटी भी है जो हिन्दू छात्रों की सहायता करने में हर प्रकार उद्यत रहती है।

ईश्वर करे भारतवर्ष में भी एक ऐसा ही विद्यालय खुले जिसमें ऊंच नीच सभी वर्णों के बालक पढ़ें; हानिकारक बन्धनों की गांठें कटें और देश के बच्चे कला-कौशल में कुशल होकर भारत की निर्धनता दूर करें।

मेरी डायरी के कुछ पृष्ठ



छब्बीस मई १९०९, बुधवार के रोज़ मेरा विश्व-विद्यालय का साल पूरा हुआ। परीक्षाओं से छुट्टी पाई। तब यह फ़िक्र लगी कि अगले साल की पढ़ाई के लिए रुपया कमाने का प्रबन्ध करना चाहिये।

जब से मैं अमरीका में आया हूँ मैंने अपना प्रबन्ध इस तरह रक्खा है कि विश्व-विद्यालय का साल पूरा होने तक मेरे पास कुछ न कुछ रुपया अवश्य ही बचा रहे, जिसमें मज़दूरी ढूंढने के समय तक खाने पीने के लिए कष्ट न हो। पिछले साल इन दिनों मेरे पास १२० रुपये थे। उस पूंजी को मैंने छः सप्ताह बेकार बैठ कर खाया था। बाक़ी सात सप्ताह मुझे काम मिल गया था। गत वर्ष अमेरिका में आर्थिक उद्वेग था, इस कारण मज़दूरी की बड़ी क़िल्लत रही। इस साल सियेटल नगर में, जहाँ मैं था, प्रदर्शिनी थी। इससे ख़याल था कि खूब काम मिलेगा। प्रदर्शिनी में न सही और जगहों में काम मिल जाने की बहुत उम्मीद थी। मन में यह भी विचार था कि यदि कुछ दिन काम न मिला तो बैठ कर लेख ही लिखेंगे। क्योंकि फ़ुरसत की कमी के कारण इस साल मैं बहुत कम लेख लिख सका था। परन्तु भावी के खेल विचित्र हैं; बात जैसी मैं चाहता था वैसी न हुई।

मई के आरम्भ में मेरी आँखें दुखने लगीं। पढ़ना लिखना कठिन हो गया। परीक्षा के दिन निकट! मजबूरन एक अम-

रीकन डाक्टर के पास जाना पड़ा। इस झगड़े में मेरी पूंजी का रुपया ख़तम हो गया। २६ मई को परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो कर जो मैंने अपनी बैंक की किताब देखी तो केवल बारह रुपये रह गये थे। मकान का एक सप्ताह का क़िराया ६ रुपये और बनिये के ८ रुपये मेरे ज़िम्मे निकलते थे। अब क्या किया जाय? सोचा कि दिन चढ़ते ही मज़दूरी की खोज में निकलेंगे।

२७ मई—जलपान करके और कपड़े पहन कर मैं बैठा ही था कि विष्णुदास ने मेरा दरवाज़ा खटखटाया मैंने दरवाज़ा खोल दिया।

विष्णु०—"कहिए, चलने को तैयार हैं?"

मैं—"जी, हां।"

विष्णु०—"आपकी घड़ी में क्या वक्त है?"

मैं—"साढ़े आठ बजे हैं।"

विष्णु०—"मेक्सिको देश का रहने वाला वह मेक्सिकन कहां है? हम लोगों के साथ चलेगा कि नहीं?"

मैं—"ज़रूर चलेगा। वह अभी नीचे से आता है।"

थोड़ी देर हम लोग बातें करते रहे। जब मेक्सिकन आ गया तब तीनों आदमी नौकरी की तलाश में बाहर निकले।

अपने इन दो साथियों का परिचय पाठकों से करा देना आवश्यक है। विष्णुदास वाशिंगटन विश्वविद्यालय में इलेक्ट्रिक इञ्जीनियरिंग पढ़ते थे, और मेरी तरह मेहनत पर ही बसर करते थे। विद्यालय में इनका यह पहला ही साल था। यह साल तो इनका अच्छी तरह कट गया, क्योंकि इनके पास विद्यालय-प्रवेश करते समय काफ़ी रुपया था, जो इन्हों ने वेंकोवर में रह कर कमाया था। अगले साल की पढ़ाई के

लिए ये भी द्रव्योपार्जन के चक्कर में थे। दूसरे महाशय, सिसारिनो मघाइयां, मेक्सिकन थे जो सिर्फ़ रुपया कमाने के लिए अमरीका आये थे। आदमी नेक और मिलनसार होने से हमारे साथी हो गये थे। पास के दूसरे कमरे में रहने के कारण तथा एक ही धुन के होने की वजह से हम लोगों का मन इनसे मिल गया था। इसी लिये तीनों परदेशी साथ ही मज़दूरी की तलाश में निकले।

अमरीका में सब काम पेशे के तौर पर होते हैं। मज़दूरी तलाश कर देना भी एक पेशा है। बड़े बड़े शहरों में कितनी ही एजेन्सियां ऐसी हैं जिनका काम नौकरी तलाश कर देने का है। अंग्रेज़ी में इनको एम्प्लायमेण्ट एजेन्सीज़ (Employment Agencies) कहते हैं। हम लोग इन्हीं एजन्सियों में नौकरी की बाबत पूछने चले थे।

कोई साढ़े दस बजे के क़रीब हम लोग सियेटल के प्रान्त-भाग से शहर में पहुंचे। सियेटल शहर भी अमरीका के और बड़े शहरों की तरह मीलों लम्बा चौड़ा चला गया है। वाशिंगटन-विश्वविद्यालय भी यहीं है। बिजली की गाड़ियां इधर से उधर, उधर से इधर दौड़ती फिरती हैं। प्रदर्शिनी के कारण इन दिनों गाड़ियों में बहुत भीड़ रहती थी; ख़ास कर उन गाड़ियों में जो विश्वविद्यालय से शहर आती जाती थीं। क्योंकि प्रदर्शिनी के भवन विद्यालय की भूमि पर बनाये गये थे, और हम लोग विश्वविद्यालय के पास रहते थे। इसी से हमें शहर पहुंचने में देर लगी।

सियेटल की बड़ी बड़ी सड़कों पर इन एजन्सियों के अड्डे हैं। वहां जाकर हमने पूछ पाछ शुरू की। भिन्न भिन्न प्रकार के कामों के इश्तिहार एजन्सियों के बाहर दीवारों पर

लगे हुए देखे। नमूने के तौर पर दो चार का तरजुमा हम नीचे देते हैं—

१—तीस मज़दूर सड़क पर काम करने के लिये दरकार हैं। तनख़्वाह ६ रुपये रोज़।

२—तीन मज़दूर लकड़ी के कारख़ाने में काम करने के लिये। तनख़्वाह १२० रुपये माहवार। रहने का मकान मुफ़्त।

३—दो आदमी एक होटल में बरतन धोने के लिये चाहियें। तनख़्वाह ६० रुपये। खाना मकान मुफ़्त।

४—छः बढ़ई पश्चिमी सियेटल में दरकार हैं। तनख़्वाह ६ रुपये रोज़।

इस प्रकार के बहुत से इश्तिहार बहुत जगहों पर पाये। हमारा विचार एलास्का जाने का था; इसलिये हमने वहाँ का हाल दरयाफ़्त किया। मगर पता लगा कि एलास्का की भरती अभी शुरू नहीं हुई। एक जगह पर हमने अमरीकन गवर्नमेंट के काम के मुताल्लिक नोटिस देखा। उस पर मज़दूरी साढ़े सात रुपये रोज़ लिखी हुई थी। पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ हम लोगों को नौकरी नहीं मिल सकती, क्योंकि हम लोग काले हैं! एजन्सी के कर्मचारी ने मुझको गवर्नमेंट के एक अफ़सर की चिट्ठी दिखलाई। उसमें साफ़ लिखा था कि मज़दूर अमरीका या आयरलैंड आदि के गोरे हों, काले हिन्दू न भेजे जाँय। इस चिट्ठी को पढ़ कर भाँति २ के विचार मेरे दिल में उठे, जिनका उल्लेख करना यहाँ पर उचित नहीं।

इस तरह घूमते घामते हम लोग "पायोनियर" नामक एजन्सी के पास पहुँचे। वहाँ भी कई प्रकार की मजदूरी के इश्तिहार देखे। दो चार हमारे मतलब के भी थे। पूछ पाछ

करने के लिये हम लोग एजन्सी के दफ़्तर में घुस गये। वहाँ तीन आदमी अपने काम में मशग़ूल पाये, जो मज़दूरों से बात चीत करके उनके लिये काग़ज़ लिख रहे थे। हमारी बारी आने पर मैंने एक से कहा कि हमारे लिये कोई अच्छा काम बतलाओ। ऐसी जगह भेजो जहां तीन महीने तक लगातार काम रहे और हम लोग अपने पढ़ने भर के लिये रुपया कमा लें। उसने कहा कि यहाँ सियेटल में ही आप को अच्छा काम मिल जायगा। आप एक एक डालर (तीन तीन रुपये) दें; बहुत अच्छा पक्का काम दिला दूँगा। हमने स्वीकार कर लिया और तीन आदमियों की जगह चार आदमियों की फ़ीस, चार डालर; (बारह रुपये) अदा कर दिये। मेरे पास तो कोई डालर था नहीं। विष्णुदास के पास पांच डालर थे, सो उन्होंने चार डालर दे दिये। एजन्सी वाले ने हमको एक चिट्ठी दी जिस पर मेरे हस्ताक्षर करवा लिये।

यह चिट्ठी जेनिङ्गस नाम के एक मनुष्य के नाम थी। एक प्रकार का प्रपञ्च था, जिससे बेचारे अनजानों का धन लूटा जाता था। हमसे एजण्ट ने कहा कि कल सुबह साढ़े सात बजे फलानी जगह पर जाना और मिस्टर जेनिङ्गस को यह रुक्क़ा दे देना। उन्हें चार आदमियों की ज़रूरत है। बड़ा आसान काम है, और पक्का है।

बड़ी ख़ुशी ख़ुशी हम तीनों एजन्सी से निकले। दिल में समझा कि काम मिल गया। अब कोई चिन्ता नहीं है। बाहर निकल कर हम दो ही चार क़दम गये थे कि एक अपनो जान पहचान के मिले।

मुलाक़ाती—"अच्छा, आप लोगों ने फ़ीस कितनी दी?"

मैं—"एक डालर, फ़ी आदमी।"

मुलाक़ाती—(हँस कर) "आप लोगों को एजन्सी वाले ने ठग लिया। शहर के काम के केवल पचास सेण्ट (आधा डालर) देने पड़ते हैं। आप लोगों ने एक एक डालर कैसे दे दिया?"

मैं—"हम लोगों को बहुत आसान और पक्का काम मिला है इसलिए उसने एक एक डालर लिया होगा।"

मुलाक़ाती—(मुस्करा कर) "यह बात कल सबेरे मालूम हो जायगी।"

हम लोगों ने उसकी बात का कुछ ख़याल न किया। शहर में घूमते फिरते अपने अपने रहने की जगह पहुंचे। रात को लम्बी तान कर सो रहे, ताकि सबेरे काम पर ठीक समय पर पहुंच जायँ और आसानी से काम कर सकें।

२८ मई—प्रातःकाल उठ कर मैं ने कुछ खाना पीना तैयार किया। नियत समय पर तीनों जने गाड़ी में बैठ कर मिस्टर जेनिङ्गस के पास चले। चौथा आदमी सरदार तेजासिंह हमको रास्ते में मिल गया था। बातें करते हुए हम रीपबलिकन गली में पहुंचे। यहीं पर जेनिङ्गस का काम था। वहाँ देखते क्या हैं कि सड़क पर कुटाई हो रही है और पचास साठ आदमी काम कर रहे हैं। हम लोगों ने उस मेक्सिकन को मिस्टर जेनिङ्गस के पास भेजा। उसने काग़ज़ देख कर हम चारों आदमियों को गाड़ियाँ खींचने पर लगा दिया। यह काम बड़ा मुश्किल था। एक ढलवाँ जगह पर एक मशीन खड़ी थी जिसमें गारा तैयार हो रहा था। गाड़ियाँ उसके मुंह के नीचे खड़ी कर दी जाती थीं और वह मशीन उनको गारे से भर देती थी। दो आदमियों का काम था कि भरी हुई गाड़ी को घोड़ों की तरह खींच कर तीन सौ गज़

नीचे ले जायं और वहां जाकर उलट दें। फिर खाली गाड़ी को खींच कर ऊपर चढ़ा लावें और मशीन के मुँह के आगे धर दें। यही खच्चरों का काम करने के लिये हम यहां भेजे गये थे। विष्णुदास और मैं एक गाड़ी से चिपट गये; हमारे दूसरे दो साथी दूसरी से। मैं और विष्णुदास तो खैर रोते धोते इस चढ़ाई उतराई में लगे रहे। परन्तु हमारे दूसरे साथियों ने एक ही बार गाड़ी खींच कर तोबा की और अलग खड़े हो गये। मेक्सिकन ने चिल्ला कर हम से काम छोड़ने को कहा। हमने भी छोड़ दिया।

मेक्सिकन—(एजन्ट को गाली देकर) "देखा उसकी बदज़ाती! यह खच्चरों का काम करने के लिए हमें यहां भेजा और एक डालर फ़ीस भी ली। बदमाश!"

मैं—(हंस कर) "अच्छा, तो अब क्या सलाह है? चल कर अपने चार डालर वापस लेंगे।"

मैंने विष्णुदास से कहा कि जाकर मिस्टर जेनिङ्गस से इस काग़ज़ पर लिखा लाओ कि यहां पक्का काम नहीं है। जेनिङ्गस ने काग़ज़ पर लिख दिया—"ये लोग गाड़ियाँ नहीं खींचना चाहते।"

वहाँ से चक्कर लगाते, क़बरिस्तान देखते, हम लोग फिर उसी एजन्सी में पहुंचे, जाकर काग़ज़ दिखाया और अपनी फ़ीस वापस मांगी। अब फीस भला ये लुटेरे क्यों वापिस देने लगे! उलटा हम लोगों को बेवक़ूफ़ बनाना शुरू किया कि तुमने जेनिंगस के काम का हर्ज किया। मैंने उससे कहा कि तुम्हारा हमारा यह इक़रार था कि आसान और पक्का काम मिले। इसी पर हमने एक डालर फ़ीस भी दी।

बड़े झगड़े के बाद यह तै हुआ कि उसने हमको दूसरी जगह काम करने के लिये भेजा और एक दूसरा काग़ज़ हम लोगों को दिया।

यह काम विश्वविद्यालय के निकट ही मिट्टी काटने का था। फावड़े से मिट्टी काट काट कर गाड़ी में भरने की नौकरी थी। एजन्सी वालों ने हम लोगों से कहा कि अभी तुम लोग वहां जाओ और दोपहर एक बजे काम शुरू करो।

चार डालर देकर हम फँस गये थे, अब फटकने से क्या हो सकता था दिल में निश्चय हो गया कि ये डालर तो गये। यदि इनके द्वारा एक भी सप्ताह का काम मिल जाय तो हम समझ लें कि गङ्गा नहाये। जिस खुशी से पहले दिन हम एजन्सी से निकले थे वह आज न थी। मेरे साथियों के चेहरे पर मायूसी छा रही थी। यही बात उनके मुंह से निकलती थी—"काम न मिलेगा तो क्या होगा?" विष्णुदास मुझ से बार बार पूछते—"कहो, देव, काम न मिलेगा तो कैसे अगले साल पढ़ेंगे?"; उनको मैंने समझाया कि धीरज धरो, काम मिल जायगा। मगर उनको यह पता न था कि देव के रहने बैठने का भी ठिकाना नहीं है! मकान वाली यदि आज किराया माँगे तो सख़्त परेशानी हो। लेकिन मुझे विष्णुदास के चार डालरों की बड़ी चिन्ता थी, क्योंकि उस बेचारे ने मेरी ही ख़ातिर से चार डालर निकाल कर सब की फ़ीस भरी थी।

ख़ैर इसी उधेड़बुन में हम वापस आये। भोजन कर एक बजे जहां जाना था वहाँ पहुँचे। वहा जाकर कार्याध्यक्ष को एजन्सी वालों का काग़ज़ दिखाया। उसने कहा कि आज हमारे पास काम नहीं है। कल सवेरे साढ़े सात बजे तुम लोग यहां आओ, काम मिल जायगा। लो! यह दिन भी

ख़राब गया। उलटा आने में ट्राम के पैसे पल्ले से ख़र्च हुये। मगर क्या किया जाता, अपना मुँह लेकर अपने कमरों में लौट आये रात को यह सोच कर मैं सो रहा कि कल काम ज़रूर मिल जायगा।

२६ मई--प्रातःकाल का नाश्ता करके मैंने दोपहर का खाना साथ बांधा और अपने साथियों को लेकर काम पर चला। वहां ठीक साढ़े सात बजे हम लोग पहुँच गये। कार्याध्यक्ष ने कहा कि तुम लोग घंटे डेढ़ घंटे इन्तज़ार करो। मेरा छकड़ा आ जाय तो काम शुरू करना। हमने कहा—"अच्छा" और लगे छकड़े का इन्तज़ार करने। सवा नौ बजे के क़रीब छकड़े साहब आये और हमने काम शुरू किया। बारह बजे तक मशीन की तरह काम करते रहे। हमारे साथ दस अमरीकन मज़दूर भी काम करते थे। वे हम लोगों को देख देखकर बेतरह कुढ़ते थे। हम लोग चुप चाप काम करते रहे। तेजसिंह और मेक्सिकन मयाइयों तो ऐसे कामों के आदी थे, उनको कुछ मालूम न हुआ, मगर मुझको और विष्णुदास को नानी याद आ गई। सड़क पर फावड़े से मिट्टी तो मैं कई बार काट चुका था, परन्तु काट काट कर छकड़े में भरने का अभ्यास मुझे न था। जब जब मैं फावड़े से काटकर मिट्टी छकड़े में फेंकता, तो धूल उड़कर आंख, कान, नाक में जाती। सारा दिन इसी प्रकार धूल फांकते रहे। सारे कपड़े मिट्टी से भर गये, सिर में मिट्टी ही मिट्टी !

ख़ैर, पांच बजे छुट्टी हो गई। शनिवार का दिन था। विचार किया कि यह भी अच्छा हुआ। रविवार को आराम करके सोमवार को फिर काम पर आडटेंगे और एक सप्ताह के बाद अभ्यास पड़ जाने पर कुछ भी कष्ट न होगा।

क़ायदे के मुताबिक़ आज मज़दूरी मिलने का दिन था। क्योंकि यहां पर सप्ताह के सप्ताह मज़दूरी मिल जाती है। हम लोग भी मज़दूरों की क़तार में खड़े हो गये। हमारी बारी आई तो हम लोगों को कार्य्याध्यक्ष ने एक डालर पचपन सेन्ट फ़ी आदमी दिये। अमरीका के क़ानून के मुताबिक़ तो हम लोग पूरे दो डालरों के मुस्तहक़ थे, क्योंकि हम लोग साढ़े सात बजे वहां पहुंच गये थे। हमसे क्या, छकड़ा चाहे नौ बजे आता चाहे दस बजे। हम तीन जने तो हिन्दू थे, इस लिये अपने भारतवर्षीय संस्कारों से वेष्टित होने के कारण एक डालर पचपन सेन्ट ही लेकर चुप रह गये। पर वह मेक्सिकन, जो सब के आख़ीर में था, अपने चेक को देखकर बोला—

मेक्सिकन—"ऐ मिस्टर, क्यों तुम हम लोगों को दो डालर नहीं देते?"

कार्य्या०—"तुम लोगों ने साढ़े नौ बजे काम शुरू किया था।"

मेक्सिकन—"हम लोग साढ़े सात बजे यहां आ गये थे। हमको क्या, चाहे तुम्हारा छकड़ा दस बजे आवे चाहे बारह बजे।"

कार्य्या०—"तुम को लेना हो तो लो, नहीं न लो।"

मेक्सिकन ने अपना चेक उसको वापस दे दिया। उस अन्यायी ने हम लोगों से कह दिया कि सोमवार को काम पर मत आना और एजन्सी वाले क़ाग़ज़ की पीठ पर लिख दिया—"They are no good"—अर्थात् ये लोग ठीक काम नहीं करते। चार डालरों के वापस आने की जो थोड़ी बहुत आशा थी उस पर भी इसने पानी फेर दिया।

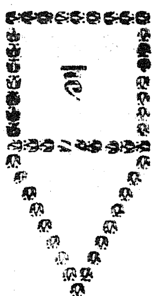
इस बेइन्साफ़ी का क्या इलाज! साल भर में तीन महीने

के लिये काम मांगते हैं, काम नहीं मिलता। अपनी जेब से फ़ीस देकर नौकरी ढूँढ़ते हैं, ईमानदारी से काम करते हैं, एक दिन काम करवा कर जवाब! मज़दूरी भी पूरी नहीं। चार डालर मुफ़्त में गये। यह क्यों! क्या इस भूमि पर रहने का हमारा कोई अधिकार नहीं है? क्या माता वसुन्धरा के दत्त भोगों में हमारा हिस्सा नहीं है? क्या यह न्याय है कि एक आदमी बारहों महीने लाखों रुपये पैदा कर आनन्द उड़ावे, और दूसरे को विद्याध्ययन के लिये भी धन कमाने का मौक़ा न दिया जाय? क्या यह इन्साफ़ है कि एक तो हवागाड़ी पर बैठ कर बेफ़िक्री से दिन काटे और दूसरा खाने के लिये भी मोहताज घूमे? हे मनुष्य-समाज! इस बेइन्साफ़ी का कुछ ठिकाना है!

इसी प्रकार के प्रश्न मेरे हृदय में उठ रहे थे और मैं धीरे धीरे अपने साथियों के साथ जा रहा था। चलते चलते एक चबूतरे के पास पहुंचे, जहाँ हम लोग कुछ देर के लिये बैठ गये। विष्णुदासजी को एक एक डालर दे दिया गया। कुछ देर सुस्ताकर विष्णुदास और तेजासिंह अपने अपने रहने की जगह गये। मैं और मघाइयां अपने कमरों की ओर रवाना हुये।

यद्यपि मैं इतना थका हुआ था तथापि रात को बड़ी देर तक मुझे नींद न आई। मनुष्य-समाज के स्वार्थ का भयङ्कर चित्र मुझको कष्ट देता रहा। आदमी दूसरों की पीड़ा तभी समझता है जब खुद उस पर बीतती है। आज की बेइन्साफ़ी के दृश्य ने मुझ पर बेढब असर किया। घण्टों मैं समाज के अन्याय पर विचार करता रहा। अन्त को मैंने निद्रादेवी के भवन में प्रवेश किया।

अमरीका में विद्यार्थि-जीवन



मारे देश के स्कूलों, कालेजों और पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी यह जानने के बड़े ही उत्सुक होंगे कि नई दुनिया के विद्यार्थी अपने विश्वविद्यालयों में किस प्रकार रहते और विद्याभ्यास करते हैं। इसलिये यह लेख मैं बड़े प्रेम से अपने भारतीय छात्रों के भेंट करता हूं।

अमरीकन विद्यार्थी स्वभाव से ही हँसी, मज़ाक, दिल्लगी, पसन्द करते हैं; यह उन लोगों का जातीय गुण समझिये। इस लिये इनके जीवन को इन्हीँ की आँखों से देखने वाला पुरुष इनकी आदतों और कामों को भले प्रकार समझ सकता है। सम्भव है कि यहां के विद्यार्थियों की कई एक बातें हमारे पाठकों को पसन्द न आवें; और हम यह चाहते भी नहीं कि वे उन्हें जरूर ही पसन्द करें। हम लेखक हैं; लेखक का धर्म आकाश पाताल के कुलाबे बाँधना नहीं है--आदमियों को देवता बनाना नहीं है—बल्कि सच्ची बातें उनके सामने रखना है। यदि हम केवल चुन चुन कर ख़ास ख़ास बातें लिखें और तारीफ़ों के तूमार बाँध दें तो हम पाठकों को भुलावा देने के अपराधी होंगे। यह हम स्पष्ट तौर से कहे देते हैं कि भारत को बहुत सी बातें अमरीका से सीखनी हैं; और उनमें से अमरीकन विद्यार्थियों की जीवन-चर्य्या बहुत ही शिक्षादायक है। क्योंकि इन्हीं विश्वविद्यालयों

में अमरीका के रत्न उत्पन्न होते हैं; यहीं स्वाधीन-चिन्ता के बीज बोये जाते हैं; यहीं देश-भक्ति की श्रद्धा उत्पन्न की जाती है; और यहीं पर साहित्याचार्य्यों का जन्म होता है।

१—बनैलू विद्यार्थी और उसका प्रवेश-संस्कार।

हाई स्कूल पास करके जो विद्यार्थी कालेज में भरती होता है उसको अमरीका के विश्वविद्यालय की परिभाषा में 'Freshman' अर्थात् बनैलू विद्यार्थी कहते हैं। यह क्यों? इसलिये कि विद्यालय के ऊंचे दरजे के छात्रों के खयाल में वह जङ्गली समझा जाता है; क्योंकि हाई स्कूल तक लड़कपन का ज़माना है। इसलिये जिस जङ्गली विद्यार्थी का प्रवेश संस्कार नहीं हुआ होता, उसे पुराने विद्यार्थी अपने में मिलने जुलने नहीं देते। यह केवल विद्यार्थियों का अपना बनाया हुआ सामाजिक नियम है। इस संस्कार के भिन्न भिन्न कालेजों और विश्वविद्यालयों में भिन्न भिन्न तरीके हैं। शिकागो के स्नेलहाल में प्रवेश-संस्कार का जो तरीका है उसे हम अपने पाठकों के मनोरञ्जनार्थ लिखते हैं।

१९०६ में कोई बारह विद्यार्थियों का संस्कार होना था। उनमें एक जापानी महाशय भी थे। स्नेलहाल की विद्यार्थि-समिति ने सभा करके ३१ अक्टूबर की रात को नौ बजे उनका प्रवेश संस्कार करना निश्चय किया। नियमित समय पर सब पुराने विद्यार्थी बांस की एक एक छड़ी हाथ में लिये हुए एक बड़े कमरे में इकट्ठे हुए। बनैलू, जिनकी आंखों पर रूमाल बँधे हुए थे, उसी कमरे में लाये गये। सब से पुराने तीन विद्यार्थी एक चबूतरे पर कुरसियों पर बैठे थे; उनमें से एक न्यायाधीश था।

उसकी पोशाक भी वैसे ही थी। हम* सब पुराने विद्यार्थी कुरसियों पर बैठे थे ; न्यायाधीश की आज्ञानुसार बिजली की रोशनी हटा कर दो मोमबत्तियाँ जला दी गईं। उनसे धुँधली रोशनी होने लगी। उसी प्रकाश में जज ने कुछ मन्त्र पढ़े और सब लोगों ने घुटने टेक कर उनको दुहराया। इसके बाद जज ने एक प्रतिज्ञापत्र पढ़ा, जिस पर सब बनैलू विद्यार्थियों ने दस्तख़त किये और हम लोगों ने छड़ियों से पीट कर उनको कमरे से निकाल दिया। वे किसी दूसरे कमरे में बन्द कर दिये गये। यह बात उस संस्कार की भूमिकामात्र थी।

जब जङ्गली विद्यार्थी चले गये तब जज ने तीन कर्मचारी और नियत किये—एक दरबान, दूसरा चपरासी, तीसरा मुन्शी। दरबान पहरे पर नियत हुआ। चपरासी का काम एक बनैलू को सभा में लाना निश्चित हुआ। मुन्शी का काम जज की आज्ञाओं का पालन करना निश्चित हुआ। अब कार्रवाई आरम्भ हुई। सब से पहले जापानी का हाथ पकड़ कर चपरासी उसे ले आया। जब वे दरवाज़े पर पहुँचे तब दरबान ने पूछा—"कौन है?" उत्तर मिला "एक दोस्त।" दरबान उसे जज के पास ले चला और साथ साथ हम लोग उस एक दोस्त की आमद की खुशी का भजन गाने लगे। दरबान ने उसको मुन्शी के हवाले किया। मुन्शी ने उसको जज के सामने पेश किया।

जज—"तुम कौन हो?"

जापानी—"दोस्त हूं।"

* मैं भी पुराने विद्यार्थियों में से था, क्योंकि मैंने भारतवर्ष में हाई स्कूल पास करके दो साल कालेज में शिक्षा पाई थी—लेखक।

जज—"अच्छा, हाथ मिलाओ तो देखूँ, दोस्त हो या दुश्मन।"

ज्योंही जापानी ने हाथ मिलाया, जज बोल उठा—"दुश्मन, दुश्मन, दूर करो, दूर करो।" हम सब लोग उसी दम छड़ियों से उसकी पूजा करने लगे। तब जज के एक साथी की सिफ़ारिश पर उस बनैलू के साहस की परीक्षा होने लगी। उसे मुन्शी ने कहा कि एक स्टूल पर खड़े हो। बनैलू खड़ा हो गया। उसकी आँखें रूमाल से बन्द थीं। आज्ञा मिली कि इस स्कूल से दूसरी कुरसी पर कूदो। वह कूदा तो एक विद्यार्थी ने कुरसी हटा दी। इस प्रकार बनैलू बेवकूफ़ बनाया गया और दूसरे लोगों ने छड़ी से उसका आदर-सत्कार किया। इसके बाद उसकी बुद्धि की परीक्षा हुई। उसमें भी उस बेचारे की दुर्गति हुई। तब जज ने उसको आज्ञा दी कि एक व्याख्यान दो। जापानी ने व्याख्यान में कहा—

"मैं आज से स्नेलहाल का पक्का मेम्बर बनता हूं और बनैलू से सभ्य होता हूं। मैं प्रण करता हूं कि इस हाल के दूसरे विद्यार्थियों का आज्ञाकारी रहूंगा; उनके दुख में दुख और सुख में सुख समझूंगा। सदा सभा के नियमों का पालन करूंगा और स्नेलहाल के गुण गाऊँगा।"

पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि लेकचर देते वक्त भी जापानी की पीठ पर तड़ातड़ छड़ियां पड़ रही थीं*। व्याख्यान के बाद उसको चालीस गज़ के फ़ासिले

*मैं अपने मित्रों के सूचनार्थ यह बतला देना ज़रूरी समझता हूं कि मैने किसी को नहीं पीटा। मैं केवल दर्शक बना रहा; क्योंकि मुझे सिर्फ़ कार्रवाई देखनी थी—लेखक।

पर ले जा कर खड़ा किया, जहाँ से वह घुटनों के बल रेंगता हुआ जज के चबूतरे के पास पहुंचा। वहां पर एक काग़ज़ और पेन्सिल रक्खी थी; उससे उसने अपना नाम काग़ज़ पर लिखा। यह काम जरा मुश्किल था। आँखें बन्द, घुटनों के बल चल कर कागज तलाश करना, ऊपर से छड़ियों की बौछार! अजीब नज़ारा था। ख़ैर, इसके बाद उसकी आंखें खोल दी गईं; उसका मुँह धोया गया और सब पुराने विद्यार्थियों ने प्रेम से उससे हाथ मिलाए, और उसको अपनाया। यही हाल दूसरे बनैलू विद्यार्थियों का भी हुआ। जब सब के प्रवेश-संस्कार हो चुके तब ख़ूब मिठाई उड़ी।

इसी प्रकार के संस्कार कोलम्बिया, हार्वर्ड आदि विश्वविद्यालयों में भी प्रचलित हैं; कहीं कोई बात सख़्त है, कहीं कोई बात नरम। आरेगन रियासत के विश्वविद्यालय में बनैलू विद्यार्थियों के ज़िम्मे बहुत से काम लगाये जाते हैं। यदि कोई आज्ञा मानने में आगा पीछा करता है तो वह कपड़ों सहित नदी में ढकेल दिया जाता है या नहाने के 'टब' में पकड़ कर डाल दिया जाता है और ऊपर से ठण्डे पानी का नल छोड़ देते हैं। इस प्रकार हर तरह उसे सीधा करते हैं।

२–विद्यार्थियों के साहित्य-समाज।

ऊपर जो कुछ हमने लिखा है वह ख़ाली पाठकों को वाक़फ़ियत के लिये समझना चाहिये। आगे हम अधिकांश उन बातों को लिखेंगे जो हमें अमरीका के विद्यार्थियों से सीखनी हैं। उनमें से पहिली बात साहित्य सम्बन्धी है।

यहाँ के विश्वविद्यालयों में सभी जगह साहित्य-समाज हैं, उनमें दाख़िल होकर विद्यार्थी व्याख्यान देना, वाद-विवाद

करना, तथा राजनैतिक, धार्मिक आदि विषयों पर विवेचना करना सीखते हैं। हमारे देश में विद्यार्थी राजनैतिक विषयों की चर्चा करने से मना किये जाते हैं; कालेजों में धार्मिक वादप्रतिवाद बन्द हैं, जिसमें किसी का दिल न दुखे। उनको खाली 'फ़ोनोग्राफ़' की तरह रटन्त-विद्या सिखाई जाती है जिसे वे परीक्षाओं के समय उगल देते हैं। बस! अमरीका के साहित्य-समाजों में प्रत्येक राजनैतिक बात का खण्डन, मण्डन होता है। कुछ विद्यार्थी एक पक्ष लेते हैं; कुछ दूसरा। फिर वादविवाद का आनन्द देखिये। अभी जो जापानियों के निकालने का विषय अमरीका में उठा था उस पर वाशिंगटन, इडाहो और आरेगन रियासतों के विश्वविद्यालयों की ओर से तीन बड़े घनघोर शास्त्रार्थ हुए थे। प्रत्येक विश्वविद्यालय की ओर से दो दल तैयार किये गये थे—एक पक्ष में, दूसरा विपक्ष में। दोनों दलों ने खूब तैयारियां की थीं। पक्षपात-हीन लोग जज नियत किये गये थे। उन्होंने केवल युक्तियां और प्रमाण सुन के फैसला दिया। वाशिंगटन वालों का दल, जो जापानियों को निकाल देने के पक्ष में था, हार गया। अर्थात् आरेगन वाले दोनों दल हार गये। इस प्रकार के बहस मुबाहिसे से दोनों पक्षों की युक्तियों का ज्ञान श्रोताओं को हो जाता है और उन्हें ख़ुद सोचने की पूरी सामग्री मिल जाती है। यही नहीं, किन्तु विद्यार्थियों को निबन्ध लिखने, जांच करने और अपने देश के हित-अनहित-सम्बन्धी बातों के विचार का ज्ञान हो जाता है।

और लीजिये। विश्वविद्यालय की एक शाखा सभा का मैं भी मेम्बर था; मेरे प्रस्ताव करने पर एक बार निम्नलिखित विषय बहस मुबाहिसे के लिये रक्खा गया।

Resolved that the Christian Missionaries should not be sent to India.

अर्थात् ईसाई पादरी भारत में न भेजे जायँ।

मैंने, और दो अमरीकन विद्यार्थियों ने 'न भेजे जाने' का पक्ष लिया। और तीन अन्य विद्यार्थियों ने 'भेजे जाने' का— तीन जने जज नियत किये गये। हमने युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध किया कि भारतवर्ष में ईसाई पादरी व्यर्थ का धार्म्मिक झंझट खड़ा कर रहे हैं। हिन्दू और मुसलमान दो दल अलग हैं ही, ईसाई अब एक और दल पैदा करना चाहते हैं। हमने सिद्ध किया कि ईसाइयों ही की कृपा से हिन्दू तमाम दुनिया में काफ़िरों 'Heathens' के नाम से मशहूर किये जाते हैं, और यही लोग जातियों में घृणा का बीज बो रहे हैं। आख़िर में एक अमेरिकन विद्यार्थी ने सिद्ध किया कि पादरियों को घर ही में रह कर यहीं ईसाई धर्म्म का प्रचार करना चाहिये; यहीं उनकी सख़्त ज़रूरत है। प्रतिपक्षियों ने इस बात पर अधिक ज़ोर दिया कि इञ्जील में आज्ञा है कि इस धर्म्म का प्रचार करो, इसलिये हमारा कर्तव्य है कि हम दूसरे देशों में जाकर ईसाई मत का उपदेश करें। जजों ने फ़ैसला हमारे पक्ष में दिया।

इन साहित्य-समाजों में सभी प्रकार के विषयों पर विचार होता है। भारतवर्ष के विद्यार्थियों को तङ्ग-दिल न रह कर ऐसी ऐसी सभायें खोलनी चाहियें और राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक सभी विषयों पर विचार करना चाहिये।

३—विद्यार्थियों के अख़बार और पत्रिकायें।

प्रत्येक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा सम्पादित

दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र और पत्रिकायें निकलती हैं। सभी विद्यार्थियों को लेख लिखने और कविता करने का अवसर दिया जाता है; उनके उत्साह-वर्द्धन के लिये पदक दिये जाते हैं। अच्छी अच्छी कथायें और खोजपूर्ण लेखों के लिये पारितोषिक मिलते हैं। केवल प्रतिष्ठा और मान वृद्धि के लिये भी विद्यार्थी लेख लिखते हैं। अमरीका में जो आज बड़े बड़े धुरन्धर लिक्खाड़ हैं उन्होंने ऐसी ऐसी पत्रिकाओं द्वारा ही पहले लिखना सीखा था। फिर धीरे धीरे उन्नति करते करते वे प्रसिद्ध लेखक हो गये।

भारतवर्ष में हिन्दी के लेखक नहीं हैं। लेखक पैदा हों कैसे? ज़रा अपने यहां का हाल तो देखिये। बनारस का हिन्दू कालेज अपने आप को हिन्दुओं का प्रतिनिधि कालेज कहता है और यह डींग मारता है कि हम हिन्दुओं में क़ौमी तालीम दे रहे हैं। इनके यहां से एक पत्रिका "सेन्ट्रेल हिन्दू कालेज मेगज़ीन" नाम की निकलती है। नाम हिन्दू कालेज है। डींग क़ौमी तालीम की है; परन्तु पत्रिका अङ्गरेजी में! यह तमाशा देखिये। जब ऐसे ऐसे क़ौमी कालेजों में अङ्गरेज़ी की इस तरह बूंक हो तो भला हिन्दी लेखक कहां से पैदा हो सकते हैं? चाहिये तो यह था कि हिन्दू कालेज की ओर से हिन्दी में पत्रिका निकलती, जिसका सम्पादन कालेज के विद्यार्थी ही करते। जो विद्यार्थी चार साल कालेज में पढ़ कर हिन्दी-पत्रिका का सम्पादन करते, वे अपनी उम्र में हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक बन सकते, पर यहाँ तो अङ्गरेजी ही की पूजा मंजूर है; हिन्दी बेचारी को कौन पूछे। हाँ, कालेज के मुखिया कभी कभी अपनी सम्मति हिन्दी के पक्ष में प्रकट कर दिया करते हैं जिससे यह सिद्ध हो कि वे हिन्दी के पक्ष-

पाती हैं। हिन्दी की जड़ में तेल डालते जाइये और साथ ही अपनी सहानुभूति भी प्रकट करते जाइये। क्या ख़ूब !

४—विद्यार्थियों की कसरतें

शारीरिक उन्नति का ध्यान अमरीकन विश्वविद्यालयों में ख़ास तौर से रक्खा जाता है। प्रत्येक विश्वविद्यालय में कसरत के लिए ख़ास ख़ास इमारतें हैं; सिखाने वाले उस्ताद भी मौजूद हैं। विद्यार्थी लोग बड़े शौक़ से कसरत करते हैं। उनके हाथ पैर मज़बूत और बदन खूब चुस्त होते हैं। 'फुटबाल' और 'बेसबाल' यहाँ के प्रधान खेल हैं। अमरीकन 'फुटबाल' अंगरेज़ी 'फुटबाल' की तरह नहीं खेला जाता। अमरीकन 'फुटबाल' में चोट चपेट लगने का अधिक भय है; कई विद्यार्थियों की टाँगें टूट गई हैं। अँगरेज़ी 'फुटबाल' में पैर से गेंद को गोल के पास ले जाने का नियम है; अमरीकन 'फुटबाल' में गेंद को हाथ से पकड़ कर दौड़ते हुए जिस प्रकार हो सके उसे ले जाने का नियम है। दूसरी पार्टी का काम है कि उसको रोके और दूसरे गोल के पार पहुँचावे। बस यही लड़ाई है। अकसर विद्यार्थी गुत्थम गुत्था हो जाते हैं। आप खुद ही देख सकते हैं कि इस खेल में कितना ख़तरा है।

'बेसबाल' अंगरेज़ी 'क्रिकेट' की तरह का खेल है। यह सब जगह खेला जाता है। अङ्गरेज़ी 'क्रिकेट' के ढंग में अदल बदल करके यह खेल अमरीकन बना दिया गया है। तात्पर्य यह कि अमरीका के लोगों ने इन दो खेलों को अपने राष्ट्रीय ढंग का बना लिया है।

५—विद्यार्थी का धार्मिक जीवन

भारतवर्ष के विद्यार्थी समझते होंगे कि अमरीकन विश्व-विद्यालयों में सभी लड़के ईसाई हैं। यह बात नहीं है। ईसाई मत का अमरीका में प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। यद्यपि सभी विश्वविद्यालयों में 'यंगमेन-क्रिश्चियन-एसोसियेशन' हैं, और कई एक बाइबल-क्लासें भी हैं; परन्तु उनके आनेवाले बहुत ही थोड़े होते हैं। शिकागो में मुश्किल से तीस चालीस विद्यार्थी एसोसियेशन की सभाओं में आते हैं; आरेगन में पन्द्रह बीस बाइबल-क्लासों में आठ दस विद्यार्थियों से अधिक नहीं होते। ये जितनी एसोसियेशनें चल रही हैं, सब धनवानों के दान से। इन समाजों में लोगों को आपस में मिलने जुलने का अवसर मिलता है। एसोसियेशन का मेम्बर हो जाने से बहुत से और और फ़ायदे होते हैं। मैं ख़ुद एसोसियेशन का सभ्य था।

विश्वविद्यालयों के लड़के बड़े उदार विचारों के होते हैं। हाँ जिन्होंने अपनी उम्र में पादरी बनने की ठानी है वे लोग ज़रूर ज़रा तंगदिल होते हैं। जो विद्यार्थी गिरजे जाते हैं, वे प्राय: या तो उमदा गाना सुनने को, या किसी अपनी सहेली की ख़ातिर से, या किसी और ऐसे ही कारण से। हमारे देश के लोगों की तरह 'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्' वाली उक्ति के अनुसार ये लोग नहीं चलते। हमारे देश में ईर्षा द्वेष का साम्राज्य है। विद्या की सुलभता के कारण अमरीकन विद्यार्थियों में सहनशीलता गुण विशेष आ गया है। आप इनके मतों का जैसा चाहें खण्डन करें, वे बुरा न मानेंगे। आप के विचारों को शौक़ से

सुनेंगे। इनका धार्मिक विश्वास यह होता है कि सत्य का सिद्धान्त सभी धर्मों में है जो सत्य का जिज्ञासु है उसको किसी ख़ास पन्थ में बंधे नहीं रहना चाहिए; बल्कि जहां सत्य मिले वहीं से लेना चाहिए। बहुत लोग नास्तिक भी हैं। परन्तु मुझे मालूम होता है कि अमरीका का भावी धर्म अमली वेदान्त होगा।

६—विद्यार्थियों का सामाजिक जीवन।

यहां के विद्यार्थियों का सामाजिक जीवन हमारे लिये बिलकुल ही नया है। यहां लड़के लड़कियाँ सब इकट्ठे पढ़ते हैं। प्रायः हर लड़के की एक एक सहेली होती है जिसके साथ वह फुरसत के वक्त सैर करने या नाव चलाने का आनन्द लूटने जाता है। गरमियों के दिनों में अपनी अपनी डोंगी पर, अपनी अपनी सखी के साथ, लड़के डोंगी खेते दिखाई देते हैं। कभी दो चार मित्र मिल कर जाते हैं, और बाहर ही जङ्गल में पकाते खाते हैं। लड़कियों के सामने ये लोग बड़े अदब से बोलते चालते हैं; असभ्य शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में कभी नहीं करते। नाच के समय प्रत्येक विद्यार्थी अपनी सखी को साथ लाता है।

लड़के लड़कियों का आपस में मेल जोल कराने के लिये बहुधा सब लोग एक जगह इकट्ठे होते हैं। एक ऐसे समारोह में मुझे भी बुलावा आया था। रात को आठ बजे हम सब लोग नियत स्थान पर जमा हुये। पान के बराबर और उसी काट के मोटे मोटे काग़ज़ हमें दिये गये; उनके साथ साथ छोटी छोटी पेन्सिलें लटकती थीं। हर लड़का उस पान को लेकर जुदा जुदा लड़कियों से दस्तख़त करवाता और आप

भी उनके पानों पर हस्ताक्षर करता था। मैंने भी संकोच त्याग दस लड़कियों से अपने पान पर दस्तख़त करवाये। इसका मतलब यह था कि जिन दस लड़कियों के साथ मेरी बातचीत होने को थी, उनका निश्चय आरम्भ से ही लड़कियों ने आपस में मिलकर कर लिया था। मेरे साथ जिन लड़कियों ने बातें कीं, उन्होंने असली विषय छोड़ कर मुझसे हिन्दुस्तान ही की बातें पूछीं। खैर, जब यह वार्तालाप खतम हुआ तब हर एक को एक एक काग़ज़ उस वार्तालाप का सार लिखने के लिए दिया गया। इसके बाद फिर पेट-पूजा आरम्भ हुई, और हँसते खेलते सभा विसर्जित हुई।

जैसा मैं पहिले लिख चुका हूं कि अमरीकन विद्यार्थी हँसी दिल्लगी बहुत पसन्द करते हैं। जो चुटकलेबाज़ हुआ उसकी तो समझो पांचों अँगुलियां घी में हैं। ऐसे विद्यार्थी की खूब बन आती है। यदि वह पढ़ने लिखने में भी होशियार हो तो फिर कहना ही क्या। लड़कियों का वह प्यारा, सभा समाजों में वह मुखिया—हर जगह उसकी क़दर होती है।

एक बात और भी लिखने लायक़ है। अमरीका विश्व-विद्यालयों में दो शब्द बहुत प्रसिद्ध हैं। एक 'Rough-House' (रफ़-हाउस), दूसरा 'Bath tub' (बाथ-टब)। आप जानते हैं पहले से क्या मतलब है? जब कभी-कोई शरारती विद्यार्थी किसी दूसरे छात्र का कमरा सूना पाता है तब वह उसकी सब किताबें इधर उधर करके, उसके कपड़ों का एक ढेर लगा, मेज़ को उलटी कर, उसके ऊपर कुरसियां खड़ी कर, चुपचाप दरवाजा बन्द करके चला जाता है। जब वह विद्यार्थी अपने कमरे में आता है, और यह दशा देखता है तब चुपचाप अपनी

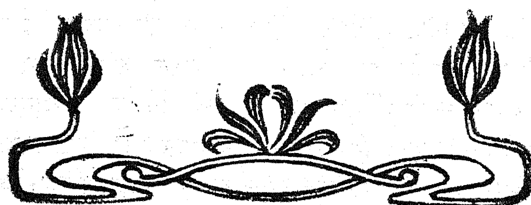
चीज़ें आरास्ता करने में लग जाता है। बेचारा न गुस्सा करता है, न गाली देता है। दूसरे दिन केवल अपने मित्रों में वह यही कहेगा कि कल न जाने किसने मेरे कमरे में 'Rough-House' किया था। रफ़-हाउस का शाब्दिक अर्थ है—भद्दा घर।

बाथ-टब एक प्रकार का दण्ड विद्यार्थियों के लिए है। जो शरारती विद्यार्थी पकड़ा जाता है उसको नहाने के 'टब' में डाल कर ठण्डे पानी से उसे कपड़ों सहित भिगो देते हैं। यों भी जब शरारत का भूत बहुत से विद्यार्थियों पर सवार होता है तब पानी की बालटियां भर भर कर होली मचाते हैं। मैं भी तीन बार इनके पञ्जे में फँसा था। जहां आदमी रहता है वहां की सब बातें थोड़ी बहुत उसके हिस्से में आती ही हैं। मैं अमरीका में अमरीकन छात्रों ही में रहा था, अन्य हिन्दू छात्रों की तरह अलग मकानों में नहीं रहा। विश्वविद्यालय के अहाते के बीच में जो कमरे विद्यार्थियों के रहने के लिये होते हैं वहीं रहता था; इससे भला बुरा सभी देखने में आया।

अमरीकन विद्यार्थियों को कालेजों में ही सच्ची देशभक्ति और प्रतिनिधिसत्ताक राज्य की महिमा सिखाई जाती है। अपने अपने विद्यालयों से विद्यार्थियों का प्रगाढ़ प्रेम है। हर विश्वविद्यालय के प्रभावोत्पादक भजन और राग जुदा जुदा हैं, जिनको विद्यार्थी खेलों और त्योहारों के अवसर पर गाते हैं। विश्वविद्यालय में जितने ऐसे ओहदे हैं, जिनका सम्बन्ध विद्यार्थियों से है, उनका चुनाव हर साल विद्यार्थियों ही का 'वोट' के अनुसार होता है। फ़र्ज़ करो, किसी पत्रिका के लिये नया सम्पादक चुनना है, और तीन योग्य विद्यार्थी उसके

अभिलाषी हैं तो उसका फैसला सब विद्यार्थियों के वोट के मुताबिक़ होगा। फुटबाल का कप्तान, विद्यार्थि-समिति का मन्त्री तथा दूसरे कार्य्याध्यक्षों का चुनाव लड़के खुद ही करते हैं। बड़े होकर यही लोग देश के बड़े बड़े काम करने की योग्यता दिखाते हैं। भारतवर्ष में भी यही होना चाहिये।

हम लोगों को बहुत सी बातें अमरीका से सीखनी हैं। लोग शिकायत करते हैं कि देश में नई नई बातों की खोज निकालने वाले नहीं पैदा होते। पैदा कैसे हो सकते हैं जब आप विद्यार्थियों को उचित शिक्षा ही नहीं देते। भारत के कालेजों में पढ़ने वाला ऐसा कौन विद्यार्थी होगा जिसके मन में अपने देश की दशा का कारण जानने की अभिलाषा न उत्पन्न होती हो। विद्यार्थियों की उठती हुई लहरों को दबाने का यत्न करना बहुत बड़ा पाप है। आओ, अपने विद्यार्थियों की दशा सुधारो; उनको अपने देश और अपनी मातृभाषा का सेवक बनाओ; उनकी शारीरिक अवस्था को उन्नत करो; और जिन बातों का जानना देशोन्नति का प्रधान साधन समझा जाता है, उन्हें सिखाने में कभी आगा पीछा न करो।



सियेटल का एक दुकान्दार



मरीका में हर एक क़िस्म के पेशे को वैज्ञानिक ढांचा पहिनाने का यत्न किया जाता है। किसी क़िस्म का काम हो, उसके स्कूल खुले हैं, जहाँ उक्त काम के लिये लोग तैयार किये जाते हैं। अमरीका तिजारती देश है। जो चीज़ें कलों द्वारा तैयार होकर बाज़ारों में बिकने आती हैं वे कैसे जल्दी और सहज में बेची जा सकती हैं, इसके नये नये ढङ्ग हैं। जो उन ढङ्गों से वाक़िफ़ है वही अपना माल खूब बेच सकता है। बड़ी बड़ी कोठियों की ओर से ऐसे ही लोग नियत रहते हैं जो दूकान, बाज़ार, देहात तथा नगरों में घूम घूम कर सौदा बेचते हैं। इनको अंग्रेज़ी में सेल्समैन (Salesmen) कहते हैं। अपनी भाषा में, जो दूकान पर सौदा बेचने वाले रहते हैं उनको गुमाश्ते, और घूम कर बेचने वालों को फेरीवाले कहना ठीक होगा। ख़ैर मेरा काम यहाँ पर गुमाश्तों से है। ये लोग ग्राहक को सौदा बेचने में बड़े उस्ताद होते हैं। कोई ग्राहक ख़ाली न जाये, यही इनका सिद्धान्त रहता है।

सियेटल में एक बार मैं कार्य्यवश विश्वविद्यालय से शहर गया। दो बजे दिन का समय था। काम पूरा करके मैंने सोचा कि आज फ़ुरसत है, किसी दूकान में घूम कर 'सूट' ठीक करूँ। मेरे पास एक ही सूट था जो तीन साल लगातार पहिनने से काम लायक़ नहीं रहा था। पास ख़रीदने को पैसा तो था नहीं,

मगर मैंने यह सोचा कि काम लायक एक जोड़े की कीमत मालूम हो जाने से रुपये का प्रबन्ध कर लूँगा। यह विचार कर मैं एक बहुत बड़ी दुकान में घुसा। इस दुकान में भी, जैसा कि अमरीका के दुकानदारों का क़ायदा है, अच्छे अच्छे सूट कम कीमत की चिट्ठियां लगाकर शीशे की खिड़कियों में बाहर घूमने वालों को फँसाने के लिये रक्खे हुए थे और असल में मैं भी बाहर से ही कम कीमत देख कर ख़ाली जेब ही दुकान के अन्दर घुस गया था। एक बाँके रसीले ने मुझे और मेरे कपड़े देखे तो भाँप गया कि इसको सूट की सख़्त ज़रूरत है और बड़ी नम्रता से आकर मुझसे पूछा—

बाँका—"आपको सूट की ज़रूरत है?"
मैं—"हाँ।"
बाँका—"कैसा सूट आप को दरकार है?"
मैं—"ऐसा ही काम लायक।"

"अच्छा आइए"—कह कर वह मुझे जहाँ सूट रक्खे हुए थे ले गया और एक रद्दी सूट निकाल कर मुझे पहनाने लगा।
मैं—"मुझे यह सूट न चाहिये।"
बाँका—"आप पहिनिए तो सही, बहुत अच्छा नफ़ीस सूट।"
मैं—"नहीं, मुझे यह न चाहिये।"

इस पर उसने एक अच्छा सूट निकाल कर मुझे दिखाया और कहा—

बाँका—"यह तो आपको ज़रूर ही पसन्द होगा। पच्चीस डालर का यह सूट है, आप को बीस में ही दे देंगे।"

मैंने इस तरह के सूट बाहर के शीशों से दस डालर दाम पर लिखे देखे थे। जब उस धूर्त ने दस डालर के सूट के बीस

बताये तो मैंने दिल में सोचा कि क्यों समय खोते हो। अपने पास रुपया नहीं है और अगर हो भी तो इस से दाम न पटेगा। बेहतर है किसी जानकार के साथ आवेंगे। यह मन में सोच मैंने बाहर जाने का रुख़ किया। मगर वह बांका जवान कहां जाने देता था। वह बोला—

"आइए साहिब, आपको यह पसन्द नहीं तो दूसरा सूट दिखलाता हूं। यहां हर तरह के सूट हैं।"

उसने यह सब ऐसे ढंग से कहा कि मैं उसके साथ और सूट देखने में लग गया। जब वे सूट मेरे पसन्द न आये और मैंने उससे कहा कि मुझ को जाने दो, फिर कभी आकर देखूँगा, तब वह एक अजीब तरीके से मुझको अपने साथ ले चला और मीठी मीठी बातों में उसने लगा लिया। उस समय मैंने सोचा कि आज अमरीका के फेरीवालों तथा दूकानदारों के हथकण्डे देखते चलो। पैसा तो बन्दे के पास है ही नहीं। यह सोचता और बातें करता मैं उसके साथ चला ही तो गया।

उस दुकान के दूसरी तरफ़ बहुत सा माल रक्खा था, और वहां भी चालाक गुमाश्ते ग्राहकों का सिर मूड़ने में व्यस्त थे। उस बांके वीर ने मुझे एक बहुत ही निपुण बेचने वाले के सिपुर्द किया और मेरा परिचय करवाकर कहा कि इनको सूट दिखला दो। मैंने भी चित्त में कहा—"अच्छा धूर्तो। तुम मेरा भी समय खोवोगे और अपना भी।" ख़ैर लगा सूट दिखलाने।

उसने तरह तरह के सूट दिखलाने शुरू किये और लगा बातों में मुझे रिझाने, पर यहां तो जेब ही खाली थी; रीझते तो कैसे रीझते। खाली जेब, कोई न कोई नुक़्स सूट में निकाल ही देते। जब वह सूट दिखाता दिखाता परेशान हो गया तब झुँझला कर बोला—

मगर मैंने यह सोचा कि काम लायक एक जोड़े की कीमत मालूम हो जाने से रुपये का प्रबन्ध कर लूँगा। यह विचार कर मैं एक बहुत बड़ी दुकान में घुसा। इस दुकान में भी, जैसा कि अमरीका के दुकानदारों का क़ायदा है, अच्छे अच्छे सूट कम कीमत की चिट्ठियां लगाकर शीशे की खिड़कियों में बाहर घूमने वालों को फँसाने के लिये रक्खे हुए थे और असल में मैं भी बाहर से ही कम कीमत देख कर ख़ाली जेब ही दुकान के अन्दर घुस गया था। एक बाँके रसीले ने मुझे और मेरे कपड़े देखे तो भाँप गया कि इसको सूट की सख़ ज़रूरत है और बड़ी नम्रता से आकर मुझसे पूछा—

बाँका—"आपको सूट की ज़रूरत है?"
मैं—"हाँ।"
बाँका—"कैसा सूट आप को दरकार है?"
मैं—"ऐसा ही काम लायक।"

"अच्छा आइए"—कह कर वह मुझे जहाँ सूट रक्खे हुए थे ले गया और एक रद्दी सूट निकाल कर मुझे पहनाने लगा।
मैं—"मुझे यह सूट न चाहिये।"
बाँका—"आप पहिनिए तो सही, बहुत अच्छा नफ़ीस सूट।"
मैं—"नहीं, मुझे यह न चाहिये।"

इस पर उसने एक अच्छा सूट निकाल कर मुझे दिखाया और कहा—

बाँका—"यह तो आपको ज़रूर ही पसन्द होगा। पचीस डालर का यह सूट है, आप को बीस में ही दे देंगे।"

मैंने इस तरह के सूट बाहर के शीशों से दस डालर दाम पर लिखे देखे थे। जब उस धूर्त ने दस डालर के सूट के बीस

बताये तो मैंने दिल में सोचा कि क्यों समय खोते हो। अपने पास रुपया नहीं है और अगर हो भी तो इस से दाम न पटेगा। बेहतर है किसी जानकार के साथ आवेंगे। यह मन में सोच मैंने बाहर जाने का रुख़ किया। मगर वह बांका जवान कहां जाने देता था। वह बोला—

"आइए साहिब, आपको यह पसन्द नहीं तो दूसरा सूट दिखलाता हूं। यहां हर तरह के सूट हैं।"

उसने यह सब ऐसे ढंग से कहा कि मैं उसके साथ और सूट देखने में लग गया। जब वे सूट मेरे पसन्द न आये और मैंने उससे कहा कि मुझ को जाने दो, फिर कभी आकर देखूँगा, तब वह एक अजीब तरीके से मुझको अपने साथ ले चला और मीठी मीठी बातों में उसने लगा लिया। उस समय मैंने सोचा कि आज अमरीका के फेरीवालों तथा दूकानदारों के हथकण्डे देखते चलो। पैसा तो बन्दे के पास है ही नहीं। यह सोचता और बातें करता मैं उसके साथ चला ही तो गया।

उस दुकान के दूसरी तरफ़ बहुत सा माल रक्खा था, और वहां भी चालाक गुमाश्ते ग्राहकों का सिर मूड़ने में व्यस्त थे। उस बांके वीर ने मुझे एक बहुत ही निपुण बेचने वाले के सिपुर्द किया और मेरा परिचय करवाकर कहा कि इनको सूट दिखला दो। मैंने भी चित्त में कहा—"अच्छा धूर्तो। तुम मेरा भी समय खोवोगे और अपना भी।" ख़ैर लगा सूट दिखलाने।

उसने तरह तरह के सूट दिखलाने शुरू किये और लगा बातों में मुझे रिझाने, पर यहां तो जेब ही खाली थी; रीझते तो कैसे रीझते। खाली जेब, कोई न कोई नुक्स सूट में निकाल ही देते। जब वह सूट दिखाता दिखाता परेशान हो गया तब झुँझला कर बोला—

गुमाश्ता—"आप को कैसा सूट चाहिए। कुछ मुंह से भी तो कहिये।"

मैं—(मुसकुराकर) "खफ़ा न हूजिये हज़रत! मुझे अब जाने दीजिए। मेरी मरज़ी के लायक़ चीज़ मिलेगी तो दाम देकर ले लूंगा।"

गुमाश्ता—"आप मेरी नौकरी छुटाने तो यहां नहीं आये?"

मैं—(ज़रा हैरानी से) "यह कैसे?"

गुमाश्ता—"क्यों नहीं? यदि मैं आप को सूट न बेच सका तो मेरा मालिक समझेगा कि मैं इस काम के लायक़ नहीं हूं, और मुझे निकाल देगा। (नम्रता से) आइए, आप दूसरा सूट देखिये।" फिर वह लगा सूट दिखलाने।

मैंने उससे कहा—"जिस क़िस्म का मैं सूट चाहता था वैसा सूट दस डालर के दाम का बाहर खिड़कियों में है, पर वैसे सूट के यहां तुम लोग पन्द्रह और बीस डालर मांगते हो।" उसने जवाब दिया—

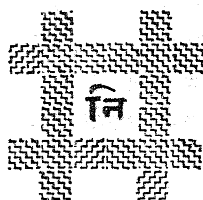
"उस कपड़े और इस कपड़े में फ़रक़ है।"

अब फ़रक़ का झगड़ा कौन करे। जब उसने देखा कि वह मुझे कोई सूट बेच नहीं सकता, और कोई भी सूट मेरे पसन्द नहीं आता तब दूसरे दरवाज़े के पास ले जाकर मुझसे ग़ुस्से से बोला—

"अच्छा जाइए। अगर आप जैसे दो चार ग्राहक आ जायँ तो हमारी दूकानदारी ख़ाक ही में मिल जाय।"

"मैं तो पहले ही जाता था। आप लोगों ने मेरा भी समय नष्ट किया और अपना भी।"

'सियटल' या 'सेटल'



नियमपूर्वक बारह बजे के बाद मैं डाकखाने में डाक लेने गया था। उस दिन कई एक चिट्ठियां आई हुई थीं। सियेटल से भी एक चिट्ठी मिली जिसका मुझे बड़ा इन्तज़ार था। उस पत्र को पढ़ कर मैंने सियेटल जाना निश्चय किया क्योंकि वहां एक बड़ा ज़रूरी काम था।

जिस कमरे में मैं रहता था मुझे उसका किराया छः रुपये साप्ताहिक देने पड़ते थे। आज शनिवार था और आज ही मेरा सप्ताह पूरा होता था। इसलिये अपने कमरे को लौट किवाड़ लगा मैं ज़रूरी चिट्ठियों का उत्तर देने में लग गया, ताकि शीघ्र ही अपने काम से छुट्टी पा जाने की तैयारी करूँ। मैं बैठा लिख रहा था कि किसी ने मेरा दरवाजा खटखटाया। मैंने कहा—

"अन्दर आइये।"

दरवाज़ा खुला और घर की मालकिन अन्दर आकर बोली—

"क्या आप दूसरे सप्ताह के लिये कमरा रक्खा चाहते हैं?" नम्रता से मैंने उत्तर दिया—

"मैं आज शाम को सियेटल जा रहा हूं—I am going to Seattle (सेटल) this evening."

"बहुत अच्छा" यह कह कर वह रमणी धीरे से दरवाज़ा

बन्द कर नीचे चली गई और मैं फिर अपने काम में लग गया।

* * * *

संध्या होगई थी। गाड़ी के जाने में एक घंटा रह गया था। अपने कपड़े बेग में डाल, अपनी सब चीज़ें सम्भाल मैंने चलने की तय्यारी की। हाथ में बेग और छाता ले मैं नीचे उतरा। घर की मालकिन नीचे ड्योढ़ी में खड़ी थी। जब उसने मुझे देखा तो हैरान हो बोली—

"आप कहां जा रहे हो? Where are you going?" मैंने अपनी टोपी उतार बड़े अदब से उत्तर दिया--"मैं सियेटल जा रहा हूं--I am going to Seattle." गुस्से भरे शब्दों में वह रमणी झुंझला कर बोली—"आपने आज शाम को फैसला करने को कहा था। You said you were going to settle this evening."

अब मेरी बारी हैरान होने की थी। मैंने ज़रा ज़ोर से उत्तर दिया—

"नहीं, मैंने कहा था कि मैं आज शाम को सियेटल जाऊंगा--No, I said, I was going to Seattle this evening."

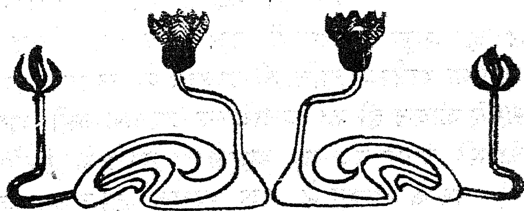
मेरा रास्ता घेर वह रमणी खड़ी होगई और बोली--"आप अपने आप को बड़ा होशियार समझते हैं, परन्तु आप मुझे बेवकूफ़ नहीं बना सक्ते–Yon think you are very smart, buf you can' t fool me." मैंने नम्रता से उत्तर दिया—

"क्षमा कीजिये, देवी! मेरा हरगिज़ इरादा आपको धोखा देने का नहीं था। यह भूल केवल मेरे विदेशी उच्चारण के होने

के कारण हुई बोध होती है–Pardon me, Lady ! I did not mean to deceive you. I think it is my foreign accent which gave you wrong impressien" उस रमणी का क्रोध कुछ शान्त हुआ और पीछे हट कर बोली—

"आप से मुझे डेढ़ रुपया वसूल करना था। मगर अब मैं जाने देती हूँ। क्योंकि आप एक अजनबी पुरुष हैं, आप 'सियेटल' को 'सेटल' कह सकते हैं।"

उस स्त्री से जान छुड़ा मैं बाहर आया, और सारा रास्ता 'सियेटल' की और 'सेटल' की दिल्लगी पर हँसता रहा।



बन्द कर नीचे चली गई और मैं फिर अपने काम में लग गया।

* * * *

संध्या होगई थी। गाड़ी के जाने में एक घंटा रह गया था। अपने कपड़े बेग में डाल, अपनी सब चीज़ें सम्भाल मैंने चलने की तय्यारी की। हाथ में बेग और छाता ले मैं नीचे उतरा। घर की मालकिन नीचे ड्योढ़ी में खड़ी थी। जब उसने मुझे देखा तो हैरान हो बोली—

"आप कहां जा रहे हो? Where are you going?" मैंने अपनी टोपी उतार बड़े अदब से उत्तर दिया—"मैं सियेटल जा रहा हूं—I am going to Seattle." गुस्से भरे शब्दों में वह रमणी झुंझला कर बोली—"आपने आज शाम को फैसला करने को कहा था। You said you were going to settle this evening."

अब मेरी बारी हैरान होने की थी। मैंने ज़रा ज़ोर से उत्तर दिया—

"नहीं, मैंने कहा था कि मैं आज शाम को सियेटल जाऊंगा—No, I said, I was going to Seattle this evening."

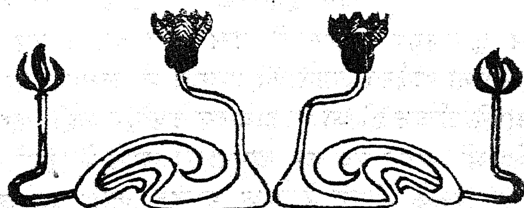
मेरा रास्ता घेर वह रमणी खड़ी होगई और बोली—"आप अपने आप को बड़ा होशियार समझते हैं, परन्तु आप मुझे बेवकूफ़ नहीं बना सक्ते—You think you are very smart, buf you can' t fool me." मैंने नम्रता से उत्तर दिया—

"क्षमा कीजिये, देवी! मेरा हरगिज़ इरादा आपको धोखा देने का नहीं था। यह भूल केवल मेरे विदेशी उच्चारण के होने

के कारण हुई बोध होती है-Pardon me, Lady I I did not mean to deceive you. I think it is my foreign accent which gave you wrong impressien" उस रमणी का क्रोध कुछ शान्त हुआ और पीछे हट कर बोली—

"आप से मुझे डेढ़ रुपया वसूल करना था। मगर अब मैं जाने देती हूँ। क्योंकि आप एक अजनबी पुरुष हैं, आप 'सियेटल' को 'सेटल' कह सकते हैं।"

उस स्त्री से जान छुड़ा मैं बाहर आया, और सारा रास्ता 'सियेटल' की और 'सेटल' की दिल्लगी पर हँसता रहा।



न्यूयार्क नगरी में वीर गैरीवाल्डी

"There is around the name of Garivaldi a halo which nothing can extinguish. A whole life devoted to one object—his country; consecrated by deeds of honor first abroad, and then at home; valor and constancy more than admirable; simplicity of life manners wchich recalls the man of antiquity; all the most mournful trials and losses manfully endured; glory and poverty! Eevery particular relating to such a man is precious" Mazzini.



ह पुरुष इस संसार में धन्य है जिसको जाति और देशोन्नति की लगन हो। कौन ऐसा है जो मृत्यु के मुख से बच सकता है? कौन ऐसा है जिसको सारा सांसारिक ऐश्वर्य नहीं छोड़ जाना है? कौन ऐसा है जो यहां सदा बैठा रहेगा? एक न एक दिन हम सब को एक ही मार्ग से जाना है। इस क्षणभंगुर संसार में उस पुरुष का जीवन धन्य है जिसने अपना सर्वस्व जाति की उन्नति में लगाया हो। ऐसा पुरुष अपने जीवन ही का यथायोग्य उपयोग नहीं करता, वह औरों को भी अपने पथ का अनुसरण करने के लिये आह्वान करता है। उसके जीवन में एक अद्भुत शक्ति आ जाती है। उसके मुँह से निकले हुए शब्द मुर्दा दिलों में भी जान डाल देते हैं! उसका नाम पावन करने वाला हो जाता है। उसके जीवन की घटनाएँ शिक्षा-प्रद हो जाती हैं। उसका यश अपने ही देश में नहीं, द्वीप द्वीपान्तरों तक में फैल जाता है। वह मनुष्य

मात्र के सम्मान का भाजन बन जाता है। सारा संसार ऐसे पुरुष का हृदय से अभिनन्दन करता है। जहाँ जहाँ वह जाता है, जहाँ जहाँ वह रहता है, वे स्थान उसके स्पर्श से पवित्र हो जाते हैं। जिन मनुष्यों के साथ वह ज़रा भी वार्तालाप करता है वे भी उसके संग से तर जाते हैं।

ओहो ! देश की सेवा की बड़ी विचित्र महिमा है ! फिर ऐसे देश की सेवा और ऐसी जाति के उद्धार की चेष्टा क्यों न पुण्यकारिणी होगी जो देश और जाति किसी काल में गौरवान्वित रही हो ; जिस देश में प्रकृति ने अपना पूरा सौन्दर्य्य दिखाया हो ; जहाँ के पर्वत, नदियाँ, स्रोत, वृक्ष देश की श्रेष्ठता का प्रमाण हों। जिस देश की रत्ती रत्ती ज़मीन महात्माओं के रक्तपात से सिञ्चित हुई हों ! ऐसे पुण्यशाली देश में उत्पन्न होकर भी जो मनुष्य उसकी अधःपतित अवस्था के सुधारने में तन, मन, धन नहीं समर्पण कर देता उसका जीवन मातृभूमि के लिए व्यर्थ बोझा है।

हमारे पाठकों में से बहुतों ने प्रसिद्ध पञ्जाबी "लीडर" लाजपतराय जी लिखित महात्मा गैरीवाल्डी का जीवन-चरित पढ़ा होगा। जिन्होंने नहीं पढ़ा उनसे हम निवेदन करते हैं कि वे उसे अवश्य पढ़ें। उस जीवनी में विद्वान लेखक ने रोचक और सुललित भाषा में महात्मा गैरीवाल्डी के देशहित की गाथा गाई है। मातृभूमि की सेवा में उस वीर ने क्या क्या कष्ट उठाये और किस प्रकार उसके उद्धार की चेष्टा की, इसका सविस्तार वर्णन उसमें है। आज हम अपने पाठकों को वीर गैरीवाल्डी के जीवन के उस अंश का हाल सुनाते हैं जो उन्होंने अमेरिका में व्यतीत किया था। पाठक देखें कि स्वदेश-प्रेम की महिमा कैसी अद्भुत होती है।

अमरीका के प्रधान नगर न्यूयार्क में क्लीफ़्टन स्टेटन-आइ-लैंड (Clifton Staten Island) नामी एक मुहल्ले की एक तंग गली में एक घर है। उसमें इस समय कोई नहीं रहता। उसके दरवाज़े पर संगमरमर की पटिया पर ये शब्द खुदे हैं—

Qui Visse Esule Dal 185I Al 1853
Giuseppe Garivaldi
L' Erœ Due Monai
8 Marzo 1884 Alcuni Amici Posero.

यह मकान बनावट में बहुत साधारण है परन्तु इसमें एक अद्भुत आकर्षण-शक्ति है। कोई पचास साठ साल से इटली और योरुप के भिन्न भिन्न भागों से यात्री लोग यह मकान देखने आते हैं। यहाँ महात्मा गैरीवाल्डी ने अपने जीवन के कुछ दिन काटे थे। अतएव उस पवित्रात्मा के स्पर्श से यह घर देवालय बन गया है। न्यूयार्क की अभ्रङ्कषा अट्टालिकाएँ, भव्य भवन, आश्चर्यजनक बिजली के आविष्कार, यात्रियों का ध्यान नहीं खींचते, पर यह बेढंगा सा घर उनके मन को मोह लेता है।

गैरीवाल्डी की प्रतिष्ठा और सम्मान केवल योरपवासी ही नहीं करते, किन्तु अमरीका निवासी भी उनको पूज्य समझते हैं। उनको "Hero of the Two Worlds" अर्थात् नई और पुरानी दोनों दुनियाओं का वीर कहते हैं। २३ अगस्त १८८८ को अमरीका की राजधानी वाशिंगटन में जो जलसा, गैरीवाल्डी की मूर्ति सर्वसाधारण को समर्पण करने के उपलक्ष में, हुआ था उसमें यहाँ के संयुक्त राज्यों की सेनेट के सभ्य एवेर्ट्स ने कहा था—

"गैरीवाल्डी दो वर्ष तक न्यूयार्क में रहे। वहीं उनका परिचय अमरीकन लोगों से हुआ। वे अपने शुद्धाचरण के कारण उस समय भी सबके आदरपात्र थे। यद्यपि तब तक कोई ख़ास काम उन्होंने नहीँ किया था, तथापि, अधिकांश लोगों को पूर्ण आशा थी कि इटली के उद्धार के लिए अवश्य ही सिरतोड़ कोशिश करेंगे। आज वह बात सच निकली। आज गैरीवाल्डी का नाम, उनका पवित्र यश, संसार में सब कहीं फैल रहा है और जब तक देशहित और स्वतन्त्रता के उच्च आदर्श मनुष्यों के हृदयों में अङ्कित रहेंगे, गैरीवाल्डी का नाम भी संसार में बना रहेगा।"

१८५० का साल गैरीवाल्डी* के जीवन में बहुत ही शोचनीय था। वे इटली के निवासी थे। १८४८ में इटली की

*गैरीवाल्डी ४ जुलाई १८०७ को इटली के नाइस (Nice) नगर में उत्पन्न हुए। पहले पहल इटली के जङ्गी जहाज़ों पर इन्होंने काम किया। १८३४ में देशहितैषी मेज़िनी की गुप्त सभा (Young Italy) के ये मेम्बर हुए। इटली की गवर्नमेंट ने जब देशहितैषियों को क़ैद करना आरम्भ किया, तब गैरीवाल्डी दक्षिणी अमेरिका में भाग आये। वहां राओ ग्रांडे (Rao Grand do Sul) प्रजासत्ताक राज्य की सेवा करते रहे। १८४८ में फिर इटली गये और अचिरस्थाई रोम के प्रजासत्ताक राज्य की रक्षा के लिए लड़ते रहे। १८५० में फिर जिलावतनी की दशा में न्यूयार्क आये। १८५४ में फिर इटली वापिस गये और सपेरा द्वीप में रहने लगे। १८५९ में सारडीनिया और फ्रांस ने जो आस्ट्रिया से युद्ध किया था उसमें सेनापति होकर ये लड़ते रहे। १८६० में इन्होंने सिसिली पर धावा कर नेपल्स नगर लिया। १८६१ में फिर सपेरा चले गये। १८६२ में इन्होंने रोम के विरुद्ध चढ़ाई की, परन्तु इनकी हार हुई। १८६६ में इन्होंने आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध किया।

रक्षा के लिए जो युद्ध उन्होंने किया था, उसमें वे कृतकार्य्य न हुए। बारह वर्ष तक दक्षिणी अमरीका के पारस्परिक युद्ध में यशोलाभ करने के बाद अपने देश के शत्रुओं से परास्त होना इनके लिए बहुत ही असह्य था। परन्तु इस वीर ने हिम्मत नहीं हारी! आस्ट्रिया की विजयी सेना का छोटे छोटे युद्ध करके इन्होंने नाकों दम कर दिया। इन की धर्म्म पत्नी अनीता (Anita) प्रत्येक युद्ध में पति के साथ रही और अन्त को रेवेना की दलदल में उस वीरांगना का प्राणान्त हुआ।

गैरीवाल्डी इटली से भाग कर, १८५० के जून में न्यूयार्क पहुँचे। न्यूयार्क में उस समय आस्ट्रिया, नेपल्स, रोम आदि देशों के बहुत से सज्जन भाग कर आये थे; स्वतन्त्रता की आग उन देशों में प्रज्वलित हो चुकी थी। स्वार्थी राजा उस के बुझाने में अपना सारा बल लगा रहे थे पर आज़ादी के सच्चे सेवक अपना तन, मन, धन अर्पण करके उसकी रक्षा में मग्न थे। सो न्यूयार्क में गैरीवाल्डी को बहुत से मित्र मिल गये। उनमें से एक का नाम मिकल पेसेकाल्डी था। गैरीवाल्डी उसी के यहां ठहरे।

उसी के यहाँ इनकी थियोडोर ड्वाइट से भेंट हुई, जिस

१८६७ में पोप (रोमन केथोलिक क्रिश्चियनियों के गुरु) के अन्यायों को दूर करने का यत्न किया, परन्तु सफलता न हुई। १८७० में फ्राँस के अधीन होकर प्रुशिया से लड़े। १८७१ में फ्राँसीसी "डिपुटीचेम्बर" के पद पर चुने गये। १८७४ में इटली की पार्लियामेंट में दाखिल हुए और बहुत से सुधार के कार्य्य किये। १८८२ के जून की दूसरी तारीख को सवेरी में इनका देहान्त हुआ—लेखक।

को गैरीवाल्डी ने अपने जीवन की घटनाओं का सारा हाल बतलाया और तत्सम्बन्धी काग़ज़ पत्र भी दिये। गैरीवाल्डी की अवस्था इस समय ४३ वर्ष की थी। शरीर इनका बहुत मज़बूत था। दक्षिणी अमरीका में इतना शारीरिक श्रम और कष्ट उठाने पर भी इनका शरीर आरोग्य नवयुवकों के समान था। थियोडोर ड्वाइट से इन्होंने कह दिया था कि अपने जीवन का जो वृत्तान्त मैंने तुम से कहा है उसकी सहायता से मेरी जीवनी अभी मत प्रकाशित करना, किन्तु किसी सुअवसर की प्रतीक्षा करना। वह सुअवसर नौ वर्ष बाद आया, जब गैरीवाल्डी ने एल्पी के युद्ध में अपना वीरत्व, देश प्रेम और युद्ध कला कौशल दिखाकर संसार को चकित किया।

थोड़े रोज़ बाद गैरीवाल्डी ने क्लिफ़्टन मोहल्ले में रहने का प्रबन्ध किया। रहने का ठीक ठाक हो जाने पर एक दिन उनके पास बहुत से मित्र बैठे थे। उन्होंने कहा—

"Here we are, a colony of Italian exiles, with nothing to do but talk. Now, our talk is never going to free Italy. It is this, striking out a herculean blow from the sheulder. We must wait our opportuuity. and in the mean time, get to work.

"देखिए, यहां पर कितने ही जिलावतन इटली-निवासी बैठे हैं जिनका काम सिवा बातों के और कुछ नहीं। पर ख़ाली बातों से इटली स्वतन्त्र नहीं होगी। यही (अपना भीमसेनी मुक्का दिखलाकर) कुछ करेगा हमें मौक़े का इन्तज़ार करना चाहिये और तब तक कुछ करते रहना चाहिये।"

किसी प्रकार का काम हो, गैरीवाल्डी उसे करने को उद्यत थे। काहिली और सुस्ती से उन्हें घृणा थी। अपने मित्र

मित्रों की सलाह से इन्होंने एक छोटा सा कारख़ाना खोला, जहाँ पर देशहितैषी सज्जन मज़दूरों की तरह काम करते थे और दुखी, निर्धन लोगों को अपने व्यवसाय से सहायता करते थे।

इस कारख़ाने से काफ़ी आमदनी न होती देख गैरीवाल्डी ने बत्ती बनाने का एक कारख़ाना खोला। उसमें गैरीवाल्डी साधारण मज़दूर की तरह काम करते थे। वे मजबूर हो कर ऐसा नहीं करते थे, किन्तु एक उत्तम उदाहरण सिखाने से तात्पर्य्य था। दूसरे आदमी जब अपने नेता को मज़दूरी का काम करते देखते थे तब वे भी बड़े उत्साह से कठिन से कठिन मेहनत मज़दूरी से न घबराते थे। इन्हीं गुणों से गैरीवाल्डी सर्वप्रिय हो गये थे।

यद्यपि गैरीवाल्डी एक बहुत ही नामालूम दशा में रहते थे, और इनका मकान भी एक बे-आबाद से मुहल्ले में था, तथापि इनके सञ्चित पुण्य की सुगन्ध न्यूयार्क नगर में चारों तरफ़ फैल गई। शहर के बड़े बड़े धनाढ्य और प्रसिद्ध पुरुषों ने आपके सम्मानार्थ एक बड़ा जलसा करने की इच्छा प्रकट की और आप को न्योता भेजा। महात्मा गैरीवाल्डी ने बड़े नम्रता से उनको उत्तर दिया। पहिले उनकी इस उदारता का धन्यवाद करके अन्त में आपने कहा—

"यद्यपि सर्वसाधारण के सामने आप लोगों का प्रेम प्रकट करना मेरे लिए अति उत्साह बर्द्धक होगा, क्योंकि मैं अपने देश से निकाला हुआ बाल बच्चों से जुदा, अपने देश इटली की स्वतन्त्रता नष्ट होने के दुख में ग्रस्त हूँ; परन्तु आप विश्वास कीजिये कि मैं इस सार्वजनिक प्रतिष्ठा के बिना

ही प्रसन्न हूं। मेहनत मज़दूरी से पेट भर कर इस इतने बड़े प्रजा-सत्ताक राज्य अमरीका का निवासी होना ही मेरे लिए क्या कम गौरव का काम है? मैं अमरीका के झण्डे के नीचे रह कर इसकी सेवा करता हुआ अपना पेट भरूँगा और अपने प्यारे देश को उसके अन्दरूनी और बेरूनी शत्रुओं से मुक्त करने के लिये शुभ अवसर की प्रतीक्षा करता रहूंगा।"

क्लिफ्टन वाले घर में गैरीवाल्डी अपना सारा समय बत्ती के काम में ही ख़र्च नहीं करते थे, किन्तु फुरसत मिलने पर अपने जीवन की घटनाओं को इतिहास के रूप में लिखते भी जाते थे। अपनी स्त्री के विषय में आप लिखते हैं—

"She was my constant companion, in good and evil fortune, sharing my greatest perils, and surpassing the bravest of the brave."

मेरी स्त्री निरन्तर मेरे साथ रही, अच्छे भी दिनों और बुरे भी दिनों में। मेरे बड़े बड़े दुःखों में वह शामिल रही और वीर से वीर पुरुष से भी बढ़ कर उसने काम किये।

अपने बहुत से वीर मित्रों के चरित्र इन्होंने अपने हाथ से लिखे। दक्षिण अमरीका में जिन जिन के साथ इनको काम करने का अवसर आया और जिन जिन ने स्वतन्त्रता के पौधे को सींचने में यत्न किया, उनकी कथा गैरीवाल्डी ने अपने पवित्र हाथों से लिखी।

जिस तरह न्यूयार्क में इनके दिन कटे उसका ब्यौरा अपने लेखों में इन्होंने स्पष्ट रूप से दिया है। उन्हें पढ़ने से मालूम होता है कि महान् होने तथा सफलता प्राप्त करने के लिये किन गुणों की ज़रूरत होती है। एक बार बहुत तङ्गदस्ती की

हालत में, जब इनको न्यूयार्क आये थोड़े ही दिन हुए थे और अङ्गरेज़ी के कुछ ही शब्द इन्होंने सीखे थे, ये नौकरी की तलाश में स्टेटन द्वीप के बन्दरगाह पर गये और कई जहाज़ों पर ख़लासी की नौकरी पाने का उद्योग किया। अँगरेज़ी तो जानते नहीं थे, केवल "Help! Help!!"—"मदद कीजिये, मदद कीजिये"—कह कर अपना अभिप्राय प्रकाशित करते थे। उद्दण्ड जहाज़ियों ने इन्हें भिखमंगा समझ कर इनकी खूब दिल्लगी की। अन्त को सारा दिन हैरान होकर गैरीबाल्डी निराश घर लौट आये। याद रहे, ब्रेज़ील के प्रजा सत्ताक राज्य के जङ्गी जहाज़ों पर ये कप्तान का काम कर चुके थे!

एक समय डोङ्गन की पहाड़ियों में शिकार खेलते हुए, अज्ञान-वश, किसी गांव के नियमभङ्ग करने के जुर्म में इनको पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। जब आप मैजिस्ट्रेट के सामने लाये गये, और मैजिस्ट्रेट को मालूम हुआ कि यह वीर गैरी-बाल्डी है, तब वे तत्काल ही छोड़ दिये गये। उस समय अपने मित्रों से, जो इनकी गिरफ़्तारी पर बड़े क्रुद्ध थे इन्होंने शान्तिपूर्वक कहा—

"No, friends, these officers of the law have done nothing more than their duty, and I deserved the correction. The Americans make and enforce the laws proper to the regulation of their own communities, just as we hope, some day, to do with ours in Itly."

"नहीं मित्र! इन अफ़सरों ने केवल अपना कर्त्तव्य पालन किया है। मेरी भूल का संशोधन उचित था। अमरीका-निवासी अपनी समाज की रक्षा के लिये उचित नियम बनाते

हैं और उनका पालन करवाते हैं। ठीक इस तरह हमें भी, आशा है हम इटली में करेंगे।" उनकी यह आशा सफल हुई। पर पददलित इटली देश इनकी सहायता, साहस, स्वदेशप्रेम और अध्यवसाय के कारण स्वतन्त्र हो गया।

गैरीवाल्डी इटली में फ़्रीमेसन सोसाइटी के मेम्बर थे। जब आप न्यूयार्क आये तब वहां भी उस सभा के मेम्बर हुए। आज यह सभा इस बात का फ़ख़् करती है कि गैरीवाल्डी उसके सभ्य थे। इस सभा के पास गैरीवाल्डी के स्मारक बहुत से चिन्ह हैं उनमें से एक "लाल क़मीज़" भी है। उसे पहन कर गैरीवाल्डी ने, १८४९ में रोम पर धावा किया था। इस क़मीज़ की कथा इस प्रकार है—

गैरीवाल्डी को मांगने से सदा घृणा थी। आप सदा निर्धन ही रहे। क्योंकि जिसे आप दुखी देखते उसकी सेवा अपने कपड़े लत्ते तक बेच कर करते थे। एक दिन वे अपने मकान पर देश से निकाले हुये एक इटालियन को लाये। वह गैरीवाल्डी से भी निर्धन था। उसे देख कर गैरीवाल्डी ने कहा—"मेरे पास दो क़मीज़ें हैं, आप के पास एक भी नहीं सो मैं एक आपको देना चाहता हूं"। परन्तु गैरीवाल्डी की दो क़मीज़ों में से एक धोबी के गई हुई थी, इस लिये यदि वे अपनी कमीज, जो उन्होंने पहन रक्खी थी, उतार कर उस निर्धन इटालियन को दे देते तो आपको नङ्गे रहना पड़ता। इस पर सोचते सोचते इन्होंने कहा, "काम बन गया; मेरे ट्रङ्क में एक लाल क़मीज़ है जिसको मैंने रोम के धावे के बाद फिर नहीं पहिना।" इनका मित्र मियोकी, जो वहां उपस्थित था, बोला—"मैं अपनी क़मीज़ इसे दिये देता हूं। आप वह लाल क़मीज़ मुझे दे दीजिये।" मियोकी ने उस

लाल क़मीज़ को अपने मित्र के वीरत्व-गुणों की निशानी मान कर सँभाल कर रक्खा और मरते दम तक उसको जान से प्यारा समझा। जब मियोकी मर गया तब वह क़मीज़ और गैरीवाल्डी की दूसरी चीजें "फ्रीमेसन" सभा के हाथ आईं और अब तक सभा के अधिकार में हैं।

ब्राडवे, न्यूयार्क, की फ़लटन नामक गली में एक पुराने फैशन के मकान के दरवाजे पर अब भी एक बहुत पुराना बोर्ड लोरेंज़ों वेनचूरा के नाम से लगा है। वहां पुरानी पुरानी चीज़ों और प्राचीन पुस्तकों का संग्रह है। संगमरमर की एक गोल मेज़ भी है। सुनते हैं कि उस पर बैठ कर गैरीवाल्डी अपने मित्रों से वार्तालाप किया करते थे। वेनचूरा बहुत उदारचरित पुरुष था; पराधीन देशों के स्वाधीन बनाने में वह यथाशक्ति सहायता करता था। यहीं पर गैरीवाल्डी की भेंट ऐंडरसन तमाखूवाले से हुई, जिसने इटली को स्वाधीन बनाने में धन से सहायता की थी।

इस समय क्यूबा टापू का झगड़ा शुरू था। ऐंडरसन और मियोकी हवाना गये। वहां जाकर क्यूबा की राजनैतिक अवस्था को अच्छी प्रकार देखा भाला। इन्हीं मित्रों के द्वारा गैरीवाल्डी को क्यूबा के स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने का अवसर मिला। गैरीवाल्डी को क्यूबावालों से बड़ी सहानुभूति थी। जब उनके मित्रों ने क्यूबानिवासियों की अस्त्र-शस्त्र से हीन अवस्था का वर्णन किया और कहा कि बिना हथियारों के वे बेचारे क्या कर सकते हैं, तब महात्मा गैरीवाल्डी ने कहा—

"Un valorososa sempre trovare un arme"

अर्थात् वीर पुरुष को सदैव हथियार मिल सकते हैं।

१८५१ में गैरीवाल्डी अपने मित्र कारपानितो के साथ सना-जारजिओ नामी एक छोटे से तिजारती जहाज पर नौकरी करके मध्य अमरीका गये। क्यूबा जाकर इन्होंने अपना नाम बदल डाला और क्यूबा की स्वतन्त्रता के निमित्त यत्न करते रहे। वहां से चीन की ओर आये और १० मई १८५३ को इटली के जिनोआ नगर में पहुंचे। मातृभूमि की सेवा करते हुए, स्वतन्त्रता के पवित्र सिद्धान्त की रक्षा में इन्होंने अपनी सारी उम्र व्यतीत की। अन्त में इटली को स्वाधीन बनाने की यथाशक्ति चेष्टा करके दूसरी जून १८८२ को ये परमपिता की गोद में पधारे।

आहा! ऐसी आत्माओं का कैसा उत्तम जीवन है! क्या ही उच्चशिक्षा ऐसे जीवनों से मिलती है। देशहित के लिये संसार के सुखों को तुच्छ समझना; धन, मान, ऐश्वर्य्य पर लात मार कर निष्काम भाव से मातृभूमि की सेवा करना; उसके उद्धार के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देना; यही उद्देश्य जिन पुरुषों का है हम उनको झुक कर नमस्कार करते हैं। यही ऋषियों का बतलाया हुआ सच्चा वैराग्य है। इसी की महिमा भगवान कृष्ण ने गीता में गाई है। हम आज स्वार्थ में पड़े हुए, थोड़े थोड़े लोभ में आकर विश्वासघात करते हैं। मातृभूमि की सेवा करना तो कहां, उसी की हत्या करने पर कमर कस लेते हैं। छोटे छोटे वैर-विरोधों में फँस कर, तुच्छ तग़मों के भूखे एक दूसरे का गला काटने पर उद्यत हो जाते हैं। क्या हमारा ऐसा जीवन, जीवन कहला सकता है? हमें चाहिये कि हम महात्मा गैरीबाल्डी से स्वदेश-प्रेम सीखें और यथाशक्ति अपने देश को उन्नत करने की चेष्टा करें।

मिस पारकर का स्कूल



ज बादल घिरे हुए थे। शीत की अधिकता न थी। मिस पारकर से मैंने पिछली रात उनका 'किण्डरगारटन' स्कूल देखने का वादा किया था। मगर अन्य बातों में फँसे रहने के कारण मैं अपना वादा भूल गया। कमरे में बैठा एक पुस्तक 'India and Her People' पढ़ रहा था कि स्वामी बोधानन्दजी ने आकर मुझसे कहा—

"क्यों, 'किण्डरगारटन' स्कूल देखने नहीं जाओगे?"

"सचमुच! मैं तो वहाँ जाना ही भूल गया था। कहिये क्या वक़्त है?"

"दस के ऊपर हो चुके हैं।"

क्योंकि वादा नौ बजे जाने का था, इसलिये मैं झटपट कपड़े पहिन मिस पारकर का स्कूल देखने चला।

मिस पारकर एक बहुत ही सुशिक्षिता देवी हैं। आयु आप की कोई छत्तीस वर्ष की होगी—अच्छा लम्बा क़द—चेहरा देखने से फ़ौरन ही मालूम हो जाता है कि देवी अधिक विद्या-रसिक हैं। अधिक विद्याभ्यास से शरीर में कृशता आ गई है, मगर बुद्धि के जौहर वार्तालाप से ही खुलते हैं। भारत के प्राचीन धर्म पर आपकी बड़ी श्रद्धा है, और जब जब कोई भारतीय सज्जन नगर में पधारते हैं आप अवश्य ही उनसे परिचय कर धार्मिक विषयों की बातें पूछती हैं।

इसी धार्मिक संलग्न के कारण आप का परिचय मुझसे हुआ और मुझसे आपने अपना स्कूल मुलाहज़ा करने की इच्छा प्रकट की, जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार किया। आज उसी स्कूल को देखने चला था।

स्कूलद्वार पर पहुँच मैंने बटन दबाया और अन्दर वालों को आगन्तुक की ख़बर लग गई। एक युवा रमणी ने द्वार खोला। मैंने अपना परिचय दिया और देवी ने सप्रेम मुझे अन्दर ले जा कुरसी दी और आप मिस पारकर को बुलाने गईं।

"अच्छा, आप आ गये!" मिस पारकर ने मुस्करा कर अगवानी की।

"देर से आने को क्षमा माँगता हूं।" मैंने कुछ लज्जित हो कर उत्तर दिया।

"इसकी कोई बात नहीं, पर आप अधिक देख न सकेंगे। क्योंकि दिलचस्प विषयों के घण्टे पूरे हो चुके हैं। अच्छा आइये कुछ तो देखिये।"

मैं अधिष्ठात्री मिस पारकर के साथ साथ हो लिया।

साथ के कमरे में जाकर हम और मिस पारकर एक ओर कुर्सियों पर बैठ गये। एक अध्यापिका छोटे स्टूल पर बैठी हुई थी और बीस के क़रीब बालक बालिकाएँ उसके सामने ज़मीन पर घेरा बाँधे बैठी हुई थीं। कमरे का फ़र्श लकड़ी का था जिस पर गर्द, मट्टी का नाम नहीं था। अध्यापिका इन नन्हें नन्हें बालक बालिकाओं को क्या पढ़ा रही थी? धैर्य कीजिये पाठक, मैं आपको बताये देता हूं।

इन किन्डरगारटन के विद्यार्थियों के सामने की दीवार पर एक बड़ा रंगीला सा चित्र टँगा था। यह चित्र एक

देशहितैषी नवयुवक सिपाही का था, जो घोड़े पर सवार हाथ में अमरीका (यूनाइटेड स्टेट्स्) का झण्डा लिये अपने प्राण प्यारे देश के लिए स्वाहा होने को युद्धभूमि में जा रहा था। देश की नारियाँ—मातायें रूमाल हिला हिला उसका उत्साह बढ़ा रही थीं।

उस चित्र को देख मेरे अश्रुपात होने लगा। राजपूताने की पवित्र भूमि के दृश्य एक एक कर के मेरी आँखों के सामने फिर गये। भारत संतान की प्राचीन शिक्षाप्रणाली का गौरव मेरे सामने आगया। फिर आधुनिक शिक्षाप्रणाली का नज़ारा मेरे सामने आया—दिल नदी की भाँति उमड़ा, पर मैंने अपने आपको थामा। रूमाल से आँखें पोंछ डालीं। मेरे चश्मे ने मुझे सहायता दी, और दिल के भाव दिल ही में लीन हो गये।

"यह सामने की दीवार पर किसका चित्र है?" अध्यापिका ने एक बालक से पूछा।

"यह सवार की तस्वीर है।"

अध्यापिका—(दूसरे बालक से) "सवार के हाथ में क्या है?"

बालक—"झंडा है?"

अध्यापिका—(एक बालिका से) "किसका झंडा है?"

बालिका—"हमारे देश का।"

अध्यापिका—"वह सवार कौन है?"

बालिका कुछ देर चुप रही। झट एक दूसरा बालक बोल उठा—"वह सिपाही है; जो युद्ध के हेतु जा रहा है।"

अध्यापिका—(दूसरी बालिका से) "चित्र में क्या कुछ और भी है?"

बालिका—"बहुत से आदमी औरतें हैं।"
अध्यापिका—"वे क्या करते हैं?"
बालिका—"रूमाल हिला रहे हैं।"

अध्यापिका—(अन्य बालक से) "क्यों रूमाल हिलाते हैं?"
बालक चुप रहा, अध्यापिका ने फिर सब बालकों से पूछा—
"कोई बतलावे, क्यों ये नर नारी रूमाल हिला रहे हैं?"

उस अध्यापिका ने जब अपने नन्हें विद्यार्थियों को चुप देखा तो उनको एक देशहित भरा उपदेश दिया—

"प्यारे बच्चो! यह सिपाही देशहितैषी नवयुवक है जो अपनी मातृभूमि को सब से श्रेष्ठ समझता है। उसके लिये यह सब कुछ देने को उद्यत है। मातृभूमि की रक्षा के हेतु अपने देश के शत्रुओं से युद्ध करने के लिये रणभूमि में जाने को तैयार है। इसके हाथ में अपने देश का परमपूज्य झंडा है—यह झंडा सारी अमरीकन जाति का कीर्तिस्तम्भ है। जब तक यह खड़ा लहराता है, अमरीकन जाति आज़ाद है। इसके गिरने से देश का पतन है। इसलिए इस झंडे की रक्षा देश के प्रत्येक सच्चे पुत्र पर लाज़मी है। इस नवयुवक सिपाही ने प्राण पर्य्यन्त इस झंडे की रक्षा करने की शपथ खाई है। देश की रमणियां, मातायें, भगनियां, इसको आशीर्वाद देती हैं, और रूमाल हिला उसका उत्साह बढ़ा रही हैं।"

उन बालक बालिकाओं ने अपनी अध्यापिका के उपदेश को बड़े ध्यान से सुना। कुछ देर सभी चुप रहे। तब अध्यापिका ने विद्यार्थियों को सम्बोधित कर कहा—

"आओ, सब लोग युद्ध-नाटक रचें।"

यह एक देखने योग्य दृश्य था। टाड राजस्थान में जिन दृश्यों के वर्णन पढ़ स्वप्न देखा करता था, आज वह सामने दिखाई दिया।

सब बालक बालिकायें एक घेरे में खड़े थे। एक बालक उनका अग्रसर अफ़सर चुना गया। वह घेरे के मध्य में खड़ा था। उसके हाथ में बहुत सी झण्डियां थीं। अपने इच्छानुसार वह घेरे में से एक बालक, बालिका को बुलाता था। आनेवाला पहिले बालक अफ़सर को प्रणाम करता और बाद में अफ़सर उसको एक झण्डा दे अपनी रजमेण्ट का सिपाही चुनता था। इस प्रकार रजमेण्ट बनी, जिसमें दस सिपाही थे और ग्यारहवां अफ़सर। बाक़ी सब विद्यार्थी दर्शकों के तौर पर उनको घेर कर खड़े हो गये। अब रजमेण्ट युद्ध हेतु चली।

दर्शक लोग अध्यापिका के साथ रूमाल हिलाते हुए यह गीत गाने लगे—

प्रश्न।

Soldier boy ! Soldier boy !
Where are you going ?
Bearing so proudly,
The red, white and blue:

हिन्दी (कविता)

कहां चले, ओ ? सुभट बालगण वीर हृदय गरवीले।
झण्डे लिये हाथ में अपने, श्वेत लाल औ नीले ॥*

* यूनाइटेड-स्टेट्ज़-अमरीका के राष्ट्रीय झण्डे का रङ्ग लाल, श्वेत और बैंगनी है—लेखक।

उत्तर।

I go where my country,
My duty is calling.
If you would be a soldier boy,
You may come too.

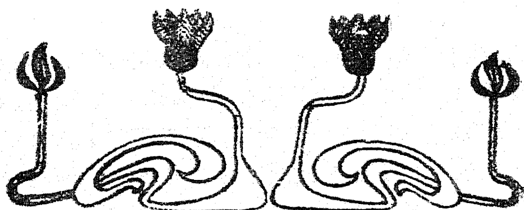
हिन्दी (कविता)

हम जाते हैं युद्धस्थल को देश काज हित भाई।
चल सकते हो तुम सब भी यदि बनना चहो सिपाही॥

आहा क्या ही! सुन्दर दृश्य था।

....

थोड़ी देर बाद खेल पूरा गया। मिस पारकर से छुट्टी ले मैं स्थान पर गया।



अब्राहम लिंकन की शतवर्षी



रह फ़रवरी, १९०९, शुक्रवार के दिन अमरीका-निवासियों ने अपने पूज्य पुरुष अब्राहम लिंकन का शताब्दिक जन्मोत्सव मनाया। यूनाइटेड स्टेट्ज़ की सभी रियासतों में उस दिन धर्मात्मा लिंकन का यश गाया गया। यही नहीं, बल्कि संसार के जिस जिस भाग में अमरीकन लोग कार्य्यवशात् गये हुये हैं, वहाँ भी उन्होंने अपने इस देश-भूषण के जन्म की खुशियाँ मनाईं और उसके जीवन को अपना आदर्श मान उससे लाभ उठाने का प्रण किया। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि इस महात्मा में ऐसे कौन गुण थे जिनके कारण उसके देशवासी उसे इतनी पूज्य दृष्टि से देखते हैं। कौन से कारण हैं जो इस धर्मात्मा की ख्याति को प्रति दिन बढ़ा रहे हैं। इस बात का संक्षिप्त वर्णन करना हम यहाँ पर उचित समझते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा है कि जब मनुष्य समाज में धर्म की ग्लानि होती है और जन समुदाय अपनी शक्ति से अपने दुःखों को दूर नहीं कर सकता है, तब तब समाज की उलझनों को सुलझाने और उन्नति का मार्ग साफ़ करने के लिए महात्मा जन्म लेते हैं और मनुष्यों का दुःख दूर करते हैं। सभी जातियों पर ऐसी विपद पड़ती रही है और पड़ती रहेगी। अमरीका वालों पर ऐसी विपद १८५९ में पड़ी थी। वह विपद क्या थी, इसको भी संक्षेप में कहे देते हैं।

सत्रहवीं सदी के आरम्भ में यूरोपियन लोग अपने अपने देशों से आकर उत्तरी अमरीका में बस्तियां बनाने लगे। अमरीका जंगली देश था, इसलिए उन लोगों को जंगल साफ़ करने और दूसरे कामों के लिए मज़दूरों की सख़्त ज़रूरत पड़ी। मज़दूर कहां से आवें? वहां तो सभी ज़मीदार थे, अतएव अमरीकावालों की इस ज़रूरत को पूरा करने और धन कमाने के लिए पुर्तगाल वालों ने अफ़्रीका से हब्शी लाकर बेचने का ठेका लिया। धीरे धीरे यह व्यापार अँगरेज़ लोगों के हाथ में आया। हज़ारों निरपराध हब्शी हर साल भेड़ बकरियों की तरह बिकने लगे। नई दुनिया के मनुष्य-समाज को भावी विपद् के बीज इसी समय बोये गये।

१७७६ में जब उत्तरी अमरीका की तेरह बस्तियों ने स्वतन्त्रता का झण्डा बुलन्द किया और—"मनुष्य मात्र ईश्वर की दृष्टि में सम हैं"—इस सिद्धान्त की सारे संसार में घोषणा दी, तब योरप की सभ्यता में एक नया परिवर्तन हुआ। यद्यपि फ्रांस के रत्न रूसो ने इसका प्रचार पहले से ही किया था, तथापि वे केवल ज़बानी बातें थीं। अमरीका वालों ने अपना रक्त बहाकर इसका प्रमाण दिया परन्तु एक बात में वे भी कसर कर गये। उस सत्य सिद्धान्त के महत्व को उन्होंने गौर वर्ण वालों तक ही परिमित रक्खा, बेचारे हब्शी "मनुष्य" शब्द की व्याख्या में न लाये गये। ख़ैर, अमरीकावाले इँगलिस्तान से स्वतन्त्र हो गये। यद्यपि अमरीका वालों ने अपने यहां के हब्शी गुलामों को आज़ादी तो न दी, मगर गुलामों की तिज़ारत बन्द करने की चेष्टा ज़रूर की। इँगलिस्तान वालों ने अपनी उदारता का प्रमाण देकर और अपने पापों का पश्चात्ताप करके यह क्रूर कर्म बिलकुल ही बन्द कर दिया; और

दूसरी जातियों पर भी गुलामों की तिजारत छोड़ देने के लिये ज़ोर दिया।

अच्छा, अमरीका वालों ने गुलामी की प्रथा को बिलकुल ही क्यों न बन्द कर दिया? इसका उत्तर है—स्वार्थ के कारण। इन तेरह बस्तियों में से जो दक्षिण की ओर थीं उनका अधिकांश काम गुलामों ही के सहारे चलता था। उनके खेतों पर गुलाम लोग कड़ी धूप में काम करते और मालिक चैन उड़ाते थे। मगर १७७६ की घोषणा—"मनुष्य मात्र ईश्वर की दृष्टि में सम हैं"—अपना काम कर गई। उत्तरी रियासतों में गुलामों को आज़ाद करने का बीड़ा लोगों ने उठाया। धीरे धीरे देश में इस बात पर दो दल बन गये। एक दल गुलामों को स्वतन्त्र करना चाहता था और दूसरा उन्हें परतन्त्र रखना चाहता था। दोनों में बड़े बड़े झगड़े हुए। १८६५ में देश की दशा बड़ी नाज़ुक हो गई। देश-हितैषी कहने लगे कि यूनाइटेड-स्टेट्ज़ को ईश्वर ही बचावे तो बच सकता है।

भँवर में पड़ी हुई यूनाइटेड स्टेट्ज़ की किश्ती को पार लगाना साधारण व्यक्ति का काम न था। इसके लिए एक असाधारण मल्लाह की आवश्यकता थी—अथवा यों कहिए कि उस समय एक ऐसे महात्मा की ज़रूरत थी जिसमें दैवी शक्ति हो, ईर्षा-द्वेष जिसे छू न गया हो; प्रसिद्धि की जिसको लालसा न हो; गोरे काले में जिसे सम प्रेम हो; जो नीति में कुशल हो; और जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण हो। मतलब यह कि दूसरों के दुःख में दुःख और सुख में सुख समझने वाले तथा अपने देश की रक्षा के लिए सब कुछ स्वाहा करने वाले पुरुष की आवश्यकता थी। ऐसा पुरुष, अनाथ हब्शी गुलामों का दुःख दूर करने और अपने देश को दो टूक होने से बचाने के

लिए पैदा हो चुका था। १८५६ में उसकी उम्र पचास वर्ष की थी। ग़रीब माता-पिता के घर उत्पन्न होकर अपने श्रेष्ठ गुणों से धीरे धीरे उन्नति करते करते यह महापुरुष १८५६ में अपना उद्देश पूरा करने के लिए अपने देश-वासियों के सामने आया। इस समय वह यूनाइटेड स्टेट्स का प्रेसीडेंट चुना गया।

पूर्व-सञ्चित पापों का प्रायश्चित्त अमरीकन जाति को ज़रूर करना था। १८६० में हब्शी गुलामों के कारण उत्तरी और दक्षिणी रियासतों में घोर युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध का वर्णन पाठ करने योग्य है। प्रेसीडेंट लिङ्कन ने सब से पहले इस बात के लिये सिर तोड़ कर कोशिश की कि बिना युद्ध के सब झगड़ों का निबटेरा हो जाय। मगर ऐसा कब हो सकता था। जब युद्ध प्रारम्भ हुआ और प्रेसीडेंट ने आदमियों के लिए अपील की, तब उसके देशवासियों ने उत्तर में कहा—"Father Abraham, we are coming" (पिता अब्राहम! हम आते हैं)। अमरीका स्वतन्त्र देश है; कोई आदमी ज़बरदस्ती फ़ौज में भरती नहीं किया जाता; दूसरे देशों की तरह "Standing Army" सजी सजाई सेना भी यहाँ नहीं रक्खी जाती। यहाँ तो जब ज़रूरत पड़ती है तब लोग अपना घरबार छोड़ कर देश के झण्डे के नीचे आ खड़े होते हैं। बारह बार प्रेसीडेंट लिङ्कन ने आदमी माँगे। माँगे २७,६३,६७० आदमी थे; और आये २७,७२,४०८ आदमी! पाँच साल युद्ध हुआ; सात लाख के क़रीब आदमी दोनों ओर से बलिदान हो गये; अर्बों रुपये की जायदाद नष्ट हो गई, तब कहीं जाकर गुलामी की प्रथा का अन्त हुआ। तीस लाख हब्शी गुलामी से छूट गये और पिता लिङ्कन

का गुण गाने लगे। महात्मा लिङ्कन का उद्देश्य पूरा हो गया और वे भी अपने देश की बीमारी दूर करके बलिदान हो गये।

अब हम एक आधा उदाहरण देकर इस महापुरुष का महत्व दर्शाते हैं। युद्ध के समय जब सिपाहियों को किसी अपराध के कारण "कोर्टमार्शल" की सज़ा मिलती थी तब अफ़सर लोग नियमानुसार उन फ़ैसलों को प्रेसीडेंट के पास दस्तख़त के लिए भेजते थे। प्रेसीडेंट लिङ्कन हमेशा इस बात का यत्न करते थे कि कोई न कोई ऐसा नुक़ता मिल जाय जिससे अपराधी बच जाय। क्षमा और दया उनमें बेहद थी। फ़ौजी अफ़सर प्रेसीडेंट की इस दयालुता की सदा शिकायत किया करते थे। परन्तु महात्मा लिङ्कन कुछ ध्यान न देते थे। एक बार एक लड़के को (फ़ौज में बीस पचीस वर्ष के लड़के ही अधिक थे) मृत्यु-दण्ड की सज़ा मिली। उसका मुक़द्दमा प्रेसीडेंट के पास आया। लड़के का क़सूर यह था कि वह पहरे पर सो गया था। प्रेसीडेंट लिङ्कन ने उस को क्षमा कर दिया। अफ़सरों के कारण पूछने पर उन्होंने कहा—"मैं इस ग़रीब लड़के की हत्या अपने सिर लेकर सदा के लिए अपराधी नहीं बनना चाहता। यह लड़का खेतों पर पला और रहा है। आश्चर्य नहीं कि जिस को शाम ही से सोने की आदत हो वह रात को पहरा देते समय भूल से सो जाय। इस अपराध के लिए मैं इसको गोली नहीं मार सकता।" फ़्रेडरिक्सबर्ग की लड़ाई में वह लड़का मारा गया। जब उस के मृत शरीर से कपड़े उतारे गये तब लोगों ने देखा कि वह अपने हृदय के ऊपर प्रेसीडेंट लिङ्कन की तसवीर रक्खे हुए है। तसवीर पर लिखा है-"God bless President Abra-

ham Lincoln !" परमेश्वर प्रेसीडेंट अब्राहम लिङ्कन का कल्याण करे।

एक और उदाहरण सुनिए। बोस्टन की रहने वाली एक बिक्सबी नाम की मेम के पाँच लड़के थे। वे पाँचो युद्ध में मारे गये। इस पर प्रेसीडेंट लिङ्कन ने दुखी माता की सांत्वना के लिए यह पत्र लिखा—

"प्यारी मैडम, युद्ध-विभाग के काग़ज़ों की जांच पड़ताल करने से मुझे मालूम हुआ कि आप के पांच पुत्र वीरता से लड़ते हुए देश के लिए मारे गये। उनकी मृत्यु से जो कष्ट आप को हुआ है उसको दूर करने का यत्न तो मेरी शक्ति में कहां! परन्तु मैं इस प्रजा-सत्ताक-राज्य की ओर से, जिस की रक्षा की ख़ातिर आपके पुत्रों ने प्राण दिये, आप को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह आप को शान्ति दे और आपके मृत पुत्रों का पवित्र स्मारक सदा के लिए आपको शान्तिदायक हो।

स्वतन्त्रता रूपी यज्ञ में जो शुद्ध बलि आपने दी है उसका गौरव आपको सांत्वना देनेवाला हो।

आपका—

अब्राहम लिङ्कन।"

इस चिट्ठी ने उस पुण्यशीला माता को बहुत कुछ शान्ति दी और उसका नाम सदा के लिए अमर हो गया। जब तक अमरीकन जाति रहेगी और अमरीकन क़ौम का इतिहास बना रहेगा तब तक बिक्सबी का नाम स्थायी रहेगा। यह चिट्ठी लिंकन की महनीयता का अच्छा परिचय देती है। यूनाइटेड स्टेट्ज़ का प्रेसीडेंट, भयङ्कर युद्ध का समय, भारी ज़िम्मेदारी का काम! उस काम को करते हुए उन माताओं,

भग्नियों और स्त्रियों के दुःख दूर करने के लिए पत्र लिखना, जिनके बन्धु युद्ध में मारे गये थे, यह वही कर सकता है जिस के प्रेम का दायरा बहुत बड़ा हो ; जो दूसरों के दुःख को अपना समझता हो।

इस महात्मा के चरित्र का दूसरा पहलू देखिये। वे रियासतें जिन्होंने १८६० में प्रेसीडेंट लिंकन के विरुद्ध युद्ध किया था आज उसका जन्मोत्सव मनाती हैं। क्यों ? कारण यह है कि प्रेसीडेंट लिंकन को बाग़ियों से द्वेष नहीं था। ज्यों ही लड़ाई समाप्त हुई और युद्ध में प्रेसीडेंट लिंकन का दल जीत गया त्यों ही इस महापुरुष ने परास्त दल को अपनाया, बहुत नरम शर्तें करके उससे सन्धि कर ली और युद्ध का ख़ातमा कर दिया।

यही गुण हैं जिनके कारण लिंकन का शताब्दिक जन्मोत्सव इस धूमधाम से मनाया गया। केनटकी और इलीनाए रियासतों में उत्सव की तैयारियाँ कई महीने पहले से की गईं और लाखों रुपये ख़र्च किये गये। लकड़ी के जिस घर में लिंकन पैदा हुए थे उसको सुरक्षित रखने और उस स्थान पर यादगार बनाने के लिए सभायें बनाईं गईं। मतलब यह कि अमरीका वालों ने अपनी जाति के भूषण का हर तरह से सत्कार किया है। अन्त में हम उस गीत की नक़ल देते हैं जो अमरीका का क़ौमी गीत है और जो लिंकन के जन्मोत्सव के दिन सभी जगह गाया गया था। वह गीत यह है—

I.

My country ! 'tis of thee,
Sweet land of liberty,
Of thee I sing :

Land, where my fathers died,
Land of the pilgrims pride,
From every mountain side
Let freedom ring !

2.

My native country thee,
Land of the noble free,
Thy name I love:
I love thy rocks and rills,
Thy woods and templed hius;
My heart with rapture thrills
Light that above.

3.

Let music sweet the breeze,
And ring from all the trees,
Sweet freedoms' song !
Let mortal tongue awake,
Let all that breathe partake,
Let rocks their silence break,
The sound prolong.

4.

Our father's God ! to thee,
Author of liberty,
To thee we sing,
Long may our land be bright,
With freedom's holy light;
Protect us with thy might ,
Great God, ourKing.

भग्नियों और स्त्रियों के दुःख दूर करने के लिए पत्र लिखना, जिनके बन्धु युद्ध में मारे गये थे, यह वही कर सकता है जिस के प्रेम का दायरा बहुत बड़ा हो ; जो दूसरों के दुःख को अपना समझता हो।

इस महात्मा के चरित्र का दूसरा पहलू देखिये। वे रियासतें जिन्होंने १८६० में प्रेसीडेंट लिंकन के विरुद्ध युद्ध किया था आज उसका जन्मोत्सव मनाती हैं। क्यों? कारण यह है कि प्रेसीडेंट लिंकन को बागियों से द्वेष नहीं था। ज्यों ही लड़ाई समाप्त हुई और युद्ध में प्रेसीडेंट लिंकन का दल जीत गया। त्यों ही इस महापुरुष ने परास्त दल को अपनाया, बहुत नरम शर्तें करके उससे सन्धि कर ली और युद्ध का ख़ातमा कर दिया।

यही गुण हैं जिनके कारण लिंकन का शताब्दिक जन्मोत्सव इस धूमधाम से मनाया गया। केनटकी और इलोनाए रियासतों में उत्सव की तैयारियाँ कई महीने पहले से की गईं और लाखों रुपये ख़र्च किये गये। लकड़ी के जिस घर में लिंकन पैदा हुए थे उसको सुरक्षित रखने और उस स्थान पर यादगार बनाने के लिए सभायें बनाईं गईं। मतलब यह कि अमरीका वालों ने अपनी जाति के भूषण का हर तरह से सत्कार किया है। अन्त में हम उस गीत की नक़ल देते हैं जो अमरीका का क़ौमी गीत है और जो लिंकन के जन्मोत्सव के दिन सभी जगह गाया गया था। वह गीत यह है—

I.

My country ! 'tis of thee,
Sweet land of liberty,
Of thee I sing :

Land, where my fathers died,
Land of the pilgrims pride,
From every mountain side
Let freedom ring !

2.

My native country thee,
Land of the noble free,
Thy name I love:
I love thy rocks and rills,
Thy woods and templed hius;
My heart with rapture thrills
Light that above.

3.

Let music sweet the breeze,
And ring from all the trees,
Sweet freedoms' song !
Let mortal tongue awake,
Let all that breathe partake,
Let rocks their silence break,
The sound prolong.

4.

Our father's God ! to thee,
Author of liberty,
To thee we sing,
Long may our land be bright,
With freedom's holy light;
Protect us with thy might ,
Great God, ourKing.

अमरीका की स्त्रियां

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ मनु०



पाठक ! अपने यहाँ की स्त्रियों का हाल तो आप जानते ही हैं। कहां तक आप उन बेचारियों को लिखाते पढ़ाते हैं? कहां तक आप उनकी शारीरिक अवस्था पर ध्यान देते हैं? कहां तक आप उनके अधिकारों की रक्षा करते हैं? आप से और मुझ से ये बातें छिपी नहीं। बाहर के लोगों से यह कह कर कि हम भी किसी समय बड़े सभ्य थे—नहीं नहीं सभ्यता के स्तम्भरूप थे—हम भले ही अपना पीछा छुड़ा लें, परन्तु क्या इस तरह भी हमारा सुधार हो सकता है? कदापि नहीं। हम बड़ी ही दीनावस्था में हैं। हमारा यह अभिमान, कि हम किसी काल में यह थे, वह थे, वृथा है। हम अब क्या हैं सो देखो। ज़रा आंखें खोलो। दुनिया हमारी वर्तमान दशा से हमें पहचानती है, बाप दादे को देख कर नहीं।

एक विद्वान का कथन है कि, यदि तुम किसी देश की उन्नति का कारण जानना चाहो तो वहां की स्त्रियों की दशा की जांच करो। जिस देश में स्त्रियां मूर्खा हैं; जिस देश में स्त्रियों की प्रतिष्ठा नहीं है; जिस देश में स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा नहीं है; वहां के लोग चाहे लाख टक्करें जाति के सुधार के लिए मारें, कभी उनको सफलता प्राप्त नहीं हो

सकती है। यह कथन कहां तक ठीक है, इसी का प्रमाण देने के लिए मैं आज एक ऐसे देश की ललनाओं की जीवनचर्य्या आपके सामने रखता हूं, जो देश अपनी उन्नति के लिए संसार में विख्यात है। आप कृपा करके उनके कामों का अपनी मां-बहनों के कामों से मुक़ाबला कीजिए। यदि आपको मेरी बातें अच्छी लगें और लाभदायक जान पड़ें, तो जहां जहां आपकी पहुँच हो वहां वहां उनका ज़िक्र कर दीजिएगा। इसी से मैं समझ लूंगा कि मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया।

सब से पहले मैं यह बता देना उचित समझता हूँ कि मैं पाश्चात्य सभ्यता का अन्धा भक्त नहीं हूं। जिन्होंने मेरे लेख ध्यान पूर्वक पढ़े हैं वे ज़रूर ही इस बात को जान गये होंगे। हाँ, मैं सत्यप्रिय हूं। अपने मतलब की कोई बात कहीं हो, उसे ग्रहण करना अपना धर्म समझता हूं। निर्दोष कोई भी जाति नहीं। मैं आप से अमरीका की स्त्रियों के दोष बताऊंगा कम से कम उन्हें जिनको मैं दोष समझता हूं।

जब मैं भारतवर्ष से अमरीका के लिए चला था तब इस बात के जानने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा थी कि अमरीका की स्त्रियां अपने पतियों से कैसा बर्ताव करती हैं; घरों में वे किस प्रकार रहती हैं; इनका आपस का बर्ताव कैसा है; पर एक दिन की मुलाक़ात में आदमी इन सब बातों को किसी तरह नहीं जान सकता।

कारणवश मुझको कुछ महीने मनीला में ठहरना पड़ा। मनीला फ़िलीपाइन द्वीप का एक बड़ा भारी शहर है; और फ़िलीपाइन द्वीप अमरीकावालों के अधीन है। इसलिए अमरीकन लोग यहां बहुत हैं। वे भिन्न भिन्न पेशे करते हैं। सौ-

भाग्य से वहाँ पर मुझे एक बहुत अच्छा मौक़ा एक अमरीकन के साथ रहने का मिल गया। मिस्टर स्काट मनीला शिक्षा-विभाग में हेड क्लर्क थे। वेदान्त पर आपकी बड़ी श्रद्धा थी। मुझ से उन्होंने कहा कि आप हमारे ही मकान पर रहें और हमें संस्कृत पढ़ावें। मैंने स्वीकार कर लिया। "एक पन्थ दो काज"। उनकी स्त्री अच्छी सुशिक्षिता थी और एक स्कूल में अध्यापिका थी। कैसा प्रेम मैंने इस पति-पत्नी में देखा। फुरसत के वक्त दोनों किसी अच्छे लेखक की पुस्तक उठा कर पढ़ा करते और जीवन का आनन्द लेते थे। मेरे लिए यह सब नई बात थी। हमारे देश में तो जिस लड़के का विवाह होने को होता है उसे इसका भी पता नहीं लगता कि जिसके साथ मुझे सारी उम्र काटनी है वह है कैसी? मूर्ख है या शिक्षिता। बाज़ों को तो यह भी पता नहीं लगता कि जिसके साथ विवाह होता है वह स्त्री है या पुरुष। रुपया देकर विवाह करनेवाले कई बेचारे इसी तरह धोखे में आकर रुपया खो बैठे हैं। वाह रे भारत, तेरी अद्भुत महिमा है!

मिस्टर स्काट से थोड़े ही दिनों में मेरा घना सम्बन्ध हो गया। जब उनकी स्त्री गरमियों की छुट्टी में मनीला से अमरीका जाने लगी तब मुझ से हँस कर कहा—"देव! घर और मिस्टर स्काट की निगरानी आपके सुपुर्द है"। मैंने मुसकरा दिया। फिर उन्होंने पन्द्रह बीस बन्द लिफ़ाफ़े मुझे दिये। उन पर जुदा जुदा तारीख़ें पड़ी हुई थीं और मिस्टर स्काट का पता लिखा हुआ था। उन्हें देकर स्काट की पत्नी ने कहा—"कृपा करके इन चिट्ठियों को इन तारीखों के अनुसार मेरे पति को दे दीजियेगा"। मैंने चिट्ठियाँ ले लीं और उनका इच्छानुसार काम किया। चिट्ठियों के देने का कारण

था। मनीला से अमरीका जाने में एक महीना लगता है, और एक ही महीना आने में भी। इसलिए चिट्ठी आने में कम से कम दो महीने लगते। इन दो महीनों में पति का वियोग-दुःख अधिक न सहना पड़े, इसीलिये स्काट की पत्नी ने ये चिट्ठियाँ दी थीं।

यह केवल एक ही उदाहरण पति-प्रेम का नहीं है। मुझे अपने मित्र द्वारा वहाँ कई एक अमरीकन गृहस्थों से जान पहिचान हो गई थी। उन कुटुम्बों में भी पति-पत्नी में अपूर्व प्रेम देख कर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। कारण यह कि स्त्रियाँ सुशिक्षिता और सुयोग्या हैं।

शिकागो पहुँच कर मुझे बहुत कुछ देखने भालने का मौक़ा मिला। वहाँ स्त्रियों की दशा का ज्ञान प्राप्त करने के बहुत अवसर मेरे हाथ लगे। विद्यालय में जो लड़कियाँ मेरी सहाध्यायिनी थीं उनसे जब जब किसी विषय पर बात चीत करने का अवसर मिला, तबीयत खुश हो गई। गम्भीर से गम्भीर विषय को भी वे समझती हैं। लड़कों की तरह बहुत सी लड़कियाँ विद्यालय में ऐसी थीं जिनको अपनी शिक्षा के लिये आप रुपया कमाना पड़ता था। विद्या-प्राप्ति की धुन में सब तरह के कष्ट सह कर वे पदवियाँ प्राप्त करती हैं।

एक दिन मैं एक लड़की के साथ मिशेगन झील की सैर करने गया। रास्ते में अनेक विषयों पर बात चीत हुई। हम दोनों झील के किनारे जाकर बैठ गये। लड़की का नाम कुमारी एड़ी था। उसने मुझ से पूछा—

"अच्छा, आप बताइये कि आप को यह विद्यालय पसन्द आया या नहीं?"

मैं—"ईश्वर से यह चाहता हूं कि मेरे देश में भी ऐसे ही विद्यालय हो जायँ।"

एड़ी (हँस कर)—

"आप लोग यत्न करें तो सब कुछ हो सकता है।"

मैं चुप हो रहा। एड़ी ने फिर पूछा—

"आप के यहां लड़कियों के लिये शिक्षा का क्या प्रबन्ध है?"

"अभी नाम मात्र के लिए कहीं कहीं स्कूल खुले हैं।"

एड़ी—ठण्ढी साँस भर कर—

"जब मैं यह सोचती हूं कि ऐसे भी देश हैं जहां अबलाएँ बिलकुल ही अविद्यान्धकार में पड़ी हैं तब मुझे महा-शोक होता है। आप जैसे लोग जिस देश में हों वहां ऐसी दशा!"

मैं उत्तर नहीं दे सका, मन ही मन मसोस कर रह गया।

कुमारी एड़ी ने यह देख कर कि मुझे अपने देश की दुर्दशा पर दुःख हो रहा है, विषय बदल दिया और बोली—

"कल शनिवार है। आप मेरे साथ व्यायामशाला में चलियेगा। आप वहां देखेंगे कि यहां की लड़कियां कैसी अच्छी कसरत करती हैं।"

मैंने बड़ी खुशी से कहा—"बहुत बेहतर।"

दूसरे दिन हम दोनों व्यायामशाला देखने गये। समय दोपहर का था। यह व्यायामशाला विद्यालय से कोई पन्द्रह मील दक्षिण है। इस शाला में जो अध्यापिका थी उससे मेरी बहुत अच्छी जान पहचान थी; इस लिये मेरे आने से वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने मुझे व्यायामशाला अच्छी तरह दिखला दी। जैसा सामान लड़कों के लिये होता है, अधिकांश उसी तरह का लड़कियों के लिये भी था। यद्यपि लड़कियों

की कसरत के समय मर्दों को वहां जाने का निषेध है; परन्तु मुझे अध्यापिका ने कुछ फ़ासले पर खड़े हो कर देख लेने की आज्ञा दे दी। एक लड़की, जिसकी उम्र कोई तेरह चौदह वर्ष की होगी, ठीक मेरे सामने लोहे की छड़ पर कसरत कर रही थी। उसे कसरत करते देख क्या क्या भाव मेरे हृदय में उठे, मैं नहीं लिख सकता। जिस देश में कन्याओं के आरोग्य और शारीरिक सुधार का ऐसा अच्छा प्रबन्ध हो उस देश को उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होना ही चाहिये।

लड़कियों की बातें जाने दीजिये। अब अमरीका की स्त्रियों का कुछ हाल सुनिए।

अमरीका की स्त्रियों की फुरसत का समय बहुत करके क्लबों में जाता है। यह ज़रूरी नहीं कि इन सभाओं में जाने वाली स्त्रियां विवाहिता ही हों, क्वारी भी होती हैं। प्रत्येक शहर में स्त्रियों की क्लबें हैं। क्लबों से मतलब सभाओं अथवा समाजों से है। ये क्लब भिन्न भिन्न उद्देश्यों की सिद्धि के लिये खोली जाती हैं। जैसे शेक्सपीयार-क्लब में केवल शेक्सपीयार के ग्रन्थ पढ़े जाते हैं और उनका मतलब अच्छी तरह समझा जाता है। ब्रौनिङ्ग क्लब में महाकवि ब्रौनिङ्ग के ग्रन्थों का अध्ययन किया जाता है। याद रखिये, यह सब मैं स्त्रियों की क्लबों का जिक्र कर रहा हूं। व्यायाम-क्लबमें स्त्रियां आकर व्यायाम करती हैं। मातृ-क्लब (Mothers Club) में मातायें अपने लाभ के लिये, समय समय पर, अमरीका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध डाक्टरों को बुलाकर उनके व्याख्यान सुनती हैं। व्याख्यानों में बीमारियों के इलाज, बच्चों के पालन पोषण का ढङ्ग, खाने पीने की विधि आदि उपयोगी विषयों की चर्चा रहती है।

एक बार मुझे एक स्त्री-समाज में व्याख्यान देने जाना पड़ा। यह समाज विशेष करके धनी स्त्रियों का था। व्याख्यान के दिन दो सौ से अधिक स्त्रियाँ उपस्थित थीं। व्याख्यान के बाद मैं कुछ काम के लिये थोड़ी देर ठहर गया। जिस दीवान-खाने में मैंने व्याख्यान दिया था उसके पास ही बाहर के कमरे में होटल की तरह का सामान मैंने देखा। मैंने वहाँ की प्रधान स्त्री से पूछा कि क्या यहाँ होटल भी है? उत्तर में वह देवी बोली—"हाँ, इस स्त्री-समाज की ओर से यहाँ होटल भी है, जिसमें निर्धन स्त्रियाँ थोड़े ख़र्च से भोजन पाती हैं।" हमारे कोई कोई साधु पाठक शायद कहेंगे कि सदावर्त ही क्यों न खोल दिया जिसमें स्वर्ग जाने का रास्ता और भी सुगम हो जाता। उत्तर में हम निवेदन करेंगे कि अमरीका वासी हमारी तरह मूर्ख नहीं हैं। आप यदि सम्पत्ति शास्त्र पढ़ें तो आपको पता लगे कि जो लाखों करोड़ों रुपये हर साल आप अपने पुण्य-क्षेत्रों में सदावर्त द्वारा ख़र्च करते हैं वह व्यर्थ जाता है। देश में आलसी हट्टे कट्टे मूर्खों की संख्या बढ़ती है। उसी रुपये से यदि कारख़ाने खुलें तो हज़ारों आदमियों का पालन हो, और पुण्य के साथ देश-सेवा भी हो। अमरीका के निवासी सम्पत्ति-शास्त्र के ज्ञाता हैं। वे आलसी भिखमंगों की वृद्धि करना महापाप समझते हैं।

इलीनाए (Illinois) रियासत में जितने स्त्री-समाज हैं सब की एक प्रधान सभा है। उस सभा में प्रत्येक समाज के प्रतिनिधि रहते हैं। १६०६ के नवम्बर में उसका वार्षिक अधिवेशन शिकागो विश्वविद्यालय में हुआ था। इस सभा के उद्देश आदि का संक्षिप्त वर्णन सुन लीजिए—

१—पहला उद्देश्य इस सभा का शिक्षा-सम्बन्धी है। गाँव

गाँव में जो स्कूल रियासत की तरफ़ से खुले हुए हैं उनकी सहायता यह सभा करती है। वहाँ की पठन-पाठन विधि की उन्नति का ध्यान रखती है। जो लोग निर्धनता के कारण थोड़ा भी ख़र्च अपनी सन्तान की शिक्षा के लिए नहीं कर सकते, सभा उनकी सहायता करती है। जिस गाँव में स्कूल तो है, पर अच्छा पुस्तकालय नहीं है, वहाँ यह सभा पुस्तकालय खोलने का यत्न करती है। १६०५ नवम्बर से १६०६ नवम्बर तक, एक साल में, इस सभा ने ३८ पुस्तकालय खोले थे। क़सबों में यह सभा ऐसे ऐसे समाज स्थापित करती है जिनके द्वारा बच्चों के माता पिता अपनी सन्तान के हित-साधन का विचार करते हैं।

२—दूसरा उद्देश्य दान सम्बन्धी है। दान का पात्र कौन है? इसका विचार सभा करती है। जिसे दान देना है वह सभा को भेज देता है; सभा उसको उचित और उपयोगी काम में ख़र्च करती है। भारतवर्ष की तरह नहीं, कि लाखों रुपये मन्दिर मसजिदों में फूँक दिये, या किसी पण्डे पुजारी की भेंट कर दिये। पाठक, आप ही कहिए—काशी, प्रयाग और गया के पण्डों को जो धन दिया जाता है क्या वह देशोपकार में ख़र्च होता है?

सभा के प्रतिनिधि, समय समय पर रियासत के जेलख़ानों, अनाथालयों और हवालातों में जाते हैं। वहाँ की हालत देखते हैं। क़ैदियों की अवस्था कैसे सुधर सकती है? इसका विचार करते हैं। स्कूलों की ज़रूरत होती है तो क़ैदियों के लिए स्कूल खोलने का प्रबन्ध करते हैं। क़ैदियों के रिश्तेदार यदि दानपात्र हों तो सभा उनकी सहायता करती है।

यदि किसी को नौकरी या रोज़गार की ज़रूरत है तो सभा उसके लिए काम तलाश कर देती है; और जब तक रोज़गार न मिले उसके रहने और खाने पीने का प्रबन्ध करती है।

३—सभा का तीसरा उद्देश्य पागल, अन्धे, बहरे, मोहताज लोगों के लिये स्कूल स्थापित करना है। उनके रहने के लिए अच्छे हवादार मकान शहर शहर में बने हुए हैं। ऐसे मकानों में रहने वालों के आराम का बहुत ख़याल रक्खा जाता है। मान लीजिये कि कोई लँगड़ा है, चल फिर नहीं सकता। उस के लिए छोटी छोटी गाड़ियां रक्खी जती हैं।*

४—चौथा उद्देश्य इस सभा का अच्छे साहित्य का प्रचार करना है। सभा की ओर से बांटने के लिये छोटी छोटी सचित्र पुस्तकें छपती हैं। वे मुफ़्त बांटी जाती हैं। सभा के अधीन जितने समाज हैं वे उनको प्रत्येक बालक के हाथ तक पहुँचाने का उपाय करते हैं। ऐसी पुस्तकों में प्रायः रोचक, परन्तु शिक्षा-प्रद कथायें रहती हैं।

५—पांचवां उद्देश्य इस सभा का कला-कौशल की उन्नति करना है। रियासत में जहां कहीं शिल्पकला के स्कूलों की ज़रूरत होती है, सभा वहां उनके खुलवाने का यत्न करती है। जिस बालक या बालिका की प्रवृत्ति कला-कौशल की ओर होती है, धन से उसकी सहायता करके सभा उसके उत्साह को बढ़ाती है।

*शिकागो विश्वविद्यालय के पास एक ऐसा ही बहुत बड़ा मकान है, जहां लंगड़े लूले रहते हैं। उनके लिए गाड़ियाँ मौजूद हैं। वे गाड़ियाँ ऐसी हैं कि हाथ से कल घुमाने से चलती हैं। इस तरह अमरीका के लंगड़ों की भी जिन्दगी अच्छी तरह कटती है—लेखक।

अमरीका की स्त्रियां ऐसे ही काम करती हैं। मैंने केवल उदाहरण के तौर पर इतनी बातें लिखीं। यदि आप यहां की स्त्रियों के सब काम देखें तो आपको भारत की स्त्रीजाति की अधोगति का अच्छी तरह अन्दाज़ हो।

अब ज़रा ग्रामीण-स्त्रियों का भी हाल सुनिए। शहरों की स्त्रियां तो अपने समय को देश और जाति के उपकार के लिए ख़र्च करती हैं, पर गांवों की स्त्रियां क्या करती हैं? आपको यह जानने की अवश्य ही इच्छा होगी। मुझे ख़ुद इस बात के जानने का बड़ा शौक़ था। कई साल गरमियों में मुझे शिकागो से बाहर दूसरी रियासतों में घूमने का अवसर हाथ लगा। वहां मुझे यह देख कर बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ कि चार पांच सौ की आबादी तक के गांवों में स्त्रियों की सभायें हैं। ये सभायें अपने अपने गांवों की ज़रूरतों को दूर करने के इरादे से खोली गई हैं। गाने बजाने का सामान सभी जगह है। यहां तक कि गाँव में क़रीब क़रीब सब के घर में पियानो (Piano) बाजा है। पुस्तकालयों का तो कहना ही क्या है। ग़रीब से ग़रीब के यहां भी पचास साठ उमदा उमदा ग्रन्थ होंगे। शेक्सपियर, जार्ज इलियट, इमरसन आदि साहित्याचार्य्यों के नाम आप झोपड़ियों तक में सुनेंगे।

अन्त में मैं यहां की स्त्रियों के कुछ दोष भी बतला देना ज़रूरी समझता हूं। सब से बड़ा दोष अमरीका में यह है कि स्त्रियां हद से ज़्यादा स्वतन्त्र हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि बड़े बड़े शहरों में व्यभिचार बढ़ता जाता है। एक बड़ा भारी सामाजिक दोष अमरीका में नाचना (Dancing Ball) है। जहां स्त्री और पुरुष मिलकर नाचते हैं कोई न कोई

तार ढीली हो ही जाती है। इस प्रकार आपस में नाचना प्रकृति के नियम-विरुद्ध काम करना है। भारतवर्ष में तो अंग-रेज़ हम लोगों को अपने नाच में आने ही नहीं देते, इस लिए हम लोग इसके दोष कम समझ सकते हैं, पर शिकागो में मुझे दो चार बार ऐसे नाचों में जाना पड़ा था। वहां नाचा तो क्या, जाकर बैठे बैठे तमाशा देखा किया। एक बार एक लड़की ने मुझे अपने साथ नाचने के लिए बहुत ज़ोर दिया। मैंने कहा—

"नाचना औरतों का काम है। मर्द नहीं नाचा करते।"

लड़की खिलखिला कर—

"तो यह सब लड़के आपकी समझ में औरतें हैं!"

मैं, मुस्करा कर—

"ख़ैर यह दूसरी बात है।"

जब दो बार नाच हो चुका तब उस लड़की ने फिर मुझ से कहा कि आप मेरे साथ नाचिए।

मैं—"भला अनजान आदमी कैसे नाच सकता है?"

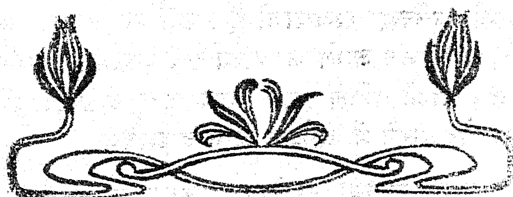
लड़की—"मैं आप को सिखला दूंगी।"

मैं हँस कर—"मैं बड़ा ही कुन्दज़हन हूं। कोई चीज़ जल्दी नहीं सीख सकता। आप को व्यर्थ कष्ट होगा।"

बस, पाठक, आप से जो कहना था उसे संक्षेप में मैं कह चुका। अब आप अमरीका की स्त्रियों के कामों का अपने यहां की स्त्रियों के कामों से मुक़ाबला कीजिए। अपने घरों की अमरीका के घरों से तुलना कीजिए। हमारे घर घर नहीं हैं। हमारी स्त्रियां हमारे हृदय के भावों को नहीं समझ सकतीं। जिन विषयों को हमने स्कूलों और कालेजों में पढ़ा है उनका

नाम तक वे नहीं जानतीं। पति बी० ए० है, पत्नी निरक्षर! आप खुद ही सोचें कि अज्ञान में पड़ी हुई हमारी माँ-बहनें क्या हमारी उच्चाभिलाषाओं में हमारी सहायक हो सकती हैं? हमारा आधा अङ्ग बिलकुल ही निकम्मा है। यदि आप अपना, अपनी सन्तान का, अपने देश का कुछ भी उपकार करना चाहते हों तो स्त्रियों की शिक्षा आदि का प्रबन्ध कीजिए। हर काम के करने का ढङ्ग होता है। हम लोग ढङ्ग नहीं जानते। हमको ढङ्ग सीखना चाहिए और जिस प्रकार हो सके देश में विद्या का प्रचार करना चाहिये।

अमरीका की स्त्रियों के दोष नहीं, गुण हमें ग्रहण करना चाहिए। जिस प्रकार वे परोपकार में रत हैं, जिस प्रकार वे समय को मूल्यवान समझती हैं, जिस प्रकार वे अपने उद्देश में दत्तचित्त रहती हैं—क्या कभी ऐसा भी समय आवेगा जब भारत की स्त्रियाँ भी उन्हीं की तरह सब काम करेंगी? फल के देनेवाले तो विश्वनाथ हैं, सन्तोष और धैर्य्य से काम करना हमारा काम है।

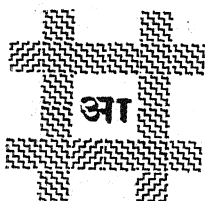


अमरीका की प्रसिद्ध

राजधानी

वाशिङ्गटन शहर

—— :*: ——



इये, नई दुनिया के नक़शे में यूनाइटेड-स्टेटस-अमरीका को ढूँढ़ें। मिला आपको? बस, यही मैदान का टुकड़ा नई दुनिया का शिरोमणि-संसार का सबसे धनाढ्य सम्पत्तिवान् देश-यूनाइटेड-स्टेट्स आव् एमरिका नाम से प्रख्यात है। आज हमको केवल इसकी राजधानी की सैर करना है। कहां है इसकी राजधानी? न्यूयार्क शहर से २२८ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर। न्यूयार्क शहर तो आपको आसानी से मिल जावेगा। इसी के दक्षिण-पश्चिम की ओर देखिये। पहिले फिलेडलफिया, फिर बालटीमोर, फिर वाशिङ्गटन दिखाई पड़ेगा। यही यूनाइटेड-स्टेट्स आव् एमरिका की प्रसिद्ध राजधानी है। यहीं पर इनका प्रेसीडेंट रहता है; अमरीकन जाति के प्रतिनिधि सत्ताक-राज्य का गढ़ यहीं पर है। आओ पहिले इसके नाम तथा इतिहास की कथा जानें, फिर सैर करने में अधिक आनन्द आवेगा।

१७७६ में नई दुनिया की तेरह बस्तियों का इङ्गलिस्तान के साथ झगड़ा आरम्भ हुआ। इस झगड़े के मुख्य कारण इङ्गलैंड निवासी थे। इन तेरह बस्तियों के लीडरों ने, पहिले

अरज़ी परचे, सभा कांग्रेसों द्वारा इङ्गलिस्तान वालों से अपने अधिकार लेने की बहुत कोशिश की, आख़िर 'तंग आयद बजंग आयद' वाली कहावत चरितार्थ हुई। उन तेरह बस्तियों का अङ्गरेज़ों से घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। यह युद्ध पांच वर्ष तक रहा और अन्त में—

"All governments derive their just powers from the consent of the governed."

"राज्य-शासकों को शासन के अधिकार प्रजा की स्वीकृति से मिलते हैं" इस सत्य सिद्धान्त की अक्षरशः जय हुई। तेरह बस्तियां आज़ाद हो गईं। तब से यूनाइटेड-स्टेटस आव् अमरीका का नाम संसार की जातियों की लिस्ट में लिखा गया। इस नये स्वतन्त्र देश की राजधानी कहां होनी चाहिये? यह प्रश्न जाति के लिये बड़े महत्व का था। सभी कोई अपनी अपनी रियासत में राजधानी चुनने की सलाह देते थे। आख़िर इस झगड़े का फैसला देशभक्त श्रीमान जार्ज वाशिंगटन पर छोड़ा गया। इस वीर ने अपनी मातृभूमि की निष्काम सेवा की थी; अपना तन, मन, धन अपने प्यारे देश की आज़ादी के लिये कुरबान किया था, अपने रण कौशल से शत्रुओं के दांत खट्टे किये थे, और सबसे बढ़ कर अपने निष्कलंक चरित्र तथा.........देश-प्रेम के कारण अपने देश वासियों से (Father of his country) (अपने देश का पिता) की पूज्य उपाधि ग्रहण की थी। ऐसे सर्वप्रिय पुरुष का फ़ैसला सब को मान्य था। और होता भी क्यों न।

अपने देश बन्धुओं की आज्ञा पाकर देशभक्त जार्ज वाशिङ्गटन ने पोटोमिक नदी के उत्तर-पूर्वीय भूमि को इस कार्य्य के

लिये चुना। मेरीलैण्ड तथा वरजिनिया रियासतों ने अपनी कुछ भूमि राजकार्य्य हेतु गवर्नमेंट को प्रदान की और इस ६९$\frac{1}{8}$ वर्गमील भूमि का नाम (Dsitrict of Columbia) रक्खा गया। इसका राज्य शासन प्रबन्ध काँग्रेस के हाथ में आया। कोलम्बिया के इस जिले में राजधानी 'वाशिंगटन शहर' की नींव डाली गई, और यह अमरीका वालों की वीर पूजा (Hero worship) का जीवित प्रमाण है। अपनी राजधानी का ऐसा नाम रख कर अमरीका वालों ने अपने परमपूज्य देश हितैषी वाशिंगटन को अमर बना दिया। आज उसी वाशिंगटन-कीर्ति-स्तम्भ राजधानी की सैर करने हम लोग चलते हैं, और देखते हैं वहां क्या हो रहा है।

न्यूयार्क से घंटे घंटे बाद रेलगाड़ी वाशिंगटन शहर की ओर छूटती है। साधारणतया कई एक कम्पनियों की गाड़ियां जाती हैं, पर पेनसलवेनिया कम्पनी का प्रबन्ध जगत विख्यात है; उसका किराया भी औरों से अधिक है। आज मध्याह्न एक बजे की गाड़ी में सवार होकर चलते हैं। पांच घण्टे आनन्द से बीत गये। संध्या को गाड़ी वाशिंगटन शहर पहुंच गई। लीजिए हम थोड़े में ही आप को यहां ले आये।

यूनियन रेलवे स्टेशन* की इमारत को देख कर आप दङ्ग क्या होते हैं? क्या आप ने कभी लाहौर का स्टेशन नहीं देखा? हां, इतना ज़रूर है कि यहां पर लाहौर जैसी बेइन्तज़ामियां नहीं होतीं। मुसाफिरों को धक्के पर धक्के नहीं पड़ते; उनसे पशुओं का सा बर्ताव नहीं किया जाता। तीसरे दरजे के यात्रियों का हृदय विदारक दृश्य यहां नहीं है। ख़ैर

* यूनियन रेलवे स्टेशन बनाने में तीन करोड़ नब्बे लाख रुपये से अधिक ख़र्च हुआ है—लेखक।

महाशय, उस नज़ारे को कुछ देर के लिये भूल जाइये। इधर देखिये, यह रास्ता बाहर को जाता है।

यह बिजली की गाड़ी हम लोगों को शहर ले चलेगी और Iowa Centre आयोवा सेन्टर के निकट पहुंचा देगी। इसी में बैठ कर चलना ठीक होगा।

आप लोग अन्दर चलकर गाड़ी में बैठें, हम सब का भाड़ा चुकाये देते हैं।

ढाई आना फ़ी आदमी!

जी हाँ, पर किराया आपको बहुत इसलिये मालूम होता है कि आप भारतवासी हैं, जहां हर आदमी की आमदनी प्रायः तीन पैसे रोज़ है।

अब आप अमरीका में आ गये हैं। यहाँ का रँग ढँग देखिये।

कैसी चौड़ी गलियाँ इस शहर की हैं!

हाँ, हाँ, आपने समझा क्या! यहां भी काशी थोड़े ही है जो कुंज गलियों से गुज़ारा चल जावेगा! मालूम है आप को? यहाँ की गलियों की चौड़ाई ८० फ़ीट से १६० फ़ीट तक है।

अहा! कैसी सफ़ाई है!

क्यों न हो, यह कलकत्ता तो नहीं है जो ज़रा सी वृष्टि होने पर कीचड़ में लत पत हो जाता है। श्रीमान्, यह वाशिङ्गटन शहर है। यह अमरीका की राजधानी है, भारत की राजधानी दिल्ली नहीं।

देखिये महाशय, यह प्रकाश! मानो दिन चढ़ा है।

बेशक, क्यों न हो। अन्धकार का नाश करना ही मनुष्य का परम धर्म है। यह प्रकाश हमको बहुत कुछ शिक्षा देता

है। जहाँ जितना अन्धकार है वहाँ उतना अधिक अन्याय है। अन्याय को दूर करने का सीधा सादा उपाय प्रकाश का फैलाना है। भला, क्या इन विद्युत-प्रकाशित गलियों में चोर निर्भय घूम सकते हैं ?

हमारे शहरों और इस शहर में ऐसा भेद क्यों ?

क्या इसका उत्तर भी हमीं दें। कुछ तो बुद्धि आप लोग भी ख़र्च करिये। आइये हम लोगों को यहां उतरना है।

वह फ़र्श asphalt* का है, और यह सीमेण्ट का—उस पर गाड़ी, घोड़े चलते हैं और यहां पर आदमी। यह प्रबन्ध सभी शहरों में है। यह आयोवा सेन्टर है ! यहाँ पर वेदान्त सोसाइटी की अधिष्ठात्री वेदमाता नाम्नी अमरीकन लेडी रहती है। रात को इसी बिल्डिङ्ग में कमरा ले कर सो रहते हैं, भोर होते ही राजधानी की सैर को चलेंगे। ढाई रुपये के क़रीब एक रात का किराया फ़ी आदमी लगेगा, और भोजन पका पकाया अपने पास है ही ; बस छुट्टी हुई।

उठिये महाशय, शीघ्रता कीजिये ; सन्ध्यावन्दन से निपटिये। आज हम लोगों को बहुत कुछ देखना है। सुस्ती से काम नहीं चलेगा। घड़ी में पौने सात बजे हैं और हम लोगों को साढ़े आठ बजे यहां से ज़रूर चलना चाहिये। सबसे पहले (Washington Monument) वाशिङ्गटन कीर्ति-स्तम्भ देखने चलेंगे। उसका द्वार नौ बजे से खुलता है।

तो क्या वह वाशिङ्गटन कीर्ति-स्तम्भ है ? जी हां, वही सब से ऊंचा मीनार उस महान पुरुष की कीर्ति का परिचय संसार को दे रहा है। वह कह रहा है—

* एक प्रकार का पत्थर।

"संसार में उसका जीवन धन्य है जिसने अपनी आयु को अपने देश, अपनी जाति की सेवा में लगाया हो। वह कौन है जो नहीं मरेगा। मृत्यु सब के लिए है, पर वह जन्म सार्थक है जो जाति के दुःख दूर करने में व्यतीत हो। दुनियाँ के विषयों से ऊपर उठो; लोभ लालच को लात मारो; सम अधिकारों की दुन्दुभी बजाओ और मनुष्य जाति को न्याय की शिक्षा दो। स्मरण रक्खो, अन्त को सत्य की जय होगी—यदि इसके पालन में कष्ट आवे तो मत घबराओ। परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रक्खो। वह उनकी सहायता करता है जो न्याय के पथ पर चलते हैं। अमरीकन जाति ने १७७६ में न्याय हेतु युद्ध किया था, परमात्मा ने उनकी सहायता की। यदि अमरीकन लोग न्याय से विमुख हो जावेंगे तो परमात्मा उनको वैसा दण्ड देगा।"

बेशक, आप का कथन ठीक है। यह कीर्ति-स्तम्भ उसी सत्य सिद्धान्त की शिक्षा देता है।

अब तो हम लोग बहुत निकट आ गये। देखिये, दरवाज़े के बाहर और भी दर्शक लोग खड़े हैं, जो स्तम्भ के ऊपर जाना चाहते हैं।

आहा! यहाँ भी खटोला है। यह बहुत अच्छा हुआ, नहीं तो लम्बी चढ़ाई चढ़नी पड़ती। यह अमरीका है, श्रीमान्! यहाँ लोग व्यर्थ दुःख नहीं उठाते। कोई न कोई तरकीब सोच ही लेते हैं। अपने देश के लोगों की भाँति क़िस्मत के भरोसे नहीं बैठे रहते।

चलिये खटोले के अन्दर।

सर-र-र-र-र-र-र करता हुआ खटोला ऊपर को उठा और थोड़ी देर में हम लोग झट ऊपर पहुँच गये।

आप के ख़्याल में इसकी उँचाई कितनी होगी? आइये, इस आदमी से पूछें। यह यहाँ का नौकर जान पड़ता है।

वह कहता है ५५५ फ़ीट ५ इञ्च इस मीनार की उँचाई है और संसार के सब मीनारों से यह ऊँचा है। बाहर की इमारत मेरीलेण्ड के संगमरमर से बनाई गई है, और अन्य भाग न्यूइङ्गलेण्ड के (granite) ग्रेनिट पत्थर से। इस कीर्ति-स्तम्भ पर ३६ लाख रुपये से अधिक ख़र्च हुआ है।

वह यह भी कहता है कि यदि प्रत्येक छत के प्लेटफ़ार्म पर उतर उतर कर देखो तो बहुत ही नायाब कुतबे पत्थर दिखाई पड़ेंगे। यह भिन्न भिन्न देशों से लाकर यहां दीवारों में जड़े गये हैं। चीन, श्याम, जापान आदि के तो चिन्ह यहाँ हैं पर भारत का कोई भी नहीं है। इसके पास देशहितैषी जार्ज वाशिङ्गटन की भेंट के लिए कोई वस्तु नहीं थी। हो भी कैसे?

आइये, इन खिड़कियों से नगर की शोभा देखें।

यह देखिए, दो दो खिड़कियाँ प्रत्येक भाग में हैं और सब मिला कर आठ खिड़कियां हैं।

इधर दृष्टि डालिये। वह सामने उत्तर की ओर जो श्वेत भवन दीख पड़ता है वही श्रीमान् प्रेसीडेंट महोदय का विशाल गृह है। आजकल इसमें प्रेसीडेंट टाफ़्ट विराजमान हैं।

वह पूर्व की ओर जो गुम्बदनुमा छतरीवाला वृहत भवन दिखाई देता है वही राजधानी की प्रधान इमारत है। इसको चल कर देखेंगे।

इन दो भवनों के बीच में दूर तक निगाह दौड़ाइये—कैसा अपूर्व दृश्य है। उद्यानों की छटा कैसी मनोहर है। और ज़रा अधिक दृष्टि दौड़ाने से उन सुन्दर पहाड़ियों का नज़ारा भी

देखिए। इधर नज़र डालिये, पोटोमेक नदी क्या चक्कर काटती हुई जाती है। मीलों इसकी धारा की शोभा देखिए।

ज़रा इस पश्चिम का रङ्ग भी लूटिये। वह दूर वरजिनियां के नीले पर्वतों की श्रेणियां क्या सौन्दर्य दिखा रही हैं। प्रकृति की शोभा क्या कहिये। आहा! प्रभु की लीला अपरम्पार है।

सत्य है, संसार के विषयों से ऊपर उठ कर, उनको नीचे छोड़—बन्धन काट देने से ही—सच्चा आनन्द मिल सकता है। ऊपर उठने से हमारी दृष्टि का (scope) फैलाव बढ़ता है, तङ्ग-दिली दूर होती है। 'कूपमंडूक' के क्षुद्र विचार नष्ट हो जाते हैं।

महात्माओं के कीर्ति-स्तम्भ इसीलिये बनाये जाते हैं। जार्ज वाशिङ्गटन की महान् आत्मा यही शिक्षा देती है। उसके कीर्ति-स्तम्भ पर चढ़ने से उस महान् पुरुष के कारनामों का अनुभव होता है।

देखिये, दस तो यहीं बज गये। चलिये जल्दी, अभी बहुत कुछ देखना है।

× × × ×

अच्छा, आइये अमेरिका के प्रेसीडेंट का घर (White House) श्वेत-भवन देखने चलें। रास्ते में स्मिथ सोनियन शाला (Institution) है उसकी भी झांकी लगाते चलेंगे, जातीय अजायबघर भी पास ही है उसका दर्शन भी हो जावेगा।

शायद आप स्मिथसोनियन-शाला का ब्योरा जानने के उत्सुक होंगे; लीजिये हम पहिले वही बताते हैं।

स्मिथसन नामी एक भद्र अँगरेज़ वैज्ञानिक विद्या प्रचार का बड़ा प्रेमी था। उसने अपनी सारी जायदाद, जो पन्द्रह

लाख रुपये के क़रीब मिलकियत की थी, अमेरिकन गवर्नमेंट के नाम वसीयत कर दी ताकि उससे वाशिङ्गटन नगर में एक वैज्ञानिकशाला खोली जावे। उस शाला द्वारा विज्ञान सम्बन्धी बातों का प्रचार सर्वसाधारण तक करने का उद्देश्य इस उदार अँगरेज़ का था। यह बात १८२९ की है। अमेरिकन गवर्नमेंटने इस रक़म में और मिलाकर १८४६ में इस वैज्ञानिकशाला की बुनियाद डाली और इसका नाम दानी के नाम पर 'स्मिथ-सोनियनशाला' रखा।

यह तो इस शाला का इतिहास हुआ। बाक़ी अन्दर चल कर देखते हैं।

यह देखिये अमेरिका के असला बाशिन्दों के नामोनिशान! यह सारा कमरा ऐसी ही प्राचीन वस्तुओं से भरा हुआ है। अमेरिका के रेड इण्डियनों के घरों के नमूने देखिये—पांच चार लकड़ियां खड़ी करके उसे वे कपड़े से ढक लेते थे—बस हो गया घर! इनके तीर कमान, इनके देवी देवता, इनके पूजने के स्थान, सभी बालकपन के खिलवाड़ समान हैं। सभ्यता की यह आरम्भावस्था है। बस ऐसी ही पुरानी चीज़ें यहां दिखलाई गई हैं।

जातीय अजायबघर भी वैसा ही समझिये जैसा कि अजायबघर होता है। भांति भांति के परिन्दों, जानवरों, पशुओं कीड़ों आदि के नमूने दिखाये गये हैं।

आइये, ज़रूरी और असली बातें देखने चलें।

× × × ×

यही सफ़ेद खम्भों वाला भवन (White House) कहलाता है। अमेरिकन जाति के प्रेसीडेंट श्रीमान् टाफ़्ट् यहीं

विराजते हैं। यह प्रेसीडेंटों के रहने की जगह है। प्रत्येक चार वर्ष उपरान्त अमेरिकन लोग अपने प्रधान का चुनाव करते हैं। यही प्रधान इनका प्रेसीडेंट, राजा महाराजा, सभी कुछ है। चार साल बाद फिर चुनाव होता है और सर्वप्रिय पुरुष प्रेसीडेंट बनाया जाता है।

इस 'श्वेत भवन' की नींव अक्तूबर १७६२ में पूज्यवर जार्ज वाशिङ्गटन ने रखी थी। १७६६ में यह भवन बनकर तय्यार हो गया था। यह इमारत विरजिनिया पत्थर की है। इसकी लम्बाई १७० फ़ीट है और चौड़ाई ८६ फ़ीट है।

अच्छा चलिये, ज़रा अन्दर चल कर देखें।

दरबान से आज्ञा लेनी आवश्यक है। यह पौधे क्या सुन्दर दीख पड़ते हैं। गरमियों में यहां कैसी बहार होती होगी। इस दूसरे दरबान से पूछ कर अन्दर चलते हैं।

यहां प्रेसीडेंट भवन के चीनी के बर्तन हैं। यह बहुत क़ीमती हैं। समय समय पर इनको इस्तेमाल करते होंगे। दीवारों पर इन देवियों के जीते जागते चित्र देखिये। यह तैल-चित्र हैं। कारीगरों के हस्तकौशल का नमूना है। यह चित्र देवी टायलर का है और यह श्रीमती रूज़वेल्ट का।

जब कभी कोई रङ्गरलियां होती हैं तो इस भवन के ऊपर के हाल में प्रेसीडेंट अपने मित्रों का स्वागत किया करते हैं।

इस हाल की सजावट अपूर्व है। इन मेज़ों पर सुनहला काम देखिये। वे सामने की दीवारों पर जो शीशे टंगे हैं उनकी क़ीमत बहुत अधिक जान पड़ती है। खिड़कियों के परदों की शोभा निराली है। छत में सोने का काम भी सराहनीय है।

कुछ ही हो, हमारे राजे महाराजाओं को ये नहीं पहुंचते। उनके भवनों का सौन्दर्य इन से कई गुना बढ़ कर होता है।

× × × × ×

घड़ी में इस समय एक बज गया है। नाश्ता करके फिर राजधानी का वृहत् भवन देखने चलेंगे।

× × × × ×

राजधानी के इस वृहत्भवन की शोभा सचमुच दर्शनीय है। इस इमारत की बनावट में महानता है। इसका बड़ा गुम्बद क्या कहता है? उस गुम्बद की लालटेन—और उस लालटेन के ऊपर! अहा! साक्षात् स्वतन्त्रता देवी की मूर्त्ति! यही देवी सर्वसिद्धियां दायिनी है। यही मोक्षदातृ भगवती है। देवी के दाहिने हाथ में तलवार है और बायें हाथ में फूलों की माला। इस मूर्त्ति को देखने से मन में क्या पवित्र और उच्च भाव उठते हैं। लेखनी में वर्णन करने की शक्ति कहां!

देवी के सिर पर अमेरिकन झण्डे की चद्दर है। ख़ैर, यह तो अपनी अपनी श्रद्धा है। सूर्यवंशियों ने सूर्य्य-चित्रित चद्दर भेंट की; चन्द्रवंशियों ने चन्द्र-चित्रित, और जिन के पास भेंट धरने को कुछ नहीं है उन्होंने अपनी आहों से ही देवी के पैर चूमे।

देवी को नमस्कार करके अन्दर चलते हैं।

इस दरबान के साथ चल कर देखना ठीक होगा, क्योंकि इसके साथ चलने से कई नई बातों का पता लग जावेगा। मध्य के चक्कर से आरम्भ करते हैं।

गुम्बदनुमा इस बड़े चक्कर को राजधानी के वृहत्भवन का केन्द्र समझिये; बाक़ी सब कमरे इसके इर्द गिर्द हैं। इस गोलघर के गुम्बद पर 'अमेरिका देवी' की मूर्ति है। यह क्या

जना रही है? ग़ौर से देखिये। इसके पाओं पर गिद्ध अपने पङ्ख फैलाये है; इस मूर्ति की ढाल 'यूनाइटेड स्टेट्स' इस नाम से अङ्कित है और यह ढाल एक वेदी पर आश्रित है। उस वेदी पर क्या खुदा है?

"July 4, 1776"

१७७६ सन् की चौथी जूलाई। उस दिन अमेरिका (यूनाइटेट-स्टेट्स) का जन्म हुआ था। उस दिन अमेरिका के सच्चे पुत्रों ने (Declaration of Independence) स्वतन्त्रता की घोषणा दी थी। यह दिन अमेरिका का पवित्र दिन है और प्रत्येक वर्ष इस दिन बड़ा उत्सव मनाया जाता है।

अमेरिका-देवी का ध्यान किस ओर है? देवी आशा-पूर्ण ध्यान से न्यायाश्रित सात सेपटेम्बर, १७८७, के नियमबद्ध व्यवस्था-पत्र (Constitution) को सुन रही हैं।

यह मूर्ति बड़े पवित्र भाव उत्पन्न करती है। क्या हम उनका उल्लेख यहां पर कर सकते हैं?

इसका उत्तर हम नहीं देते। चलिये आगे बढ़ें, घड़ी में तो तीन से ऊपर हो गये हैं।

गोलघर की दीवारों पर के चित्रों पर दृष्टि डालिये। यह भी तैल-चित्र हैं। पहिला चित्र भूगोलवेत्ता कोलम्बस की आमद का है। जब आप अक्तूबर १२, १४९२ को सेनसालवेडार में उतरे थे। दूसरे तीसरे चित्र न जाने किस के हैं। चौथा देखिये। यह (Pilgrims) यात्रियों का है जो इङ्गलिस्तान के अन्याय से भाग कर अमेरिका आ बसे थे। पांचवां चित्र 'घोषणापत्र' सम्बन्धी है। जब अमेरिकन बस्तियों के नेताओं ने इङ्गलिस्तान से पृथकता ग्रहण कर अपने आप को

स्वतन्त्र किया था। छठा चित्र जनरल वरगायनी की अधीनता (हार मानने) का है। इस युद्ध में अङ्गरेज़ी अफ़सर ने परास्त हो अपने हथियार अमेरिकनों को सौंपे थे। सातवां चित्र कार्नवालिस की परास्त का है। जनरल कार्नवालिस अङ्गरेज़ी फ़ौजों के मुखिया थे। इनकी हार पर अमेरिकन युद्ध का अन्त हुआ था। आठवाँ चित्र उस समय का है जब जनरल वाशिङ्गटन ने मातृभूमि की सेवा कर, उसके बन्धन काट, उसे स्वतन्त्र कर बाद में अपने आप को माता का एक साधारण पुत्र बनाया था। यह चित्र बड़े महत्व का है। "आत्मसमर्पण" का सच्चा उदाहरण है। फ़ौजों की सारी शक्ति जनरल वाशिङ्गटन के हाथ में थी। वे चाहते तो नेपोलियन की भाँति देश को अपने क़ाबू में कर लेते मगर नहीं, उस वीर को माता का सच्चा प्रेम था।

× × × × ×

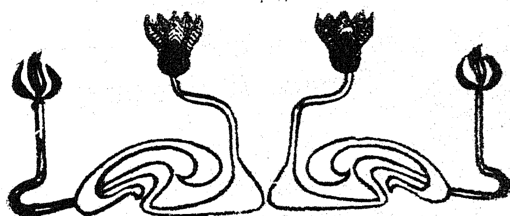
आज कांग्रेस का इजलास हो रहा है। चलिये ज़रा उसकी ओर भी निगाह डालते चलें। यहां तो इतनी भीड़ है। बारी, बारी अन्दर गेलरियों में जाने देते हैं। अपनी बारी पर हम लोग भी घुस चलेंगे।

हैं! यह क्या! नीचे हाल में तो थोड़े ही मेम्बर है। कुरसियां ख़ाली हैं। एक सेनेटर व्याख्यान भी दे रहा है। सुनने वाले, चार दश ही हैं। हाँ गेलरियों में स्त्री पुरुष भरे हैं। यह क्यों? इसका रहस्य बाद में मालूम होगा। यहां का वृत्तान्त किसी से पूछेंगे।

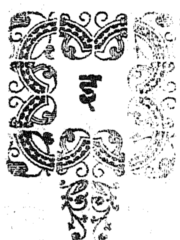
सेनेट का यह 'हाल' ख़ासा बड़ा है। इसकी दीवारों की सजावट में सोने का काम बहुत है और चित्र विचित्रता

का तो कहना क्या। छत, दीवार, शीशा आदि सभी कला-कौशल के नमूना हैं। देश के महान पुरुषों को सभी जगह स्थान दिया गया है; उनकी प्रतिष्ठा की गई है। हाल में कुर-सियां अर्द्ध चन्द्राकार चुनी हुई हैं। प्रत्येक कुरसी के आगे एक एक डेस्क है। प्रेसीडेण्ट का डेस्क बीच में प्लेटफ़ार्म पर है।

अब अधिक क्या देखना है। चलते हैं। सारा दिन घूमते फिरते थक गये। बाक़ी फिर कभी सही। आज इतनी ही सैर समझिये। यदि फिर किसी दिन छुट्टी हुई, तो बाक़ी भाग की भी सैर करवाएंगे। इससे अधिक यदि देखें भी तो मज़ा नहीं आवेगा, क्योंकि दिमाग़ थक गया है; अधिक ग्रहण नहीं करता।



शिकागो-विश्वविद्यालय



इस लेख में मेरा आशय केवल शिकागो विश्व-विद्यालय की बड़ी बड़ी इमारतों का वर्णन करना नहीं, किन्तु भारतवर्ष के विद्या-प्रचार सम्बन्धी महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने का भी है। मुझे अमेरिका के शिकागो-विश्वविद्यालय के उदाहरण द्वारा यह दिखलाना है कि किस प्रकार भारतवर्ष के कालेज और पाठशालायें विश्वविद्यालय के रूप में होकर देश के लिये लाभकारी हो सकती हैं? किस प्रकार अमेरिका में नवयुवकों को आत्मसाहाय्य की शिक्षा दी जाती है? किस प्रकार अमेरिका के धनाढ्य पुरुष अपनी सम्पत्ति को देश के उपकारार्थ अनेक प्रकार के विज्ञान सम्बन्धी कालेज और स्कूल खोल कर ख़र्च करते हैं? इस लेख के पढ़ने से यह भी ज्ञात होगा कि अमेरिका के बच्चों की शिक्षा का सारा सम्बन्ध उन्हीं के मां-बाप के हाथों में है। क्या ईसाई, क्या मुसलमान, क्या यहूदी, क्या मारमन, क्या थियासोफ़िस्ट, सभी विद्यार्थियों के पठन-पाठन का एक सा प्रबन्ध है।

यह नहीं कि लोग अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग ही पकाते हों। सब कहीं प्रेम और एकता का अखण्ड राज्य है। एक दूसरे के अधिकारों के लिये एक सा ध्यान है। यही कारण है कि प्रशान्त महासागर से लेकर एटलांटिक महासागर तक सब अमेरिकानिवासी अपनी जाति की उन्नति में

दृत्त चित्त हैं और संसार की समृद्धि उनके सामने हाथ बांधे खड़ी है।

सब से पहले मैं उस धर्मात्मा, सदाचारी, विद्वान् शिरोमणि पुरुष का परिचय आप से कराता हूं, जिसके पुरुषार्थ से शिकागो-विश्वविद्यालय इस प्रसिद्धि को पहुंचा है। उस महा-पुरुष का नाम विलियम रेने हारपर है। आपने शहर निउ कनकार्ड (New Concord Ohio) के हाई स्कूल में विद्या-ध्ययन प्रारम्भ किया और मस्किङ्गम नामी कालेज से १४ वर्ष की उम्र में बी० ए० की पदवी प्राप्त की। इसके बाद आप तीन वर्ष तक भाषाओं का अध्ययन करते रहे। १८७५ में उन्होंने अमेरिका की प्रसिद्ध यूनिवर्सिटी येल (Yale) में पढ़ कर Ph. D (दर्शनशास्त्र के आचार्य्य) की पदवी पाई।

इसके उपरान्त कई विश्वविद्यालयों में आप अध्यापक तथा अधिष्ठाता रहे। १८९१ में वे शिकागो के पुराने विश्वविद्यालय के प्रेज़ीडण्ट नियत हुये; और १८९१ से लेकर १९०६ के जन-वरी मास तक तन मन से उसकी सेवा करते हुये परलोक-गामी हुये।

यह इन्हीं महाशय के परिश्रम, निःस्वार्थ भाव और विशाल बुद्धि का प्रभाव था, जिससे शिकागो विश्वविद्यालय का नाम एक साधारण कालेज से १४ वर्ष के अन्दर संसार के बड़े बड़े विश्वविद्यालयों की गणना में आने लगा। इन्हीं के प्रभाव से अमेरिका के प्रसिद्ध धनी जान डी० राकफेलर ने इनके विद्या-लय के लिये १ करोड़ ३० लक्ष रुपया दिया। इनके वाक्य को कोई नहीं टालता था। जिससे जाकर कहते कि विश्वविद्या-लय के लिये अमुक वस्तु की आवश्यकता है वह इनका बचन ज़रूर पूरा करता था।

एक बार इन को अपने विद्यालय के लिये एक दूरबीन दरकार हुई। आपने शिकागो के धनाढ्य पुरुष यरकस साहब से कहा। उन्होंने तत्काल इनकी बात मान ली और एक बड़ी दूरबीन मंगादी जो दुनियां भर में सब से बड़ी थी।

यद्यपि हमारे देश में भी ऐसे ऐसे महापुरुष हैं जिनकी इच्छामात्र से विद्यालय खुल सकते हैं; परन्तु उन्होंने दान का उचित प्रयोग अभी तक करना ही नहीं सीखा। जिस दिन हमारे देश के सत्पुरुष जाति के उन्नति के मर्म को समझेंगे, उसी दिन कला-कौशल और विज्ञान-शिक्षा का प्रबन्ध होने में देर न लगेगी।

१८८६ में शिकागो नगरी के बेपटिस्ट सम्प्रदाय के धनाढ्य पुरुषों ने एक साधारण कालेज की स्थापना की। १८६१ ई० में, प्रेज़ीडेण्ट हारपर, कालेज के प्रधान नियत हुए। तब उन्होंने उसे विद्यालय का रूप देना चाहा, जिसका सम्बन्ध किसी ख़ास सम्प्रदाय या जन-समुदाय के साथ न हो; जिसमें सब तरह के स्वतन्त्र विचार वाले प्रोफ़ेसर शिक्षा दे सकें। मतलब यह कि किसी की विचार स्वतन्त्रता में बाधा न आवे। प्रेज़ीडेण्ट हारपर स्वयं बड़े स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे। वह जानते थे कि जिस स्कूल या कालेज में विचार-स्वतन्त्रता नहीं; जहां के प्रबन्धकर्ताओं के विचार संकीर्ण हैं, वहां के विद्यार्थी कभी उदाराशय नहीं हो सकते। वे जानते थे कि साम्प्रदायिक कालेजों के विद्यार्थियों के विचार अवश्य ही संकीर्ण होते हैं, इससे वे अपने भविष्य जीवन में जन-समाज को पूर्ण लाभ नहीं पहुंचा सकते। उनके इस विचार की यथार्थता हम अपने देश में देखते हैं। भारतवर्ष में पृथक् पृथक् मतों और सम्प्रदायों के कई कालेज और पाठशालाएँ हैं।

भारतवासियों की चेष्टा सदा अपनी अपनी झोपड़ी अलग बनाने की रहती है। यही कारण है कि एक कालेज वाले दूसरे से द्वेष रखते हैं। एक मत दूसरे को देख नहीं सकता। यदि ऐसी पाठशालाएँ और कालिज बनाने की चेष्टा की जायँ जहां क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या सिख, क्या बौद्ध, क्या जैनी, क्या ईसाई सभी विद्यार्थियों के लिए एक सा प्रबन्ध हो, और हर एक विद्यार्थी को दूसरे के साथ उठने, बैठने; मिलने और बातचीत करने का अवसर मिलता रहे, तो उनमें सहनशीलता ज़रूर आ जाय। वे दूसरे के विचार प्रेम से सुनने के आदी हो जायं; और विचारों की भिन्नता होने पर भी द्वेष करना छोड़ दें। क्योंकि उन्नति बिना भिन्न विचारों के नहीं हो सकती। इस बात का विस्तृत विचार मिल साहब ने अपनी "स्वाधीनता" नामक पुस्तक में किया है।

प्रेज़ीडेंट हारपर अपने विचार और उद्योग में सफल मनोरथ हुए। १० एकड़ भूमि मारशल फ़ील्ड ने दी। विश्व-विद्यालय की इमारतें बननी प्रारम्भ हुईं। १८९२ में मतलब भर के लिये इमारतें तैयार हो गईं। उस समय केवल ६०० विद्यार्थी थे, जिनके लिये ४ इमारतें काफ़ी हुईं। आज तक २८ इमारतें और बन गई हैं; और दस एकड़ भूमि से १४० एकड़ भूमि यूनीवर्सिटी के अधिकार में आ गई है। इस समय शिकागो विश्वविद्यालय की जायदाद ५ करोड़ ४० लाख रुपये की है।

विश्वविद्यालय के नियमानुसार कालेज के विद्यार्थी दो विभागों में विभक्त हैं, Senior College Students (ऊंचे दर्जे के विद्यार्थी) और Junior College Students (नीचे दरजे के विद्यार्थी)। नीचे दरजे के विद्यार्थियों के भी दो विभाग

हैं—Freshmen (नवीन) और Associates (सहचर या पुराने) नवीन विद्यार्थी वे कहलाते हैं जो हाई-स्कूल में परीक्षोत्तीर्ण होकर कालेज में भरती होते हैं। उनको कालेज में भरती होने के लिए १५ "यूनिट" (एक यूनिट १५० घण्टे का होता है) का काम सिखलाना पड़ता है। उसमें से तीन "यूनिट" अंगरेज़ी, २½ "यूनिट" गणित (जिसमें रेखागणित और बीजगणित भी शामिल हैं), तीन "यूनिट" यूनानी, लातिनी या जरमन भाषायें, दो "यूनिट" अमरीका और योरुप का इतिहास। बाक़ी ४½ "यूनिट" भिन्न भिन्न विषय। यथा— Botany (वनस्पति-विद्या), Zoology (प्राणिधर्म-विद्या) Physiology (दैहिकधर्म-विद्या), Chemistry (रसायन विद्या), Physics (भौतिकविद्या), Astronomy (ज्योतिःशास्त्र) Mechanics (यंत्र-विद्या), Political Economy (सम्पत्ति-शास्त्र), Drawing (नक़शा-निवासी) आदि।

जिस विद्यार्थी ने किसी अच्छे हाई स्कूल में १५ "यूनिट" का काम न किया हो वह कालेज में भरती नहीं हो सकता। कालेज में दाख़िल होने के उपरान्त नौ "यूनिट" का काम पूरा करने पर उसे एसोसिएट की पदवी मिलती है। फिर वह Senior College (ऊँचे दरजे के कालेज) में प्रवेश पाने का अधिकारी होता है।

विश्वविद्यालय में A. B. (ए० बी०) Ph. B (पी एच० बी०) B. Lt. (बी० एलटी०), B. S (बी० एस०) Ed. B. (ईडी० बी०), तथा A. M. (ए० एम०) Ph. D. (पी-एच० डी०), D. D. (डी० डी०) और LL. D (एल एल० डी०) आदि की पदवियां दी जाती हैं।

विश्वविद्यालय का वर्ष जाड़ा, गरमी, बसन्त और पतझड़ के नाम से तीन तीन महीने के चार भागों या क्वार्टरों में बँटा हुआ है। प्रत्येक भाग या क्वार्टर १२ हफ्ते का होता है। प्रत्येक हफ्ते में ४ या ५ दिन पढ़ाई होती है। प्रत्येक विद्यार्थी तीन या चार विषयों से अधिक नहीं ले सकता। उदाहरण के तौर पर मैंने एक जाड़े के क्वार्टर में अंगरेज़ी, सोशियोलोजी (समाजशास्त्र) और पोलीटिकल सायंस (राजनीति विज्ञान) लिये थे। तीन घंटे रोज़ की पढ़ाई है, जिसके लिये ४० रुपये महीना फ़ीस है। यदि एक विषय और अधिक लिया जाय तो २० रुपये और देना पड़ता है। अर्थात् ४ विषय लेने वाला विद्यार्थी ६० रुपये महीना फ़ीस देता है।

एक क्वार्टर की पढ़ाई का नाम एक मेजर है। जिस विद्यार्थी को बी० ए० की पदवी लेनी है उस को ऐसे ऐसे ३५ मेजर पूरे करने पड़ते हैं। दूसरी पदवियों के लिये अन्तर केवल विषयों में है। सायन्स (विज्ञान) की पदवी के लिये कुछ विषय जुदा हैं; और साहित्य के लिये भी। बाक़ी २६ मेजर सब के लिये एक से हैं। विद्यार्थियों को व्यायाम और वक्तृता का भी अभ्यास करना पड़ता है, जिसके लिये जुदा प्रोफ़ेसर हैं।

यह आवश्यक नहीं कि विद्यार्थी लगातार ही पढ़ने पर पदवी पा सकता है। कई वर्षों का अन्तर देकर विद्यार्थी अपनी पढ़ाई को पूरा करते हैं, और पदवियाँ पाते हैं। क्योंकि धन का अभाव होने से कोई कोई विद्यार्थी एक साल रुपया कमाते हैं, दूसरे साल पढ़ते हैं। वहाँ की परीक्षाएँ हमारे देश की भाँति नहीं हैं। आवश्यकता केवल नियमानुकूल

विद्यार्थी होने की है। जो विद्यार्थी कालेज में प्रोफ़ेसर के बतलाये कार्य्य को लगातार करता रहता है उसको अवश्य ही पदवी मिल जाती है। यहां विद्या का अभिप्राय किताबी कीड़े बनाना नहीं, किन्तु उसका उद्देश्य व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करना है।

यूनिवर्सिटी में विद्यार्थियों के रहने के लिए बड़े बड़े तीन हाल हैं। उनमें से हिचकाक हाल सब से अच्छा है। दूसरा स्नेल हाल। तीसरा डिविनिटी हाल। हिचकाक हाल में ४०, ५० रुपये मासिक तक के कमरे हैं, जहां प्रायः धनाढ्य विद्यार्थी रहते हैं। स्नेल हाल में २२ रुपये महीने के कमरे हैं। डिविनिटी हाल उन विद्यार्थियों के लिए है जो इञ्जील और अन्य धर्म-सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़ते हैं, अर्थात् जिनका उद्देश अपने जीवन में धर्मसम्बन्धी कार्य्य करना है। वहां १५ रुपये मासिक तक के कमरे हैं। यह नहीं समझना चाहिये कि कमरों की बनावट या सफ़ाई आदि में न्यूनता होने से किराये में भेद है। नहीं। भेद है सामान और लम्बाई चौड़ाई के कारण।

काब लेकचर हाल में (Information Bureau) है। वहां सब बातों का पता मिलता है। विद्यार्थी, अध्यापक या विश्वविद्यालय सम्बन्धी जो पूछना चाहो वहां से पूछ सकते हैं। यहीं पर डाकख़ाना और अन्यान्य दफ़्तर हैं। यहां पर (Correspondence Bureau) पत्र-व्यवहार महकमे का दफ़्तर है, जहां से अन्य देशों में बैठे हुए विद्यार्थी शिकागो विश्वविद्यालय से, पत्र-व्यवहार द्वारा, पदवियां प्राप्त करते हैं। जिनको इस विषय में अधिक जानना हो वे इस दफ़्तर से सब बातें पूछ सकते हैं।

काब-हाल में भाषा-शास्त्र सम्बन्धी अंगरेज़ी पुस्तकालय भी है। शिकागो-विश्वविद्यालय के सभी विभागों के साथ अपना अपना पुस्तकालय है। इतिहास विभाग का पुस्तकालय पृथक् है। विज्ञान संबंधी पुस्तकालय भी जुदा जुदा हैं। यहां विद्यार्थियों के लिए एक बेङ्क भी है। यदि कहीं से कोई चेक, रसीद या हुण्डी किसी विद्यार्थी के नाम आवे तो उसको उसका रुपया विश्वविद्यालय में ही मिल जाता है। किसी और बेङ्क में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

एजुकेशन स्कूल में वे विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं जिनको अपने भविष्यजीवन में अध्यापक बनना है। सब प्रकार की सामग्री उनके लिए यहाँ एकत्र है। किण्डरगारटन से लेकर पी एच० डी० (Ph. D.) तक की शिक्षा यहाँ पर दी जाती है। इसके साथ एक हाईस्कूल है। वहां वे विद्यार्थी पढ़ते हैं जिनको किसी ख़ास विषय की पूर्ति करके पदवी प्राप्त करनी है। जैसे कोई विद्यार्थी भारतवर्ष से वहां पढ़ने जावे। उसको ए० बी० (A. B.) की पदवी प्राप्त करनी है। परन्तु हाईस्कूल में उसने, यूनानी, लातिनी या जरमन, किसी भाषा की शिक्षा १५ "यूनिट" तक नहीं पाई, तो वह एक मुस्तसना विद्यार्थी (Unclassified Student) के तौर पर विश्वविद्यालय में दाखिल होकर ए० बी० (A. B.) की पाठ्य पुस्तकादि पढ़ता रहेगा; वह अपनी कमी को उस हाईस्कूल में पूरा करेगा। जब उसके तीन "यूनिट" किसी भाषा में पूरे हो जायँगे तब ए० बी० (A. B.) का कोर्स पूरा करने पर उसे वह पदवी मिल जायगी।

हेस्कल ओरियण्टल म्यूज़ियम (अजायब घर) में प्रेज़ीडेण्ट, हेनरी प्रेट जड्सन, का दफ़्तर है। वही आज कल-

विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता हैं। इनका दफ्तर पहिली मंजिल पर है। दूसरी मंज़िल पर बाईं तरफ़ पुस्तकालय है, जहां धर्मसम्बन्धी पुस्तकें रहती हैं। दाहिनी तरफ़ देश देशान्तरों के विचित्र पदार्थ हैं। तीसरी मंजिल पर बाइं तरफ़ भारत के देवी देवता विराजमान हैं। जैनियों और बौद्धों की तसवीरें तथा पीतल की मूरतें भी हैं। इनके सिवा अन्य मतावलम्बियों के देवता भी यहां हैं। दाहिनी तरफ़ एशिया के अन्यान्य देशों के चित्र आदि हैं। यहां धर्माध्यक्ष पादरी (Missionaries) तैयार किये जाते हैं जो संसार में ख्रीष्ट धर्म का प्रचार करते हैं।

यहां पर ऊँचे दरजे की वनस्पति विद्या की शिक्षा दी जाती है। इसके लिये एक आलीशान इमारत अलग है। इसकी सब से ऊँची छत पर २१०० वर्ग फ़ीट का एक सब्ज़-घर (Green house) है। इसके साथ "एलिवेटर" (खटोला) है जो ऊपर नीचे जाने आने का साधन है। प्रत्येक श्रेणी के विद्यार्थियों को इस सब्ज़ घर में, भांति भांति के पौधों और वनस्पतियों की प्रत्यक्ष पहिचान कराई जाती है और उनकी बनावट तथा वृद्धि आदि के नियम समझाये जाते हैं। इस इमारत में एक सब से बड़ी प्रयोगशाला नये विद्यार्थियों के लिये है। दूसरे विद्यार्थियों के लिये कई एक छोटी छोटी प्रयोगशालायें हैं। उनमें भिन्न भिन्न प्रकार के खोज और परीक्षा के काम होते हैं।

यहां की रासायनिक प्रयोगशाला व्याख्यानदाताओं और रसायन विद्या के छात्रों के लिए है। यह इमारत १८६२ में सिड्नी ए० केण्ड महाशय ने यूनिवर्सिटी को दान दी थी। उन्हीं के नाम से यह मशहूर है। १८९४ की १ जनवरी को,

७ लाख ११ हज़ार रुपया इसको इस अवस्था में लाने के लिए ख़र्च हो जाने पर, यह भवन छात्रों के उपयोग के लिये खोला गया था। इसमें तीन छतें हैं जिनमें रसायन सम्बन्धी सब काम करने के लिए जुदा जुदा कमरे हैं। जो विद्यार्थी अपनी सारी उम्र रसायन विद्या ही में लगाना चाहते हैं उनके लिए सब तरह की सामग्री इसमें है। इस केएट-भवन में एक नाट्यशाला (थियेटर) भी है जहाँ पर व्याख्यान, नाटक तथा रङ्गभूमि पर आने वालों को पूरी तरह से शिक्षा दी जाती है। व्याख्यानदाता प्रायः इसी भवन की नाट्यशाला में व्याख्यान देते हैं। समर कार्टर (Summer Quarter) में जो व्याख्यान, बिना टिकट के कालेज के छात्रों के लाभ के लिए दिलवाये जाते हैं वे यहीं पर होते हैं। अमरीका के प्रधान प्रधान विश्व-विद्यालयों के योग्य अध्यापक, शिकागो में आकर, यहाँ के विश्वविद्यालय की ओर से व्याख्यान देते हैं।

यहाँ पर जो "क्लब" है उसका नाम रेनल्ड क्लब है। यह "क्लब" विश्वविद्यालय के छात्रों के उठने, बैठने, मिलने और वार्त्तालाप आदि के लिए है। यहाँ दो तीन बड़े बड़े कमरों में "पियानो" बाजे रखे हैं जहाँ छात्र लोग, फ़ुरसत के वक्त़ हँसते खेलते और गाते बजाते हैं। यहाँ सब प्रकार की सामयिक पुस्तकें और दैनिक, साप्ताहिक आदि पत्र आते हैं। खेलने के लिये जुदा जुदा कमरे हैं। यह "क्लब" विद्यार्थियों में प्रेमभाव और मित्रता उत्पन्न करने का अच्छा साधन है। इस "क्लब" की दाहिनी तरफ़ विश्वविद्यालय का सब से बड़ा "हाल" है इसको मेंडल हाल कहते हैं। यहाँ रविवार को, तथा और और अवसरों पर भी, व्याख्यान और धार्मिक शिक्षा होती है। यह "हाल" अति विशाल और दर्शनीय है।

विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता हैं। इनका दफ्तर पहिली मंजिल पर है। दूसरी मंज़िल पर बाईं तरफ़ पुस्तकालय है, जहां धर्मसम्बन्धी पुस्तकें रहती हैं। दाहिनी तरफ़ देश देशान्तरों के विचित्र पदार्थ हैं। तीसरी मंजिल पर बाइं तरफ़ भारत के देवी देवता विराजमान हैं। जैनियों और बौद्धों की तसवीरें तथा पीतल की मूरतें भी हैं। इनके सिवा अन्य मतावलम्बियों के देवता भी यहां हैं। दाहिनी तरफ़ एशिया के अन्यान्य देशों के चित्र आदि हैं। यहां धर्माध्यक्ष पादरी (Missionaries) तैयार किये जाते हैं जो संसार में खीष्ट धर्म का प्रचार करते हैं।

यहां पर ऊँचे दरजे की वनस्पति विद्या की शिक्षा दी जाती है। इसके लिये एक आलीशान इमारत अलग है। इसकी सब से ऊँची छत पर २१०० वर्ग फ़ीट का एक सब्ज़-घर (Green house) है। इसके साथ "एलिवेटर" (खटोला) है जो ऊपर नीचे जाने आने का साधन है। प्रत्येक श्रेणी के विद्यार्थियों को इस सब्ज़ घर में, भांति भांति के पौधों और वनस्पतियों की प्रत्यक्ष पहिचान कराई जाती है और उनकी बनावट तथा वृद्धि आदि के नियम समझाये जाते हैं। इस इमारत में एक सब से बड़ी प्रयोगशाला नये विद्यार्थियों के लिये है। दूसरे विद्यार्थियों के लिये कई एक छोटी छोटी प्रयोगशालायें हैं। उनमें भिन्न भिन्न प्रकार के खोज और परीक्षा के काम होते हैं।

यहां की रासायनिक प्रयोगशाला व्याख्यानदाताओं और रसायन विद्या के छात्रों के लिए है। यह इमारत १८९२ में सिड्नी ए० केण्ड महाशय ने यूनिवर्सिटी को दान दी थी। उन्हीं के नाम से यह मशहूर है। १८९४ की १ जनवरी को,

७ लाख ११ हज़ार रुपया इसको इस अवस्था में लाने के लिए ख़र्च हो जाने पर, यह भवन छात्रों के उपयोग के लिये खोला गया था। इसमें तीन छतें हैं जिनमें रसायन सम्बन्धी सब काम करने के लिए जुदा जुदा कमरे हैं। जो विद्यार्थी अपनी सारी उम्र रसायन विद्या ही में लगाना चाहते हैं उनके लिए सब तरह की सामग्री इसमें है। इस केण्ट-भवन में एक नाट्यशाला (थियेटर) भी है जहाँ पर व्याख्यान, नाटक तथा रङ्गभूमि पर आने वालों को पूरी तरह से शिक्षा दी जाती है। व्याख्यानदाता प्रायः इसी भवन की नाट्यशाला में व्याख्यान देते हैं। समर कार्टर (Summer Quarter) में जो व्याख्यान, बिना टिकट के कालेज के छात्रों के लाभ के लिए दिलवाये जाते हैं वे यहीं पर होते हैं। अमरीका के प्रधान प्रधान विश्व-विद्यालयों के योग्य अध्यापक, शिकागो में आकर, यहाँ के विश्वविद्यालय की ओर से व्याख्यान देते हैं।

यहाँ पर जो "क्लब" है उसका नाम रेनल्ड क्लब है। यह "क्लब" विश्वविद्यालय के छात्रों के उठने, बैठने, मिलने और वार्त्तालाप आदि के लिए है। यहाँ दो तीन बड़े बड़े कमरों में "पियानो" बाजे रखे हैं जहाँ छात्र लोग, फ़ुरसत के वक़् हँसते खेलते और गाते बजाते हैं। यहाँ सब प्रकार की सामयिक पुस्तकें और दैनिक, साप्ताहिक आदि पत्र आते हैं। खेलने के लिये जुदा जुदा कमरे हैं। यह "क्लब" विद्यार्थियों में प्रेमभाव और मित्रता उत्पन्न करने का अच्छा साधन है। इस "क्लब" की दाहिनी तरफ़ विश्वविद्यालय का सब से बड़ा "हाल" है इसको मेंडल हाल कहते हैं। यहाँ रविवार को, तथा और और अवसरों पर भी, व्याख्यान और धार्मिक शिक्षा होती है। यह "हाल" अति विशाल और दर्शनीय है।

बाईं ओर भोजनशाला और रसोई घर है। सबेरे, दोपहर और रात को विद्यार्थी यहां भोजन करते हैं। विद्यार्थी ही परोसने और पकाने वाले हैं। भोजन के समय यहां बड़ा आनन्द आता है। सब लोग प्रेम से एक दूसरे से वार्त्तालाप करते हुए भोजन करते हैं; किसी से घृणा नहीं। जो विद्यार्थी परोसते या पानी देते हैं उनके विषय में किसी के मन में ऊँच नीच का भाव नहीं। जो छात्र निर्धन होने के कारण, अपने श्रम से धन कमाकर विद्याभ्यास करते हैं, उनको यहां कोई दुर्दृष्टि से नहीं देखता! जनसमाज में उलटा उनकी अधिक प्रतिष्ठा होती है। यही कारण है कि अमरीका में निर्धन माता पिता का पुत्र संयुक्त राज्यों का प्रेज़ीडेंट हो सकता है। विपरीत इसके भारतवर्ष के धन सम्पन्न लोग अपने निर्धन देशभाइयों से घृणा करते हैं। उनके उपकार के लिए वे बहुत कम दत्त चित्त होते हैं। भला जब अपने ही देशवासियों से लोग प्रेम नहीं रखते; जब उन्हीं के विषय में ऊँच नीच भाव रखते हैं, तब कैसे उन्नति हो सकती है?

रीयरसन साहब का बनवाया हुआ भौतिक परीक्षागृह (Physical Laboratory) भी यहां देखने योग्य है। इसे देख कर मालूम होता है कि विद्या के प्रेमी किस प्रकार वैज्ञानिक उन्नति के लिये धन व्यय करते हैं। इसकी बनावट ऐसी है जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रयोग करने में कोई विघ्न न हो। दीवारों और छतों में आवश्यकतानुसार नलियों के ले जाने के लिये सूराख हैं। दूसरी छत पर परीक्षा और प्रयोग करने वालों के लिए सब तरह का सामान है। यहां पर विद्यार्थियों का एक कारख़ाना भी है। जिस यन्त्र की आवश्यकता होती है वह यहां तत्काल बना लिया जाता है। सब से नीचे के

तहख़ाने में तीन Dynamos (डाइनामोज़=यन्त्र विशेष) और एक यंजिन गरमी पहुँचाने के लिये है।

क़ानूनी शिक्षा के स्कूल की बनावट केम्ब्रिज (इङ्गलैंड) के प्रसिद्ध किङ्ग्ज़ कालेज (King's College) की ऐसी है। जिसने उस कालिज को देखा है वही समझ सकता है कि यह स्कूल कितना रमणीक और विशाल होगा। इसके साथ एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है। एक बड़ा "हाल" विद्यार्थियों के अभ्यास के लिये भी है। जुदा जुदा मेज़ों पर प्राय: चुपचाप बैठे हुए छात्र अपने अपने पाठ में मग्न देख पड़ते हैं। पुस्तकें सामने की भीतों से सटी हुई आलमारियों में रक्खी रहती हैं। जिस पुस्तक की आवश्यकता हो, फ़ौरन वहां से मिल सकती है; यहां ऐसा सुप्रबन्ध है कि पठन पाठन में ज़रा भी विघ्न नहीं होता।

अमरीका और योरप में स्त्रियों का बड़ा आदर है। उनके विद्याभ्यास और शारीरिक तथा मानसिक उन्नति का वैसा ही अच्छा प्रबन्ध है जैसा कि पुरुषों के लिये। स्त्री-पुरुष का आधा अङ्ग है—यह बात विशेष करके इन्हीं देशों में देख पड़ती है। शिकागो-विश्वविद्यालय में क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी विद्याभ्यास करते हैं। कालेज में स्त्री अध्यापिकाएं भी हैं। पुरुषों के रहने के लिए कई बड़े बड़े घर तो हैं ही, स्त्रियों के लिये भी एक विशाल भवन है। स्त्रियों के क्लब भी जुदा हैं; भोजन-शालायें जुदा हैं; व्यायाम-शालायें जुदा हैं। व्यायाम-शालाओं में उन्हें सब प्रकार के खेल सिखलाये जाते हैं। उनके तैरने के लिये सुन्दर स्वच्छ जल का एक तालाब है। समाज की शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक

उन्नति तभी हो सकती है जब हमारी मातायें, हमारी बहिनें, हमारी कन्यायें भी सब कामों में उन्नति करें। भारतवर्ष में स्त्री शिक्षा के अभाव को देख कर दुःख होता है। क्या वह जाति कभी उन्नति के शिखर पर पहुंच सकती है जहाँ स्त्रियों की अधोगति हो? अकेले पुरुषों के लिये देशोद्धार नहीं हो सकता। इसे सच मानिये।

इनके सिवा यहां के विश्वविद्यालय की बहुत सी और भी इमारतें हैं। खेल कूद कसरत के लिये एक बहुत बड़ा "जिमनैज़ियम" (Gymnasium) है। फुटबाल खेलने के लिए एक चौड़ा मैदान है, जहां प्रत्येक शनिवार को सैकड़ों स्त्री पुरुषों की भीड़ खेल देखने के लिये एकत्र होती है। एक सर्वसाधारण पुस्तकालय है जो सवेरे ८½ बजे से शाम ५½ बजे तक खुला रहता है। तीन लाख रुपया ख़र्च करके विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाया है। पुस्तकालय के पास एक भौतिक शक्ति-गृह (Power House) है जहां से भाफ बड़े बड़े नलों में होती हुई विश्वविद्यालय की सब इमारतों के कमरों में पहुंचती है। बिजली का एक यन्त्रालय (Electric Plant) है, जिससे सब कमरों में बिजली का प्रकाश पहुंचता है। पौष के महीने में, गलियों और मकानों पर कई फुट बर्फ जमी रहती है। कमरे में बैठे हुए लोगों को जाड़ा नहीं लगता। उष्ण भाफ के यन्त्र कमरे को गरम रखते हैं। बाहर १० या १५ दर्जे शून्य से नीचे तापमान (Temperature) हो, परन्तु कमरे में ७० दरजे की गरमी होती है। विश्वविद्यालय की सड़कों के नीचे भाप के बड़े बड़े नल लगे हैं जो सड़कों की बर्फ को पिघला देते हैं इससे विद्यार्थियों को आराम रहता है।

अब, अन्त में मुझे इस बात का विचार करना है कि शिकागो विश्वविद्यालय विद्यार्थियों के लिये क्यों अधिक लाभकारी है? शिकागो व्यापार की बहुत बड़ी मण्डी है। हज़ारों कारख़ाने, गोदाम और बड़े बड़े व्यापारियों के कारोबार यहाँ हैं। यहाँ ऐसे ऐसे कारख़ाने हैं जहाँ आदमियों की सदैव आवश्यकता रहती है। इसलिए बहुत से विद्यार्थी, जो धन के अभाव से और कहीं कालेज में नहीं पढ़ सकते यहाँ चले आते हैं। विश्वविद्यालय में नौकरी दिलाने का भी एक महकमा है। उसका सम्बन्ध सभी बड़े बड़े कारख़ानों से है। विद्यार्थी जैसा काम कर सकता हो वही काम तीन चार घंटे करके वह अपने ख़र्च के लिए रुपया पैदा कर सकता है। सैकड़ों विद्यार्थी इसी तरह यहाँ पढ़ते हैं। विश्वविद्यालय ने एक कम्पनी भी ऐसी बना रक्खी है जो होनहार निर्धन विद्यार्थियों को १००० रुपये वार्षिक तक ख़र्ज़ देती है; पर उन्हीं को जो तीन चार वर्ष के अन्दर बिना सूद के रुपया अदा करने का प्रण करते हैं। यहाँ एक और भी महकमा है जहाँ कोई १७५ विद्यार्थी विश्वविद्यालय के प्रबन्ध सम्बन्धी काम करके, अपनी फ़ीस का रुपया कमा लेते हैं। ४० या ५० छात्र भोजन शाला में दो घण्टे रोज़ काम कर के अपने भोजन का ख़र्च निकाल लेते हैं। इस विश्वविद्यालय के अध्यापक बहुत योग्य, उदार और सुशील हैं। इसलिए अमरीका के प्रत्येक प्रान्त के विद्यार्थी यहाँ पढ़ने आते हैं।

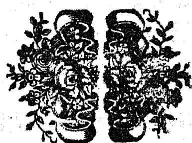
यहाँ के विश्वविद्यालय की इमारतें शहर से बाहर, मिशेगन नाम की झील के दूसरी तरफ़ हैं। उनके इर्द गिर्द सुन्दर सुन्दर बाग़ और पुष्पवाटिकायें हैं। इससे इमारतों की शोभा दूनी

होगई है। यही कारण है जो शिकागो-विश्वविद्यालय दूर दूर के विद्यार्थियों को आकर्षित कर लेता है। यहां विद्यार्थियों को सब तरह की स्वतन्त्रता है। जहाँ चाहें जायं; जहां चाहें घूमें किसी प्रकार की रोक टोक नहीं।

प्यारे पाठक! मैंने आपको, संक्षेप से, अमरीका के एक बड़े भारी विश्वविद्यालय का वृत्तान्त सुनाया और उसकी शिक्षा-प्रणाली का भी कुछ वर्णन किया। अब आप सोचिये कि क्या भारतवर्ष के जुदा जुदा कालेज एक यूनिवर्सिटी—एक विश्वविद्यालय—के रूप में नहीं लाये जा सकते? मैं तो कोई रुकावट इसमें नहीं देखता। यदि हिन्दू कालेज, अलीगढ़ कालेज, खालसा कालेज, डी० ए० वी० कालेज अमरीका की यूनिवर्सिटियों की भांति हो जायं और अपने विद्यार्थियों को सरकारी परीक्षाओं के पचड़े से निकाल, नियमानुकूल विद्याभ्यास करने पर उन्हें पदवियां दें तो विद्यार्थियों को इस बात का अनुभव हो जायगा कि हम भी स्वतन्त्रता से अपना प्रबन्ध करने योग्य हैं। यह आवश्यक नहीं है कि दूसरों पर अवलम्बन कर के ही हम उन विद्याओं को प्राप्त करें। इसके सिवा विद्यार्थियों को किताबी कीड़े न बनाकर उपयोगी और उपकारी विद्या और कला-कौशल की शिक्षा देनी चाहिये। यह भी स्मरण रहे कि जिस प्रकार अमरीका के धनाढ्य पुरुष अपनी सम्पत्ति को जाति के उपकार के लिए अर्पण करते हैं, उसी प्रकार, हमें भी अपने धन का सदुपयोग करना चाहिए। बिना उसके भारत का कल्याण नहीं हो सकता।

एक बड़ी भारी शिक्षा जो हमको अमरीका से मिलती है वह आपस का प्रेम है। जैसे अमरीका में भिन्न भिन्न मतों के

विद्यार्थी एक ही कालेज में लिखते पढ़ते, उठते बैठते और मिलते जुलते हैं वैसे ही हमारे देश में भी होना चाहिये। प्रत्येक के हृदय में दूसरे के विचारों के लिए सन्मान होना उचित है, यदि कोई किसी बात में हमसे भिन्न मत रखता है तो उससे घृणा न करके, जिसमें हम और वह सहमत हैं, उसमें उसके साथ मिल कर काम करना चाहिए।



अमरीका में योग की चर्चा



अमरीका के लोग बड़े धुनी होते हैं। कोई बात सुनने में आए तो फौरन उसके जानने की इच्छा रखते हैं, इसीलिए दूसरे देशों के लोग अमरीकनों को Curiosity hunters अर्थात कौतुक प्रेमी कहते हैं। जिन दिनों मैं शिकागो यूनिवर्सिटी में पढ़ता था, उस समय वहां मेरी भेंट मिस्टर बेलगम से हुई। यह महाशय विसकान्सिन रियासत के रहने वाले थे और शिकागो यूनिवर्सिटी में शिक्षा पा रहे थे। हम दोनों में मित्रता होगई। मिस्टर बेलगम ने मेरे व्याख्यानों के सम्बन्ध में नोटिस छपवाए और स्वयं उनके प्रबन्ध कर्ता, नियत हुए। ठहरा यह कि वे भिन्न भिन्न सभा सोसाइटियों के अधिकारियों के पास जाकर मेरे व्याख्यानों के दिन निश्चित करें। और उनसे जो आमदनी हो उसे हम लोग बांट लिया करें। एक रात को मुझे स्पृचुवल सोसाइटी के सामने व्याख्यान देना था। व्याख्यान सुनने के लिये खासी भीड़ हुई। हिन्दुस्तानी पोशाक में मैं प्लेटफार्म पर खड़ा हुआ व्याख्यान दे रहा था। बहुत से लोग तो केवल मेरी पोशाक देखने के लिए आए थे और बाकी अध्यात्म विद्या जानने वाली एक रमणी के अजीव करतबों को देखने के लिए एकत्रित हुए थे। जब मैं व्याख्यान दे चुका तो वह स्त्री प्लेटफार्म पर आ विराजमान हुई। और लगी मरे हुए प्रेतों को बुलाने। जिन लोगों के सम्बन्धी मर गये थे, जो ममतावश उनका हाल चाल जानने के इच्छुक थे, उन्होंने

भाँति भाँति के प्रश्न उस देवी से पूछे। वह सन्तोष जनक उत्तर दे रही थी और मरी हुई आत्माओं की बातें बता रही थी। मुझ पर क्योंकि बचपन से आर्य्य समाज का प्रभाव अधिक पड़ा हुआ था, इसलिए मैंने उस स्त्री की बातों को बाज़ीगर का खेल ही समझा और उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। व्याख्यान देकर मैं चला आया और वह बात वहीं पर खतम होगई।

दो वर्षों के बाद जब मैं वाशिंगटन स्टेट विश्वविद्यालय में भरती होने के लिए शियेटल आया तो मुझे योग के विषय पर अमरीकन लोगों की राय जानने की अत्यन्त इच्छा हुई। एक दिन हमारे विश्वविद्यालय में शियेटल नगर का एक प्रसिद्ध धनिक व्याख्यान देने के लिए आया। विश्वविद्यालय के बड़े हाल में सब विद्यार्थी एकत्रित हुए। उस करोड़पति ने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। उसकी अवस्था लगभग बावन वर्ष की होगी। लेकिन शरीर था बड़ा तन्दुरुस्त। अपने जीवन की सफलता का रहस्य उसने बतलाना आरम्भ किया। सब विद्यार्थी मन्त्र मुग्ध की तरह उसका व्याख्यान सुन रहे थे। प्रारम्भ में उसने कहा कि जीवन की सफलता की सच्ची कुञ्जी मन की एकाग्रता है। जो पुरुष या स्त्री अपने मनकी शक्तियों को केन्द्रीभूत कर अपने काम में लग जाते हैं, सफलता उनकी दासी बन जाती है। इसी सिद्धान्त की महत्ता को व्याख्यान दाता ने अपने जीवन की घटनाओं के साथ मिलाकर हमलोगों को बतलाया कि अपनी आठ वर्ष की उमर में वह तीन रुपये पर साप्ताहिकघरों में नौकरी किया करता था। जब उसकी उमर बारह वर्ष की हुई और उसका शरीर पुष्ट हुआ तो वह अपने कसबे के इर्द गिर्द लकड़ियाँ

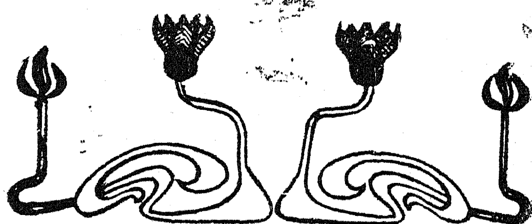
चीरने में खास प्रसिद्धि रखता था। मजदूरी का दर्वाजा उसके लिए सब जगह खुला था क्योंकि जिस काम को वह करता उसमें अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता था। उसके अपने शब्द यह हैं—

"मैं जिस काम को पकड़ता उसी को अच्छी तरह करता। मैं ने सब किस्म का काम किया है—बर्तन साफ करना, मकान बुहारना, कल कारखाने की मजदूरी, जमीन गोड़ना इत्यादि—परन्तु किसी काम में भी मैंने आलस्य नहीं किया। एशिया के लोग जिस चीज को योग कहते हैं मैं उसी को जीवन की सफलता की कुञ्जी मानता हूं। काम चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो लेकिन उसे कभी भी बेगारी की तरह नहीं करना चाहिए। बेगार की आदत पकड़ लेने वाला चरित्र-भ्रष्ट हो जाता है और दुनिया में वह किसी काम के लायक नहीं रहता। सोलह वर्ष की उमर में मेरे इस गुण की ख्याति व्यापारियों के कानों तक पहुंच गई और बीस वर्ष की उमर में मैं एक बड़े अच्छे कारोबार का भागीदार बन गया। अपने जीवन के उस परम प्यारे मन की एकाग्रता के सिद्धान्त को मैं ने अपना सच्चा साथी बनाया। यदि मैंने किसी किताब को पढ़ा तो उसे आद्योपान्त खूब समझ कर पढ़ा। मैंने यह सीख लिया कि एक अच्छी तरह से पढ़ी हुई पुस्तक बीस बेगारी से देखी हुई पुस्तकों के मुकाबिले में लाख दर्जे अच्छी उपयोगी सिद्ध होती है। मेरी अपनी राय है कि विद्यार्थियों को बालक-पन से ही मन की एकाग्रता के सिद्धान्त के गुणों का उपासक बनाना चाहिए ताकि वे ईश्वर के अनमोल खजाने के दरवाजों को खोल सकें।"

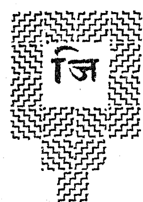
पाश्चात्य देशों के लोग योग का अर्थ क्या समझते हैं, यह बात मुझे उस दिन जान पड़ी। मैंने यह समझा था कि पर्वत की कन्दराओं में ही बैठकर योगसाधन किया जा सकता है लेकिन उसदिन थियेटर के उस धनिक को मैंने एक सच्चे योगी के रूप में देखा। अमरीका में योग के इस अङ्ग की व्याख्या में हजारों किस्म की पुस्तकें निकलती चली जा रही हैं। मन की अमोघ शक्ति क्या क्या अद्भुद बातें कर सकती है इस बात को अमरीकन लोग भली प्रकार समझने लगे हैं। "न्यू थाट" के नाम से योग के इस स्वरूप की व्याख्या में पत्र और पत्रिकाएँ विद्वानों के लेखों को जनता के सामने रखती हैं, सभा सोसाइटियों में नित्य नए व्याख्यान प्रोफेसर लोग इस विषय पर देते हैं, और सबसे बढ़कर बात यह है कि शिक्षा विभाग के मुखिया इन सब वसूलों का समावेश पाठ-शालाओं में कर रहे हैं।

योग की चर्चा अमरीका में निसन्देह बड़े ज़ोरों पर है। शरीर-विद्या-विशारद इसके द्वारा शरीर के रग पट्ठों की मज-बूती कर रहे हैं। "Physical culture" नाम की बड़ी प्रसिद्ध मैगज़ीन न्यूयार्क से निकलती है। उसके पढ़ने वाले संसार के सभी सभ्य देशों में पाए जाते हैं। उसका मुख्य उद्देश्य शारीरिक उन्नति है और उसका सम्पादक नई से नई बातें खोज खोज कर अपने ग्राहकों को सेवा करता है। कई उस्तादों ने अमरीका के बड़े बड़े शहरों में अखाड़े खोल कर व्यायाम के नये ढङ्गों का प्रचार लोगों में किया है। इस प्रकार नई दुनिया के लोगों में अध्यात्मवाद की चर्चा हर पहलू से होने लगी है। थियोसोफ़िकल सोसाइटी के प्रेमियों के द्वारा कुछ लोग स्प्रचुवल सायंस की खोज करने में लगे हैं, बहुत

से प्रोफेसरों ने प्राणायाम सिखलाने के स्कूल खोले हैं, सारांश यह कि जिस विद्या को भारतवर्ष के लोग छिपा छिपा रखते थे, जिसके नाम से सैकड़ों फ़क़ीर अपनी दूकानदारी चला रहे हैं, जिस योग की सिद्धियों पर भारतीय पंडित घंटों व्याख्यान देकर जनता का दिल बहलाते हैं उस विद्या की तलाश में अमरीका के लोग उठ खड़े हुए हैं और अपनी सारी शक्ति लगाकर वे इस विद्या के रहस्य को समझने की चेष्टा कर रहे हैं। ईश्वर ने चाहा तो पचास-साठ वर्षों के बाद अमरीका में योग की सिद्धियों का खजाना जन साधारण की सम्पत्ति हो जायगी।



धार्मिक स्वतंत्रता के पुजारी अमरीकन



न महापुरुषों ने अमरीका देश बसाया था वे धार्मिक स्वतन्त्रता के अनन्य भक्त थे। अपने प्यारे इङ्गलैण्ड में उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त न थी, अतएव अपनी जन्मभूमि को नमस्कार कर वे नई दुनिया की ओर चल दिये। यह उन दिनों की बात है कि जब जहाज हवा के सहारे चलते थे। इङ्गलैण्ड और नई दुनिया के बीच तुफानी अटलाण्टिक महासागर, उस महासागर को लाँघ कर, अपने पूर्वजों की मातृभूमि का त्याग कर केवल धार्मिक स्वतंन्त्रता के लिये एक नए देश में हिजरत कर जाना सचमुच बड़े ही आत्मिक बल का काम है और ऐसा काम उन अङ्गरेज़ स्त्री पुरुषों ने किया। मेफ्लावर नाम का जहाज़ जब इन आत्माओं को अपनी जन्मभूमि से दूर ले जा रहा होगा तो उस समय उनके हृदयों में कैसे कैसे भाव उदय होते रहे होंगे। कौन जानता था कि मेफ्लावर के मुट्ठी भर मुसाफिर किसी काल में यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमरीका के जन्मदाता बन जायँगे और उनकी सन्तान इन हिजरत करने वालों को "पिलग्रिम फ़ादर्स" "Pilgrim fathers" कह कर श्रद्धा से स्मरण करेगी।

नई दुनिया की वह भूमि स्वतंन्त्रता के प्रेमियों के लिये आश्रम बन गई। धीरे धीरे यात्रियों की संख्या बढ़ी, उनकी बस्तियाँ बन गईं, उनके शहर आबाद हो गये और उनकी

संख्या लाखों तक पहुंच गई। धार्मिक स्वतन्त्रता के पुजारियों को राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करना पड़ा और श्रद्धावान यात्री राजनीतिक युद्ध में विजय पताका उड़ाते हुए निकले। योरुप के भिन्न भिन्न देशों के दुखी लोग इस स्वराज्य आश्रम की ओर दौड़े। घर बार त्याग कर हजारों आयरिश, जर्मन, फ्रान्सीसी और इटैलियन नई दुनिया में पहुँचे। इसाई धर्म की सभी शाखाओं के मानने वाले इस देश में आकर बस गए। और उन्हें बराबर के अधिकार मिले। जिन यहूदियों को योरूप की इसाई जातियों ने मिटा देने की चेष्टा की थी वे भी न्यूयार्क नगर में आकर स्वतंन्त्र विचरने लगे। नई दुनिया मानो एकमहासागर बन गया।

लेकिन काले गोरे का भेद न मिटा। जिन हबशियों को गोरे लोग अफरीका से पकड़ कर अपने यहाँ लाये थे, जिनके परिश्रम से मजूरी और मिसीसिपी नदियों की उपजाऊ भूमि सोना उगलने लगी थी उन हबशियों की संख्या भी समय पाकर काफी हो गई और वे अपने मानवी अधिकारों की माँग करने लगे। उनका पक्ष लेकर कई दयालु अमरीकन खड़े हो गये और नई दुनिया में लोमहर्षण युद्ध का सूत्रपात हुआ। अब्राहम लिङ्कन ने अपनी बुद्धिमानी से अपने देश को दो भागों में विभक्त होने से बचा लिया और हबशी लोगों को देश के कानून के अनुसार जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त हुए। धार्मिक स्वतंत्रता तो उन्हें पहले से ही प्राप्त थी परन्तु उसकी सार्थकता को उन्होंने अनुभव नहीं किया था। धीरे धीरे शिक्षा अफरीका के इन बच्चों को सभ्यता सिखलाई और काले आदमियों के स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय नई दुनिया में स्थापित हो गए।

जिन दिनों मैं शिकागो यूनिवर्सिटी में जाकर भर्ती हुआ था उस समय विश्वविद्यालय में प्रायः सभी देशों के विद्यार्थी थे। भारत से मैं अकेला ही आया हुआ था—एक बार जान हापकिन्स यूनीवर्सिटी प्रोफेसर ब्लूम फील्ड शिकागो विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने के लिए आए। प्रोफेसार साहब संस्कृत भाषा के उद्भट्ट विद्वान माने जाते थे। आप हिन्दू धर्म पर व्याख्यान देने वाले थे। विश्वविद्यालय के बड़े हाल में प्रोफेसार महोदय के विद्वत्ता पूर्ण भाषण हुए। पहले व्याख्यान में मैं न जा सका। जब मेरे छात्रालय के विद्यार्थियों ने रात के समय मेरे साथ व्याख्यान की चर्चा की और यह बतलाया कि प्रोफेसर महोदय ने हिन्दू धर्म के विरुद्ध बहुत सी बातें कही हैं तथा वेदों की निन्दा की है तो मेरी इच्छा भाषण सुनने की हुई। नियत समय पर मैं भी हाल में पहुँचा। प्रोफेसर महाशय ने जब वेदों के उन मंत्रों को अशुद्ध पढ़ा कि जो मुझे कंठाग्र थे और जिनका अर्थ मैं भली प्रकार जानता था तो मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गई। जब व्याख्यान दाता ने उन मंत्रों के उलट पुलट अर्थ कर हिन्दू धर्म को नीचा दिखाने की चेष्टा की तो मुझमें क्रोध की चिनगारियाँ सुलग पड़ी और व्याख्यान खतम होते ही मैंने फौरन खड़े होकर लोगों को सम्बोधित कर कहना आरम्भ किया—

"मैं हिन्दुस्तान से आता हूँ। हिन्दू धर्म के विषय में मैंने विद्वान, पण्डितों के मुख से कुछ सुना है और काशी जी में रह कर संस्कृत का कुछ अध्ययन भी किया है। प्रोफेसर साहब ने जिन मंत्रों को पढ़ कर हिन्दू धर्म की क्षुद्रता दिखलाई है उनका अर्थ वे ठीक नहीं समझे। मैं आपको उन मन्त्रों का अर्थ समझाता हूँ—"

"मैं जब ऐसा व्याख्यान दे रहा था तो एक ईसाई मिशनरी ने आकर मेरे कान में यह कहा--"अगर आप चुप नहीं करेंगे तो मैं आपको पुलीस के हवाले कर दूँगा।" उसकी बात से भयभीत होकर मैंने व्याख्यान बन्द कर दिया। मैं अमरीका में नया ही आया था इसलिए मुझे अमरीकन कानून की बिलकुल वाकफियत न थी। मैंने समझा कि जैसे मेरे देश में गोरे आदमियों के कहने से मेरे देश वासियों को पुलीस फौरन हवालात दे देती है, ऐसी ही शायद यहाँ भी होता होगा। इसी विचार से मैंने बोलना बन्द कर दिया। जब हम सब लोग हाल के बाहर आए तो सड़क पर मेरे अमरीकन मित्रों ने मेरे व्याख्यान बन्द करने का कारण पूछा। जब मैंने उन्हें कारण बतलाया तो वे सब खिलखिला कर हँस पड़े और बोले--"तुम्हें आज अच्छा चकमा मिला। भला इस आजाद देश में ऐसी छोटी सी बात पर हवालात हो सकता है?" इस प्रकार बातें करते हुए हम अपने बोर्डिङ्ग हौस में आगए। दूसरे दिन विश्वविद्यालय के दैनिक पत्र "डेली मारून" में धार्मिक स्वतन्त्रता पर लेख छपा और सम्पादक महोदय ने मेरा पक्ष बड़े जोरों से समर्थन किया और यह लिखा कि हिन्दुस्तानी होने की हैसियत से मिस्टर देव को अपना पक्ष कहने का हक था और जो गलत बयानी मिस्टर देव के खयाल में प्रोफेसर ब्लुनफील्ड ने की थी उसका हिन्दुस्तानी पहलू श्रोताओं को बतलाना आवश्यक था। अमरीकन लोगों के इस धार्मिक स्वतंन्त्रता के प्रेम ने मुझे उनका अत्यन्त भक्त बना दिया और जितने वर्ष मैं अमरीका में रहा मैंने इस बात को बराबर देखा कि जब जब कोई संकीर्ण हृदय पुरुष या स्त्री धार्मिक स्वतंन्त्रता

के विरुद्ध आचरण करती तो उदार अमरीकन फौरन उसकी भर्त्सना करने के लिए खड़े हो जाते थे। अमरीकन लोगों में धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रति बड़ी श्रद्धा है क्योंकि वे जानते हैं कि उनके बुजुर्ग केवल धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए ही अपना प्यारा देश त्याग कर आए थे। मानसिक उत्थान के लिए मजहबी आजादी एक अनमोल रत्न है। जिस समाज में संकीर्णता है, जिसमें विचारों की स्वतन्त्रता का अभाव है, जहाँ लोग मजहब के ठीकेदार मौलवी और पंडितों के गुलाम हैं वह समाज कभी भी उन्नति नहीं कर कर सकता। अमरीकन लोगों ने इस सद्गुण के कारण ही संसार में अद्भुद चमत्कार कर दिखलाए हैं और जब तक वे इस पुनीत सिद्धान्त को अपने प्राणों से प्यारा समझते रहेंगे तब तक उनकी जाति सदा फूलती फलती रहेगी।

"मैं जब ऐसा व्याख्यान दे रहा था तो एक ईसाई मिशनरी ने आकर मेरे कान में यह कहा—"अगर आप चुप नहीं करेंगे तो मैं आपको पुलीस के हवाले कर दूँगा।" उसकी बात से भयभीत होकर मैंने व्याख्यान बन्द कर दिया। मैं अमरीका में नया ही आया था इसलिए मुझे अमरीकन कानून की बिलकुल वाकफियत न थी। मैंने समझा कि जैसे मेरे देश में गोरे आदमियों के कहने से मेरे देश वासियों को पुलीस फौरन हवालात दे देती है, ऐसी ही शायद यहाँ भी होता होगा। इसी विचार से मैंने बोलना बन्द कर दिया। जब हम सब लोग हाल के बाहर आए तो सड़क पर मेरे अमरीकन मित्रों ने मेरे व्याख्यान बन्द करने का कारण पूछा। जब मैंने उन्हें कारण बतलाया तो वे सब खिलखिला कर हँस पड़े और बोले—"तुम्हें आज अच्छा चकमा मिला। भला इस आजाद देश में ऐसी छोटी सी बात पर हवालात हो सकता है?" इस प्रकार बातें करते हुए हम अपने बोर्डिङ्ग हौस में आगए। दूसरे दिन विश्वविद्यालय के दैनिक पत्र "डेली मारून" में धार्मिक स्वतन्त्रता पर लेख छपा और सम्पादक महोदय ने मेरा पक्ष बड़े जोरों से समर्थन किया और यह लिखा कि हिन्दुस्तानी होने की हैसियत से मिस्टर देव को अपना पक्ष कहने का हक था और जो गलत बयानी मिस्टर देव के खयाल में प्रोफेसर ब्लूनफील्ड ने की थी उसका हिन्दुस्तानी पहलू श्रोताओं को बतलाना आवश्यक था। अमरीकन लोगों के इस धार्मिक स्वतंन्त्रता के प्रेम ने मुझे उनका अत्यन्त भक्त बना दिया और जितने वर्ष मैं अमरीका में रहा मैंने इस बात को बराबर देखा कि जब जब कोई संकीर्ण हृदय पुरुष या स्त्री धार्मिक स्वतंन्त्रता

के विरुद्ध आचरण करती तो उदार अमरीकन फौरन उसकी भर्त्सना करने के लिए खड़े हो जाते थे। अमरीकन लोगों में धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रति बड़ी श्रद्धा है क्योंकि वे जानते हैं कि उनके बुजुर्ग केवल धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए ही अपना प्यारा देश त्याग कर आए थे। मानसिक उत्थान के लिए मजहबी आजादी एक अनमोल रत्न है। जिस समाज में संकीर्णता है, जिसमें विचारों की स्वतन्त्रता का अभाव है, जहाँ लोग मजहब के ठीकेदार मौलवी और पंडितों के गुलाम हैं वह समाज कभी भी उन्नति नहीं कर कर सकता। अमरीकन लोगों ने इस सद्‌गुण के कारण ही संसार में अद्‌भुत चमत्कार कर दिखलाए हैं और जब तक वे इस पुनीत सिद्धान्त को अपने प्राणों से प्यारा समझते रहेंगे तब तक उनकी जाति सदा फूलती फलती रहेगी।

अमरीका में समाज सङ्गठन की शिक्षा

भारत से बाहर जाने वाले विद्यार्थी को पहली बात जो अमरीकन लोगों में खासतौर से दिखलाई देती है, जिसका प्रभाव उसके हृदय पर तत्काल पड़ता है, वह है अमरीकन लोगों का सामाजिक संगठन। संगठन के अद्भुत चमत्कार उसे चारों ओर दिखलाई देते हैं। जब वह व्यापार की ओर दृष्टि डालता है तो उसे करोड़ों रुपए की पूँजी रखनेवाली कम्पनियों की दूकानें प्रत्येक बड़े शहरों में दिखलाई देती हैं। शिकागो के मार्शल फील्ड की दुकान तो जगत प्रसिद्ध है ही, परन्तु इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यवसाय का संगठन बल देश के व्यापार को दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की दे रहा है जब वह समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की ओर दृष्टि डालता है तो उसके आश्चर्य्य की सीमा नहीं। रहती दैनिक पत्रों की लाखों प्रतियां छपती हैं, सुन्दर सचित्र पत्रिकाओं की ग्राहक संख्या भी कई लाख तक पहुँच जाती है और उपयोगी पुस्तकों की बिक्री का तो कहना ही क्या? धार्मिक सुसाइटियों की शाखाएँ वृक्ष की टहनियों की तरह सारे देश में फैली हुई हैं, सारांश यह कि जिस काम को अमरीकन लोग अपने हाथ में लेते हैं उसे वे संगठन बल से बहुत शीघ्र लोक प्रिय बना देते हैं।

अब यहां पर यह प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि इस प्रकार के सामाजिक संगठन की शिक्षा अमरीकन सन्तान को

किस प्रकार दी जाती है? इसका उत्तर सुनिये! जब बच्चे स्कूल में पढ़ने के लिये जाते हैं तो उन्हें वहाँ पर स्कूल की वफादारी की शिक्षा मिलती है। बच्चे वहां पर यह सीखते हैं कि उनका स्कूल उनकी अपनी संस्था है और उसका हानि लाभ उनका अपना हानि लाभ है। स्कूल की यदि कोई टीम फुटबाल या बेसबाल खेलने के लिये दूसरे किसी स्कूल की टीम के मुकाबले में जाती है तो अपने स्कूल की टीम का पक्ष—वफादारी—विद्यार्थियों के लिये कर्त्तव्य समझा जाता है। प्रत्येक स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय की अपनी अपनी जय घोषणा होती है और विद्यार्थी लोग प्रत्येक उचित अवसर पर अपनी जय घोषणा कर हर्षनाद करते हैं। विद्यार्थियों का आपस में संगठनात्मक एक खास नियम रहता है और वह यह है कि कोई विद्यार्थी किसी दूसरे विद्यार्थी की चुगली अध्यापक के पास जाकर न करे। श्रेणी में यदि किसी विद्यार्थी से कोई अनुचित काम हो जाय तो अध्यापक भले ही अपनी स्वतन्त्र कोशिश से उस बात को मालूम कर ले, लेकिन अगर कोई भी विद्यार्थी अध्यापक के पास जाकर खुफिया का काम करे तो उससे बढ़कर नीचता दूसरी नहीं समझी जाती। ऐसे विद्यार्थी को उसके साथी अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं। उसे छूते तक नहीं और अपनी खेलों में उसका वहिष्कार कर देते हैं।

सामाजिक संगठन में मनुष्यत्व की बड़ी प्रतिष्ठा है। अमरीकन विद्यार्थी कायर से बड़ी नफ़रत करते हैं। जब कोई विद्यार्थी अपनी टीम में किसी भी बड़े विद्यार्थी से अपमान सह लेता है तो उसे दूसरे विद्यार्थी बड़ा नीच समझते हैं, इसलिये उस विद्यार्थी को अपनी मान-रक्षा के हित लड़ाई

करनी पड़ती है। वह भले ही मार खा जाय, इसकी कुछ परवाह नहीं, लेकिन उसे यह साबित कर देना चाहिये कि वह अपमान को चुपके से सहन नहीं कर सकता। जब कोई बड़ा मज़बूत विद्यार्थी अपने से कमज़ोर विद्यार्थी पर हमला करता है, या कई एक विद्यार्थी किसी अकेले विद्यार्थी को सताते हैं तो लोगों में उनके दुष्कर्म की बड़ी निन्दा होती है। अमरीकन लोगों ने अपनी समाज को ऐसे नियमों पर ढाल लिया है कि वहाँ कायरता और अत्याचार के लिये कोई गुञ्जाइश नहीं रह गई। बालकपन से ही माता पिता और आचार्य्य बच्चों को संगठन के मूल तत्वों की शिक्षा देते हैं।

एक बार आरेगन यूनीवर्सिटी में एक भयङ्कर घटना हो गई। आरेगन यूनीवर्सिटी यूजीन नगर में स्थित है। यह शहर विलामेट नदी के किनारे पर आबाद है। आरेगन विश्व विद्यालय के समीप ही इस नदी से निकली हुई एक बड़ी रमणीक नहर बहती है जिसके दोनों किनारों पर सायेदार वृक्षों की कतारें हैं। फुर्सत के समय विश्वविद्यालय के छात्र अपनी प्यारी युवतियों के साथ नौका में बैठकर इस नहर में जल क्रीड़ा का आनन्द लेते हैं। एक दिन एक लड़की एक नवयुवक के साथ नौका में बैठकर विलामेट नदी के सुन्दर दृष्य देखने गई। शाम को वह अपने घर नहीं पहुँची। माता पिता ने अधिक सन्देह नहीं किया। दूसरे दिन लड़की का पिता विश्वविद्यालय के प्रेसीडेंट के पास आया और लड़की के गुम होने की बात कही। प्रेसीडेंट महोदय ने फौरन भय सूचक घन्टा बजवा दिया। सब लड़के एक बड़े हाल में एकत्रित हुए। विश्वविद्यालय में छुट्टी कर दी गई और दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह लड़कों के दल बना कर उत्तर दक्षिण पूरब

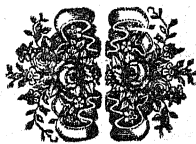
पश्चिम—चारों तरफ तलाश करने के लिए भेजे गये। शाम को यह पता लगा कि वह लड़की अकेली नहर की ओर नाव खे रही थी। आखिर रात के दस बजे उस लड़की की लाश नहर के अन्दर से मिली। ऐसा जान पड़ा कि बिलामेट नदी से जिस समय नौका नहर की ओर मुड़ी तो जल की तीव्र गति के कारण वह लड़की उसे संभाल न सकी और नाव एक पत्थर से जाकर टकरा जाने के कारण टूट गई और उसमें पानी आने लगा। इसी से वह नौका डूब गई और लड़की भँवर में फंस गई। नहर के अन्दर जो झाड़ झंखाड़ उगे हुए थे उन्हीं में लाश फँसी हुई मिली। दूसरे दिन विश्वविद्यालय में शोक सभा मनाई गई और प्रेसीडेंट साहब ने उस लड़की के गुणों का बखान कर उसके माता पिता के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रगट की। इस प्रकार अमरीका में सामाजिक संगठन की शिक्षा विद्यार्थियों को मिलती है।

जब मैं वाशिङ्गटन यूनीवर्सिटी में पढ़ता था तो वहाँ पर एक बार विद्यार्थी सभा के अधिकारियों का चुनाव होने लगा। हमारे बोर्डिंग हाउस के एक विद्यार्थी का नाम सभापित के लिए लिया गया। जब वोट देने का समय आया तो कई विद्यार्थी मेरे पास वोट लेने के लिए आए और उन्होंने मुझसे उस विद्यार्थी के हक में वोट देने को कहा। जब मैंने कुछ आपत्ति की और दूसरे बाहर के विद्यार्थी का नाम पेश किया तो वे सब मुझ पर खूब बिगड़े। आख़िर मैंने उनका कहना मान लिया और उस दिन से यह बात मेरे समझ में आगई कि सामाजिक संगठन के लिए दल के साथ चलना ज़रूरी हो जाता है। और वहां "Give and take" "दो और लो" का सिद्धान्त अत्यन्त आवश्यक है। समाज में सब बातें हमारी ही मर्जी के

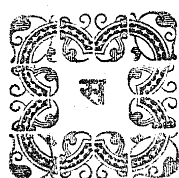
अनुकूल नहीं हो सकतीं। हमें दूसरों की सम्मति, उनके हार्दिक भावों का अवश्य ख्याल करना होगा। केवल एक बात हमारी मरज़ी के विरुद्ध हो जाने के कारण हम किसी का त्याग नहीं कर सकते। खास कर व्यक्तिगत बातों का बलिदान सामाजिक सङ्गठन के लिए नितान्त आवश्यक है। सामाजिक सङ्गठन करने की इच्छा रखने वाले लोगों को सबसे पहले इतनी जानकारी कर लेनी उचित है कि कहाँ पर व्यक्तिगत बातों का अन्त और सामाजिक हितों का प्रारम्भ होता है और सामाजिक हित के सामने व्यक्तिगत हित की कुर्बानी करनी ही चाहिये। जो समाज इस सिद्धान्त को समझ लेता है, जिसके सदस्य अपनी सन्तान को शिक्षा इस सिद्धान्त को सामने रख कर देते हैं, उस समाज का सङ्गठन पहाड़ की चट्टान की तरह सुदृढ़ हो जाता है।

सामाजिक सङ्गठन की इस शिक्षा का प्रत्यक्ष प्रमाण अमरीका में बाजार, स्टेशन, स्कूल, कालेज—सभी स्थानों पर लोगों में मिलने से दिखलाई देता है। कोई भी स्त्री या पुरुष जब किसी काम को करने लगता है तो वह फ़ौरन पहिले यह देख लेता है कि उसके काम से दूसरे व्यक्ति को कोई कष्ट तो नही पहुँचेगा, अतएव पठित समाज में "Pardon me" अर्थात "क्षमा कीजिये" यह शब्द स्त्री पुरुषों के मुख से बराबर सुनाई देते हैं और शिक्षित व्यक्ति की पहचान इस बात से की जाती है कि उसका स्वभाव "obliging" बाधित करने का हो। दूसरे स्त्री या पुरुष को सेवा से प्रसन्न करना, उसकी कठिनाई को आसान करने में सहायता देना, किसी की हार्दिक वेदना में हिस्सा बटाना—यह गुण अमरीकन समाज में प्रायः पाये जाते हैं। जो विद्यार्थी अपना घर बार छोड़ कर

अमरीका में पढ़ने जाते हैं वे वहाँ के गृहस्थों में ऐसे दैवी गुणों को देख कर उनपर मोहित हो जाते हैं। वे देखते हैं कि उनकी अशुद्ध अंग्रेज़ी को सुनकर अमरीकन लोग बड़े प्रसन्न होते हैं और उत्साह पूर्ण शब्द कहकर उन्हें बढ़ावा देते हैं। यूनि-वर्सिटी में प्रोफ़ेसर लोग उन्हें बड़े प्रेम से अपने घर बुलाते हैं और उनसे उनके देश की बातें पूछते हैं। इस प्रकार अम-रीका में गये हुये हमारे विद्यार्थी समाज सङ्गठन का वहाँ पर मधुर रस पान करते हैं।



मैं सन १९११ में



न् १९११ के मई महीने की १३ तारीख को मैं नई दुनिया के बोस्टन नगर से इङ्गलैण्ड की तरफ रवाना हुआ। मेरा पढ़ना खतम हो गया था। जिस उद्देश्य निमित्त मैं काशी से निकला था, जिस स्वतंत्रता देवी के दर्शन करने के लिए मैंने इतनी कठिन यात्रा का सामना किया था, वह उद्देश्य मेरा पूरा हो गया। बोस्टन से मैं एक जहाज में नौकरी कर मानचेस्टर पहुँचा। मानचेस्टर से एक अमरीकन यात्री मिस्टर क्लार्क के साथ मैं लन्दन की तरफ पैदल रवाना हुआ। सवा सौ मील तक हम दोनों इङ्गलिस्तान के ग्रामों कस्बों और नगरों के दृश्य देखते हुए चले गये। इसके बाद मैंने रेल पकड़ी और लन्दन आया। लन्दन में इन दिनों बृटिश सामराज्य के बादशाह जार्ज पञ्चम की राजगद्दी का महोत्सव था। उसके कारण लन्दन नगर में बड़ी चहल पहल थी। यों तो संसार के सभी देशों के लोग प्रत्येक समय में अंग्रेजों की इस इन्द्रपुरी में पाए जाते हैं पर इस अवसर पर खास तौर से इस नगर की शोभा दर्शनीय होगई थी। शेपहर्ड बुश के पास बड़ी विशाल प्रदर्शिनी का आयोजन था जहाँ हजारों दर्शकों की भीड़ बराबर लगी रहती थी। भारत के अमीर तथा राजे महाराजे इस अवसर पर यहाँ पधारे हुए थे और वे भी इस महोत्सव के आमोद प्रमोद में पूरा भाग ले रहे थे।

मैं यहाँ बहुत दिनों तक नहीं ठहरा। यहाँ पर कुछ भारतीय बन्धुओं से मिल मिला कर तथा लन्दन के जगत प्रसिद्ध उद्यान

"हाइड पार्क" के कौतुक पूर्ण दृश्य देखकर मैंने इंगलिश चैनेलको पार किया और पेरिस पहुँचा। पेरिस में इन दिनों जो प्रसिद्ध देश भक्त उपस्थित थे मैंने उनके दर्शन किए। फ्रांसीसियों का यह नगर तो बड़ा ऐतिहासिक है और मैं यूनीवर्सिटी में इतिहास का खास विद्यार्थी था इसलिए स्वाभाविक ही मेरी इच्छा पेरिस-भ्रमण की हुई। प्रायः सभी ऐतिहासिक स्थानों की मैंने प्रदक्षिणा की और फ्रान्स के पुराने इतिहास की स्मृति को ताजा किया। यहाँ से मैं स्विटजर लैंड गया और वहाँ के सुन्दर नगरों की सैर की। जिनेवा झील के मनोहर दृश्य जगत-विख्यात हैं। उनका सौंदर्य मुझे कभी न भूलेगा। जनेवा से लूजिरन होता हुआ मैं इटली की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में एलपस पहाड़ के बीच से गाड़ी पर बैठे हुए नैसर्गिक दृश्यों की छटा बड़ी ही हृदय-ग्राही है। उन सब भव्य दृश्यों को देखता हुआ मैं जिनोवा पहुँचा। यहीं से मुझे कोलम्बो के लिए जहाज पकड़ना था। जिनोवा में मैं केवल दो दिन रहा और एक जर्मन कम्पनी के एजन्ट को बीस पौंड देकर तीसरे दर्जे का टिकट खरीद लिया। ठीक समय पर जहाज जिनोआ से चला।

जिनोआ से सिलोन तक का मेरा सफर बड़े आनन्द से कटा। जहाज पर के जर्मन मुसाफिरों का व्यवहार मेरे साथ बड़ा अच्छा था। भूमध्य सागर में किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ, लेकिन हाँ हिन्द महासागर में समुद्र कुछ भयङ्कर मिला। खैर आखिर कोलम्बो पहुँच गये और वहाँ से एक छोटे स्टीमर में बैठकर भारतीय यात्री तूतीकोरन आए जहाँ हमारी खूब तलाशी हुई। एक बङ्गाली बाबू लन्दन से आए थे उनके असबाब की तो बुरी तरह तलाशी ली गई। जो खिलौने वे

लन्दन से लाए थे उनके पेट भी टटोले गये। मेरे पास तो कुछ था ही नहीं, इसलिए मुझे तो ऐसेही छोड़ दिया। तूतीकोरन से मैं मद्रास होता हुआ बम्बई आया और अपने प्रेमी ज्येष्ठालाल जी तथा अन्य बन्धुओं से मिला। छै वर्ष पहले जो सत्यदेव अमरीका जाने के लिए १५) लेकर काशी से बम्बई पहुँचा था वह आज अमरीका से अपनी विद्या समाप्त कर छ वर्ष के बाद पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर फिर बम्बई आगया और उसी आर्य्य समाज में अपने पुराने मित्र प्रेमियों से मिल कर बड़ा प्रसन्न हुआ। बम्बई से चलकर १७ जुलाई को आधी रात के समय मैं प्रयाग पहुँचा।

बस पाठक अमरीका की कथा को मैं यहीं समाप्त कर आपको वह भजन सुनाता हूं जिसमें अमरीका के सम्बन्ध में मेरे उद्गार हैं। यद्यपि कविता के लिहाज से तो यह ऊँचे दरजे की चीज नहीं लेकिन भाव की दृष्टि से एक स्मरण रखने योग्य वस्तु है।

भजन

१—जिस देश में गया था, हूं हाल अब सुनाता।
तुम ध्यान धर के सुनना, जो 'देव' है बताता॥

२—हर एक मर्द औरत, जिसको था मैंने देखा।
वह देश-हित-नशे में, फूला न था समाता॥

३—गर जान तन से जावे, पर देश पै फिदा हैं।
छोटे बड़ों में सब में, हुब्बेवतन था पाता॥

४—उनकी है एक भाषा, है एक राष्ट्र उनका।
अच्छे साहित्य द्वारा, उसका है यश बढ़ाता॥

५—झण्डा जो देश का है, उसके हैं वे उपासक।
हर एक उसके सन्मुख, सिर अपना है झुकाता॥

६—ख़तरे में देश हो जब, औ' कोई आवे दुश्मन।
क्या मर्द हो क्या औरत झण्डे के नीचे आता॥

७—उनका यही धरम है, उनका यही करम है।
इस देशहित के कारण वह उच्च है कहाता॥

८—आपस में चाहे कितने, मज़हब के जङ्ग होवें।
पर देशहित के सन्मुख सब कुछ है भूल जाता॥

९—इस एक गुण के कारण जातीय एकता है।
कैसा हो भारी दुश्मन, उसका भी दिल दहलाता॥

१०—तालीम तो वहाँ पर, सबको है मुफ़्त मिलती।
कैसा ही हो अभागा, वह भी इल्म को पाता॥

११—तादाद में करोड़ों, अख़बारों की खपत है।
हर कोई उनको पढ़ कर, दिल अपना है बहलाता॥

१२—इज़्ज़त वे औरतों की, करते हैं सच्चे दिल से।
उनको है जो सताता, भारी सज़ा वो पाता॥

१३—कोई न दीख पड़ता, भिखमङ्गा उस मुलक में।
मज़दूर छः रुपैये, है रोज़ के कमाता॥

१४—उनके यहाँ की चीज़ें, दुनिया में बिक रही हैं।
खिच खिच के धन जहाँ का, उनके यहाँ है आता॥

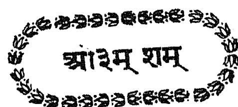
१५—न्यूयार्क बोस्टन में, देखीं बड़ी दुकानें।
अरबों का माल जिनमें, आसानी से समाता॥

१६—चालीस मंजिलों के, बनते हैं घर वहाँ पर।
बिजली की रोशनी से, हर एक जगमगाता ॥

१७—नहिं ऊँच नीच जानें, नहिं छूत छात मानें।
अधिकार सबके सम हैं, सबकी है एक माता ॥

१८—भारत को गर उठाना, तुम चाहते हो दिल से।
तो कर लो एक भाषा, तज ऊँच नीच नाता ॥

१९—विनती यही है करता, कर जोड़ 'देव' सब से।
अब छूत छात छोड़ो, भारत है सब की माता ॥

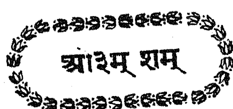


१६—चालीस मंजिलों के, बनते हैं घर वहां पर।
बिजली की रोशनी से, हर एक जगमगाता॥

१७—नहिं ऊँच नीच जानें, नहिं छूत छात मानें।
अधिकार सबके सम हैं, सबकी है एक माता॥

१८—भारत को गर उठाना, तुम चाहते हो दिल से।
तो कर लो एक भाषा, तज ऊँच नीच नाता॥

१९—विनती यही है करता, कर जोड़ 'देव' सब से।
अब छूत छात छोड़ो, भारत है सब की माता॥



सत्य-ग्रन्थ-माला

हिन्दी संसार में सत्यग्रन्थ माला का अपना खास स्थान है। राष्ट्र-धर्म का प्रचार करने में इन पुस्तकों ने जो काम किया है उसे भावी सन्तान बड़े प्रेम से स्मरण करेगी। माला के प्रेमी यह जान कर बड़े प्रसन्न होंगे कि हमने श्री स्वामी सत्यदेव जी की सब पुस्तकों का प्रचार भार अपने ऊपर ले लिया है और हम अपनी सारी शक्ति लगाकर स्वामी जी के मिशन का प्रचार करेंगे। स्वामी जी चाहे कहीं रहें पर उनकी पुस्तकें बराबर हमारी ओर से निकला करेंगी। हमें पूर्ण विश्वास है कि माला के प्रेमी नये उत्साह से हमारे साथ सहयोग करेंगे। नीचे लिखी हुई पुस्तकों के सुन्दर नवीन संस्करण विक्रयार्थ प्रस्तुत हैं:—

अमरीका-भ्रमण (सम्पूर्ण)

बहुत वर्षों से जिस पुस्तक की बाट सत्यग्रन्थ माला के प्रेमी बड़ी उत्सुकता से जोह रहे थे वह अब छपकर तैयार है। १६ फरमे की यह किताब स्वामी जी के २३०० मील पैदल भ्रमण के वृत्तान्त का वर्णन करती है। पश्चिमी अमरीका की रियासतों में जिन कष्टों का सामना कर स्वामी जी ने अपनी इस यात्रा को पूरा किया है। उसका सजीव वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है। मुख पृष्ठ पर स्वामी जी का भ्रमण के समय का चित्र दिया गया है। पुस्तक का दाम एक रुपया है।

संगठन का बिगुल

यह पुस्तक इतनी लोकप्रिय हो चुकी है कि अब तक इसकी बारह हज़ार प्रतियाँ छप गई हैं। इसे हिन्दू-संगठन की

बाइबिल समझिये। हिन्दी और अंग्रेजी के सब समाचार पत्रों ने इस पुस्तक की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। दाम आठ आने।

मेरी जर्मनी-यात्रा

यह पुस्तक योरुप यात्रा का आनन्द पाठकों को घर बैठे कराती है। इस यात्रा में स्वामी जी के हज़ारों रुपये ख़र्च हो गये। यदि स्वीडन, जर्मनी, आष्ट्रिया, फ्रान्स और इटली के मनोहर दृश्य देखने की इच्छा है तो इसे मँगा कर पढ़िए। मूल्य एक रुपया।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त "**मेरी कैलाश यात्रा**" "**अमरीका दिग्दर्शन**" और "**संजीवनी बूटी**" के सुन्दर नवीन संस्करण भी छप कर तैयार हैं। कैलाश यात्रा का दाम दस आने, दिग्दर्शन का एक रुपया, और संजीवनी बूटी के आठ आने हैं। अन्य पुस्तकें भी धीरे धीरे प्रकाशित होंगी। अधिक पुस्तकें मँगाने वालों को पचीस सैकड़ा कमीशन दिया जाता है।

निवेदक—

महता चूड़ामणि वर्मा

मैनेजर सत्यग्रन्थमाला आफ़िस

बेग़मपुर, पटना सीटी।

